



# MISSION MEDITATION

*Established by :*

Enlightened Mystic Gurumaiya Dr. Hareshwarideviji

## MAUN MANDIR

*(A place for silence)*

at. & po. Chapad, dist. Vadodara, Gujarat, INDIA

Ph. +91 9913153609, 7285085733



## ध्याम ध्यान

प्रिय साधको !

मैं बार बार कहती हूँ कि शरीर को धिक्कारो मत, उसका उपयोग करो, आपके आध्यात्मिक विकास में। इन्द्रियों से भागो मत, डरो मत। वह तो केवल केमेरा या रीसीवर है या आउटलेट लाईनों की तरह काम करती है आपके साथ। परमात्मा ने इतने सुंदर साधन दिए हैं तो उसे भी एक प्रकार की प्रोस्पेरीटी समझकर उसका निरासक्त रहकर उपयोग करना सीखो। डायरेक्टर या वीडियोग्राफर कहेगा कि मैं इतनी बड़ी फिल्म की रीकोर्डिंग कर रहा हूँ, मैं तो हर पिक्चर में जरूर आऊंगा, तो ? कुशल केमेरामैन या वीडियोग्राफर को पता होता है कि कौन से दृश्य लेने हैं केमेरा में ? और कौन से नहीं ? बैस्ट रेकोर्डर को पता होता है कि रेकोर्डिंग में से क्या डिलीट कर देना है ? कहाँ म्यूट का बटन दबाना है ? कहाँ पौज़ कर देना है ? कहाँ रीरेकोर्ड करना है ? या कहाँ वोल्यूम ऊँचा नीचा करना है। सबकुछ करने के बावजूद भी वह उसमें कहीं भी नहीं होता।

प्रिय साधको !

दृष्टाभाव में जीने वाला साधक बिलकुल ऐसा ही होता है। कौन सी ज्ञानेन्द्रिय या कर्मेन्द्रिय का कहाँ उचित ढंग से उपयोग करना है ? शरीर के कौन से केन्द्र को जगाना है (खोलना है) ? आंख से क्या देखना है ? क्या नहीं देखना है ? वाणी से क्या बोलना है ? कितना बोलना है ? कैसे बोलना है ? कितनी ध्वनी में बोलना है ? नाक से क्या सूंघना है, क्या नहीं ? स्वादेन्द्रिय से क्या स्वाद लेना है ? क्या नहीं लेना ? आदि निर्णय भीतर का दृष्टा करता है। मैं दृष्टा का अर्थ करती हूँ, विशुद्ध दृष्टि को देखकर विवेकपूर्ण निर्णय लेना कि जो बंधनरूप नहीं बनता।

आपको पता है ? समाधि के दो प्रकार हैं। संप्रज्ञात समाधि और असंप्रज्ञात समाधि। इसमें से असंप्रज्ञात समाधि को विवेकख्याति के नाम से भी जाना जाता है। इस अवस्था में ही उचित निर्णय भीतर से आते हैं। वह बुद्धि का निर्णय नहीं होता। ऐसे निर्णय को मैं दैवी-निर्णय कहती हूँ। मेरी दृष्टि मे देव कोई आकाश में उड़ने वाले नहीं। जिसे आप तकनीकी करामात से टी.वी. के परदे पर देखकर अभिभूत होते हो। “दिव्य”, यह शब्द बड़ा प्यारा है। थोड़े में बहुत कुछ कह देता है। हमारे ऋषिओं को, प्रबुद्ध पुरुषों को जब जब अनुभव हुआ कि कुछ बातें ऐसे घटती हैं कि वहाँ उसका मन, बुद्धि, अहंकार, शिक्षण सब छोटे पड़ जाते हैं और फिर भीतर से कहीं और से ही निर्णय आता है, जिसका परिणाम कल्याणकारी होता है; ऐसे क्षणों को और ऐसी सारी घटनाओं को, उन्होंने “दिव्य” शब्द दे दिया।

दृष्टा का अर्थ है जिसके पास दिव्य दृष्टि आ गई। उस दिव्यता के प्रभाव में अर्थात् अंतरप्रकाश के प्रभाव से उसे गलत बातें, गलत निर्णय, गलत विचार छू ही नहीं पाएंगे। ऐसा व्यक्ति जो कुछ भी करेगा वह सबकुछ भीतरी दिव्यता के प्रभाव में होगा। वहाँ कर्मबंधन नहीं होगा। केवल वर्तमान घटनाएं रहेंगी। इस दृष्टाभाव को कोई साक्षीभाव कहता है, कोई स्थितप्रज्ञावस्था कहता है, तो कोई होश कहता है; ज्ञान एक ही है। भाषा और रास्ते अलग अलग हैं।

आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि दृष्टा भाव कैसे आया ? आपके अनेकानेक प्रश्नों का एक ही जवाब है, उतरो ध्यान में। ध्यान मुझसे भी अच्छे ढंग से आपका समाधान कर पाएगा। आप केवल मेरी बातों को सुनकर खुश हो जाएंगे तो मुझे बिलकुल खुशी नहीं मिलेगी। मेरा बोलना तब सार्थक होगा जब मनुष्य ध्यान में उतरकर परमसत्य का अनुभव कर ले।

ध्यान आपको सिखा देगा कि शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदि उपकरणों का उपयोग कब, कैसे और कितना करना है ? अब आइए ध्यान विधि की ओर।

किसी भी प्रकार की असुविधा न हो ऐसे स्थान पर पलाठी लगाकर, शुद्ध आसन पर एकांत स्थान में बैठ जाओ। यहाँ आपके सिवाय अन्य कोई उपकरण की आवश्यकता नहीं है। यह एक अत्यंत सरल ध्यान विधि है। हाँ, आपकी साधना में कोई विक्षेप न करे ऐसे स्थान को मैं कहती हूँ सुविधापूर्ण स्थान। आप क्षुधा या तृषा से पीड़ित भी नहीं होने चाहिए। और शरीर में अति भोजन के कारण प्रमाद भी नहीं होना चाहिए। एक सम्यक शारीरिक अवस्था में एकांत में बैठने पर मैं बार बार जोर देती हूँ।

ध्यान शिविर में पूरा साधक समूह एक ही विधि को एक साथ करता है। तो कोई किसीको विक्षेप नहीं पहुंचाता। वहाँ सब चेतनाएं समानधर्मा की भांति बरतती हैं। उन समान धर्माओं की ऊर्जा परस्पर को प्रेरित और प्रोत्साहित करती है, बल देती है। परंतु आप अकेले जब यह ध्यान कर रह हैं तो कुतुहलवश भी किसी को पास मत बैठने देना। यहाँ भावनाओं से काम नहीं चलेगा, यहाँ प्रयोग केन्द्र में है। अगर छोटा बच्चा भी आपके पास आ जाएगा तो वह कुतुहलवश कुछ प्रश्न करेगा। आप ध्यान की प्रक्रिया में से गुजर रहे हैं। परंतु जो



सामने बैठा हुआ है उसका आपके ध्यान में कोई रस नहीं है तो वह अकेलापन महसूस करने की वजह से आपको बातें कराएगा। कभी कभी आपकी नकल करने की कोशिश करेगा। हो सकता है कि प्रेम के वश आप विधि करते हुए भी उसकी ओर ध्यान देंगे। क्योंकि बच्चे का दिल बिलकुल साफ होता है। उसकी निरदोषता हमको आकर्षित कर लेती है और ध्यान में विक्षेप आ जाता है। इसलिए कहती हूँ कि ध्यान विधि के लिए बिलकुल एकांत में बैठो।

अगर अन्य कोई व्यक्ति बैठा है आपके कमरे में या आपके पास तो संभव है कि वह उसके मन में तर्क वितर्क करे। आपको पागल समझे, अथवा आपकी ध्याननिष्ठा पर संशय करे। उनके नकारात्मक विचार आपको विधि में सफल नहीं जाने देंगे। इसीलिए एकांत पर बार बार जोर देती हूँ।

आपको याद होगा, मैं कई बार कहती हूँ कि मनुष्य शरीर की इन्द्रियाँ बाहर से बहुत कुछ चीजें शरीर के भीतर आने में मदद करती हैं और बहुत सारी चीजें बाहर फेंकती हैं। जब भीतर का दृष्टा जाग जाता है तभी बोध होता है कि कौन सी चीजें भीतर आने देने जैसी हैं? और कौन सी नहीं आने देने जैसी? बाहर फेंक देने लायक चीजें कौन कौन सी हैं? और कौन कौन सी भीतर संग्रहित करने योग्य? प्रिय साधको!

बहुत सारे लोगों को पता नहीं है, परंतु आपकी इन्द्रियों के द्वारा पूरे दिन अपार ऊर्जा का व्यय होता है। आपको पता है! आँख की पलकों के झपकने तक की प्रक्रिया ऊर्जा मांगती है। आप जितनी देर तक आँख खुली रखते हो उतनी देर तक ऊर्जा खर्च होती है। जितनी बारीकी से चीजों या दृश्यों को देखते हो या जितने ज्यादा दृश्यों को भरते रहते हो अपनी आँख में उतना ज्यादा ऊर्जा व्यय होता है।

आप अपने सेल फोन से एक ही नंबर पर सौ बार फोन करें कि अलग अलग नंबर पर सौ बार फोन करें परंतु बैटरी तो उतरेगी ही। ऐसा ही है इन्द्रियों का। आपके लिए समझना आसान हो जाए इसलिए मैं उदाहरणों का उपयोग करती हूँ। आपके पास तो मन और इन्द्रियों सहित ग्यारह साधन हैं। कितनी ऊर्जा का खर्च होता होगा उन इन्द्रियों के द्वारा, कभी सोचा है?

आज के मनुष्य के पास समय ही कहाँ है सोचने का? उसके पास तो सम्पत्ति है अति सुन्दर मनुष्य देह की, जितना हो सके उतना ज्यादा उसे वह भुगत लेना चाहता है। भले भुगतो, मेरा कोई विरोध नहीं है। परंतु रीचार्ज तो कराओ। उन्हें अनेक प्रकार से रीचार्ज करना पड़ता है। यह रीचार्ज केवल होटल में जाकर पंजाबी खाना या मेकडोनाल्ड्स के होट डोग या बर्गर से नहीं होगा। यह तो हुआ स्थूल रीचार्ज। अगर स्थूल रीचार्ज करने से ही सबकुछ होता है तो मनुष्य डिप्रेशन में क्यों जाता है? तनाव क्यों बढ़ता है? यह तनाव ही सबूत है कि आप केवल एक स्थूल ढाँचा नहीं हो।

हाँ, भोजन के द्वारा स्थूल ढाँचे के साथ सूक्ष्म थोड़ा बहुत रीचार्ज हो लेता है परंतु उतना पर्याप्त नहीं है। याद रखो, सूक्ष्म को रीचार्ज करने का तरीका सूक्ष्म होता है। आपके भीतर का रीचार्ज होता है चिंतन, मनन, निदिध्यासन और सूक्ष्म केन्द्रों के कार्यान्वित होने से। वे केन्द्र कार्यान्वित होते हैं जागरूक सोच से, ध्यान से, साधना से, आत्माभ्यास से, प्रेम से, सत्संग से, आशीर्वाद से। यह भाषा हर इन्सान नहीं समझ सकता क्योंकि यह अनुभव का विषय है।

प्रिय साधको!

ध्यान की कुछ विधियों में इन्द्रियों का सम्यक उपयोग करना सिखाया है तो कुछ विधियों में इन्द्रियों के द्वारा निरर्थक व्यय होती रहती ऊर्जा को कैसे बचाया जाए, यह भी सिखाया है? आपको पता है, आपकी ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा मस्तिष्क ले लेता है। प्राचीन और आधुनिक विज्ञान शरीर को तीन भाग में बांटते हैं, मस्तिष्क, धड़ (शरीर का मध्य भाग) और हाथ-पैर। मनुष्य की पाँचों इन्द्रियों का समावेश देह के मस्तिष्क विस्तार में है। अर्थात् कंठ के ऊपर के भाग में है। आधुनिक विज्ञान शरीर को बोडी, हैड, अपर एक्सट्रीमिटीज़ और लोअर एक्सट्रीमिटीज़ नाम से जानता है। परंतु अध्यात्म का विज्ञान आधुनिक विज्ञान से बहुत आगे अनेक गुना विस्तृत एवं सूक्ष्म है। और इसी कठिनाई की वजह से पढ़े लिखे आदमी को यह सब समझाना ज्यादा कठिन हो जाता है। क्योंकि वह बेचारा विज्ञान की सीमा पर आकर अटक गया है। वह सोच ही नहीं सकता कि उसने जा पड़ा है उससे आगे भी बहुत कुछ है। जिसे यूनिवर्सिटियाँ नहीं सिखा पातीं।

ऐसे लोग जब मेरे पास आते हैं तब सबसे पहले तो उन्हें आध्यात्मिक सोच के लिए तैयार करना पड़ता है।

मैं कहना चाहती हूँ कि ध्यान मार्ग मनुष्य की निरर्थक व्यय होती ऊर्जा को बचाकर आध्यात्मिक उन्नति साधने का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। ज्यादातर विधियों में तो आँखें बंद रखने का ही विधान है। हमारे नेत्र एक घंटे में हजारों हजारों दृश्य खींच लेते हैं अपने कैमरे में। उनमें से बहुत सारे दृश्य तो निरर्थक होते हैं। एक दूसरी बात भी समझ लें। अगर कैमरामैन द्वारा गलती से भी कैमेरा स्विच ऑन रह जाएगा, तो भी कैमेरा फोटो तो खींचता रहेगा। बेचारे कैमेरे के पास तो कोई बोध नहीं है कि कैसे फोटो खींचूं? और कैसे न खींचूं? दूसरी ओर बेचारा कैमेरामैन सजग नहीं है। क्या होगा परिणाम? स्वाभाविक है, कैमरे में भला बुरा सबकुछ आ ही जाएगा और बैटरी निरर्थक उतर जाएगी।

मनुष्य की ऐसी हालात है उसकी अजाग्रति की वजह से। उसकी आँखों का केमेरा चालू ही पड़ा है; बेचारी अबोध नेत्रेन्द्रिय चारों ओर भटकती रहती है; स्नैप खींचती रहती है। और मनुष्य की बैटरी उतर जाती है। अंजान, अज्ञानी या बेवकूफ केमरामैन जैसा मनुष्य स्विच ऑफ करने की कला ही नहीं जानता।

अच्छा है कि कुदरत ने मनुष्य को निद्राधीन करने की व्यवस्था कर रखी है। मैं निद्रा को कुछ घंटों की कुदरती एनेस्थीसिया कहती हूँ। वह एनेस्थीसिया कुदरत रोज रोज देता है मनुष्य को। परंतु इससे किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती, मानव की। कितना उदार और कुशल है ईश्वर और कितना भाग्यवान है मनुष्य।

निद्रा तो मनुष्य को ईश्वर की ओर से मिला हुआ वरदान है। जिसे नींद न आती हो ऐसे मनुष्य को या तो मैं सिद्ध कहूँगी अथवा दुर्भागी। सिद्ध निद्रा पर विजय पा लेता है। दुर्भागी निद्रा के लिए छटपटाता है परंतु आती नहीं है। नींद में कुछ घंटों के लिए स्वतः आंखें बंद हो जाती हैं और स्वतः रीचार्ज हो जाती हैं सूक्ष्म ऊर्जा के द्वारा।

बंद कमरे में भी तीन टाइम पोषण युक्त भोजन मिलने पर भी अगर निद्रा के द्वारा सूक्ष्म रूप से मिलती हुई ऊर्जा मनुष्य को प्राप्त न हो तो मनुष्य पागल हो जाएगा। अपनी इच्छा के परे जाकर भी दिमाग और इन्द्रियों को कुछ घंटों के लिए आराम देने की कुदरत की निद्रा थैरापी को मैं कहती हूँ ईश्वरीय-वरदान। यह वरदान आस्तिक और नास्तिक सबको मिला है। पापी और पुण्यवान सबके लिए है।

मैं कहूँगी कि विज्ञान की खोज मनुष्य का समय बचे और वह ज्यादा आराम, शांति और सुख पा सके इसलिए होती है। परंतु आज का हार्डटैक मानव ज्यादा दुःखी और अशांत हो गया है। विज्ञानिक उपलब्धियों के द्वारा ज्यादा आराम पाने की जगह उसका आराम हराम हो गया है। करुणा की बात यह है कि दुःखी होने के बावजूद भी उसे पता नहीं है कि वह अस्वस्थ और परेशान है।

विज्ञान की इजादों ने रात को दिन बना दिया। बिजली, कम्प्यूटर, शेर बाजार, नेट चेटिंग और टी.वी. चैनल्स..... ये सारी चीजें मनुष्य की मदद के लिए खोजी गई हैं परंतु मनुष्य उसका मालिक नहीं दास बन गया। आजके बच्चों से लेकर यूवकों तक सबकोई अपनी आंखों का कम से कम चार गुना उपयोग कर रहे हैं आज। वह उपयोग है कि दुरउपयोग! यह तो वही जाने। परंतु यूवकों में पच्चीस से पैंतीस साल के बीच में हाई बी.पी. के केसिस, तनाव, मेंटल डिप्रेशन और शुगर लेवल बढ़ गया है। उन लोगों के लिए नींद की गोलियाँ और मस्तिष्क को शांत करने की गोलियाँ लेना अनिवार्य हो गया है।

उपकरणों के उपयोग से आंख को आज दुःख देकर सुख और पैसे कमाना और फिर तनाव बढ़ने से उस तनाव से मुक्त होने के लिए पैसों को गलत रास्ते पर फेंक कर इन्जोयमेन्ट ऑफ लाईफ का भ्रम पालना यह सब क्या है? यह सब अवैज्ञानिक और अराजक ढंग है जीवन जीने का। शराब, सुंदरी, पैसे, कैब्रे और जाज़ म्यूज़िक आखिर कब तक?

प्रिय साधको!

मैं कोई रूढ़ीवादी व्यक्ति नहीं हूँ। आनंद विरोधी नहीं है मेरा चित्त। मैं तो समग्रतया आनंद के पक्ष में ही हूँ। परंतु आज जब एक मजदूर के स्वास्थ्य से सम्पन्न मनुष्य का स्वास्थ्य कमज़ोर सिद्ध हो रहा है, तब जागना अनिवार्य है। और आपको ध्यान ही जगा जाएगा। पहले समझो, कि आप जिसे आनंद मान रहे हो, वह सब सही में आनंद है?

प्रिय साधको!

सुख का विरोधी शब्द है दुःख। आनंद का कोई विरोधी शब्द नहीं है। आनंद संस्कृत शब्द है इसका अंग्रेजी मत करना। भाषा बदल जाने से कभी कभी अर्थ और प्रभाव भी बदल जाता है। खैर! आनंद में हमेशा कुछ ना कुछ जुड़ता जाता है। विश्व की कोई डिक्सनरी कभी भी कुछ कम नहीं कर सकती आनंद शब्द में से। न इस शब्द का विरोधी शब्द दे पाएगा विश्व का कोई पंडित।

आनंद, परमानंद, रसानंद, ब्रह्मानंद .....जोड़ते जाओ कभी कुछ कम या नकार नहीं पाओगे आप। अब समझे! जो आपको विकसित करे, हमेशा प्रसन्नता दे, कभी हानि न पहुँचाए, न कोई तनाव बढ़ाए, न कोई चिंता दे – ये है आनंद।

मैं नहीं कहूँगी कि यह करो यह न करो। मैं क्यों कहूँ यह सब? आपके दृष्टा को जगाओ। वह जैसा कहे वैसा करो। मुझे न्यायधीश नहीं बनना है दूसरे धर्मगुरुओं की भांति। मेरे पास सिर्फ हकार है। उस हकार को मैं उस हद तक ले जाऊँगी कि आपका नकार मेरे सानिध्य में अपनेआप विसर्जित हो जाए। और यही शिक्षा का सही ढंग है। इसे मैं कहती हूँ आध्यात्मिक शिक्षा, जाग्रति की शिक्षा, संत समागम की शिक्षा, ध्यान की शिक्षा।

मैंने देखा है लोगों को जो देर रात तक जागते हैं। फिर दिन में दोपहर तक सोए रहते हैं। ये क्या है? आँख और मस्तिष्क को आराम देना तो हुआ यह अर्थात् निद्रा के द्वारा सूक्ष्म रीचार्जिंग अनिवार्य है मस्तिष्क और इन्द्रियों का।

मैं कहती हूँ कि ध्यान में उतरकर रीचार्ज हो जाओ। करलो आंखें बंद प्राप्त कर लो अपने ही भीतर से सूक्ष्म शक्ति को। ध्यान को

आप सेल्फ रीचार्जिंग प्रोसेस कह सकते हो। ध्यान करते करते अगर आप उतर गए समाधि की अवस्था में तो नए प्राण फुंक जाएंगे आपके शरीर के सारे तंत्रों में। आप फिर से बच्चे जैसा ऊर्जान्वित और सरल प्राप्त कर लेंगे अपनेआप को।

ध्यान की विधियाँ हजारों वर्ष पहले भारत में विकसित हुई। यहाँ से सारे फार्मूला पहुंचे पूरे विश्व में भिन्न भिन्न नाम से। शिव, कपिल, वशिष्ठ, वामदेव, पतंजलि, और बुद्ध आदि प्रमुख हैं उन प्राचीन ध्यान प्रणेतियों में। समय के साथ वही फार्मूला योग के स्थान पर योगा और ध्यान के नाम पर जैन नाम के नए वस्त्र पहन कर हमारे सामने आए।

प्रिय साधको!

ध्यान भारत की ही धरोहर है। भारत के उदार मनीषियों ने उसपर कब्जा न रखकर उसको विश्व में बाँटा है। इतना ही नहीं परंतु ध्यान आपका व्यक्तिगत अधिकार है। आप हर प्रकार के अधिकारों को भुगतते हैं, लड़ते हैं उन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए, कभी कभी कानूनी जंग में भी उतर जाते हो। तो फिर क्यों गवाँ रहे हो ध्यान के इस आध्यात्मिक अधिकार को?

प्रिय साधको!

ध्यान से मत डरो। यह न तो गंभीर है, न भारी है, न कठिन है, न मस्ती, ना ही आनंद या सुख का विरोधी। ध्यान गुरु कोई फौजदार नहीं है। डरते क्यों हो? मैं आपको ध्यान के लिए प्रेरित कर रही हूँ। ऊर्जा दे रही हूँ ध्यान शिबिर के द्वारा। मुझसे डरना नहीं है। घबराना नहीं है। स्वयं को थोड़ा ढंग से देख लो। थोड़ा बदल लो, घबराहट दूर हो जाएगी। आंतरिक रूप से मेरे निकट आकर, मेरा सहयोग प्राप्त कर लो आपके आध्यात्मिक विकास में।

ध्यान में आपका मन चंचल होता रहे, पैर अकड़ जाएं, देह थक जाए, चित्त बोझिल हो जाए और आप हताश हो जाओ तो समझ लेना कि आपका चित्त ध्यान में नहीं है कहीं और है। आप ध्यान नहीं कर रहे हो कुछ और कर रहे हो मन से। आप नहीं समझे हो ध्यान विधि को ध्यान से। कुछ तो गड़बड़ हो रही है आपके साथ।

ध्यान तो आपको प्रसन्नता निर्भयता और महाशांति प्रदान करता है। जरूरी इतना है कि पहले जान लो कि आपके लिए कौन सी विधि उपयोगी है? यह जानने के दो मार्ग हैं। एक तो आप सारी विधियों में से एक एक बार गुज़रो और जान लो कि कौन सा मार्ग आपके परमात्मा को, प्रकृति को, स्वभाव को अनुकूल है? अथवा कोई प्रबुद्ध ध्यान गुरु मिले तो उनके इतने निकट रहने की पात्रता प्राप्त करो कि वे जान लें आपका स्वभाव और उसके अनुसार अनुकंपा करके आपको दे दें एक ऐसी विधि कि आपका रास्ता सरल बन जाए। याद रहे ध्यान आपके लिए कठोर परीक्षा नहीं परंतु एक आनंद का अवसर है।

प्रिय साधको!

आपको सावधान भी रहना पड़ेगा। जैसे कुछ बनावटी डॉक्टर होते हैं वैसे ही कुछ ध्यानगुरु भी। आजकल के मार्केट में बोलबाला है ऐसे ढोंगियों का। भारत में सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र धर्म और अध्यात्म का है। और इसी क्षेत्र में कोई सर्टीफिकेट की आवश्यकता नहीं है। कभी कभी प्रचार के आधार पर पब्लिक मूढ़ लोगों को भी प्रमाणित कर देती है धर्मगुरु। स्वाभाविक है, लोकमानस का स्तर क्या है? यह आप अच्छी तरह से जानते हैं। ज्यादातर लोग ओडीनरी नहीं परंतु वेरी ओडीनरी हैं। एक आध्यात्मिक समाज में अपरिपक्व मानस के लोग स्वाभाविक है कि कोई ऐसी किस्म के आदमी को ही चुन लेंगे अपना गुरु। जिसको जो हज्म होगा, वही तो पसंद करेगा!

मैं आपको कहती हूँ कि दुन्यवी जीवन में आप भले साधारण बने रहो। परंतु आपका आंतरिक स्तर सर्वोच्च होना चाहिए। संसार समाधान से चलता है। अध्यात्म जगत में कोम्प्रोमाइज़ की कोई गुंजाइश नहीं है। सांसारिक लोगों के स्वार्थ का आधारबिन्दु है “समाधान”। और अध्यात्म का आधारबिन्दु है, “समाधि”।

दुनियाँ में सबकुछ है। पत्थर भी है, हीरे भी। आप जो खोजेंगे वही आपको मिलेगा। अगर गलती से पत्थर को हीरा मान लिया और बाद में पता चला कि यह तो पत्थर को पकड़ रखा है अब दुनियाँ को कैसे कहूँ कि यह तो पत्थर निकला? अगर कहूँगा तो दुनियाँ को मेरी असलियत के बारे में जो भ्रम है वह टूटेगा। मेरी प्रतिष्ठा कम हो जाएगी। यह तो हो गया इज़्ज़त का सवाल। अब तो भ्रम में जी लेने में ही आबरू है। अब तो गाते रहो पत्थरों के गुणगान।

प्रिय साधको!

ऐसा मत करना। अध्यात्मावस्था की अपरिपक्वता में किसी पत्थर को हीरा मानकर पकड़ लिया है और फिर आप आत्मचेतना से जाग चुके हो तो फेंक दो पत्थर को। दुनियाँ की चिंता मत करना। उधार प्रतिष्ठा फेंक देने में ही आपका कल्याण है। पत्थर को फेंक देना पाप नहीं है। उसे हीरा मानकर पकड़ रखना और सत्य को जानने के बाद भी धोखे में रहना यह पापा है।

कुछ साम्प्रदायिक गुरु इसी डर से तो ठोक ठोक के भक्तों के मन में बैठाते हैं कि गुरु मत बदलना, गुरु बदलना पाप है, गुरु बदलेंगे



तो नर्क में जाएंगे, अपने संप्रदाय को मत छोड़ना.....। क्या जरूरी है भक्तों को ऐसा कहना ? वे लग डरपोक हैं। उन्हें पता है कि धर्मक्षेत्र में बार बार क्रांति का युग आता है। अगर किसी ने धर्म क्रांति छेड़ दी तो क्या होगा हमारा ? इसीलिए वे ठोकपीट कर ग्रंथों का आधार लेकर बिठाते हैं भक्तों के मन पर कि गुरु मत बदलना।

प्रिय साधको !

क्या गुरु दत्तात्रेय पागल थे कि उन्होंने चौबीस गुरु बनाए ? राम के वशिष्ठ और विश्वामित्र दो गुरु थे तो क्या वे गुरुद्रोही हो गए ? क्या श्रीकृष्ण पागल थे कि उन्होंने गार्गाचार्य से शक्तिरहस्य पाया और सांदीपनी से ब्रह्मविद्या ? बुद्ध ने इक्कीस गुरु बदले फिर भी प्यास नहीं बुझी। अंत में भीतर से आवाज आई कि – अप्पदीपो भवः। तू तेरा प्रकाश बन। इसका अर्थघटन करें तो एक अर्थ में गुरु का बहिष्कार ही कर दिया। तो क्या कहेंगे बुद्ध को ?

प्यारे साधको !

ध्यान का मूल संदेश ही यह है कि आत्मप्रकाश का अनुभव करो। ध्यानमार्ग का उद्देश्य ही यही है कि मनुष्य सबकुछ आत्मा के प्रकाश में कर। ताकि भटकने की कोई संभावना ही न बचे।

कुछ बातें करनी अनिवार्य थी इसलिए करीं। अब समझ लो विधि को और पा लो स्वयं को। खोल दो अंतर के द्वार जो हजारों जन्मों से बंद पड़े हैं।

एकांत स्थान में पलाठी लगाकर बैठो। दोनों हाथों की मुख्य तीनों अंगुलिओं से आंखों को थोड़ा दबाकर बंद कर लो। ऐसा करने से आँख का तेज जो बाहर की ओर बहता था वह आँख में जमा होने लगेगा। इस विधि को ध्यान तंत्र ने “धाम ध्यान” कहा है। धाम शब्द के वैसे तो अनेक अर्थ हैं। परंतु यौगिक परिभाषा में धाम का अर्थ है आंखों का तेज। जितना हो सके बैठे रहो दोनों आंखों पर हाथ रखकर। अपनी अंगुलियों से आँखों को ऐसे दबाए रखना है कि आँख में दर्द भी न हो और बाहर की प्रकाश किरण आँख में जा भी न पाए। आँख की लपकों को जन्म से आदत हो गई है झपकने की। यह एक नेच्यरल ओटोमोड है। वह अपनेआप झपकती रहती है। अगर आप आँख पर हाथ नहीं रखेंगे। तो पलकों की झपकने की आदत की वजह से पलकों की पकड़ ढीली हो सकती है आँख पर से। उस स्थिति में बाहर का प्रकाश आपकी आँखों पर आक्रमण कर सकता है और चित्त अस्थिर हो सकता है। इस विधि में बाहर का प्रकाश बाधारूप है। इसलिए यत्नपूर्वक आँखों की पलकों को अंगुलिओं से दबाए रखो।

थोड़ी ही देर में बंद आँखों के भीतर भी आपको रोशनी के कण दिखाई देने लगेंगे। उसमें तल्लीन होते ही आप आत्मप्रकाश का अनुभव और निर्विकल्पावस्था पा लेंगे। नेत्र प्रकाश का आँखों में भीतर ही भीतर दबाव बढ़ने से अ-मन हो जाएंगे। हो सकता है इस विधि में किसी साधक को चक्कर आ जाए या बेचैनी जैसा हो। परंतु डरना नहीं। यह ध्यान भले थोड़ी देर के लिए करो परंतु करो जरूर।

मैं बार बार कहती हूँ कि अगर यह विधि चौबीस मिनट तक कर सको तो बहुत अच्छा। अगर तकलीफ बढ़ रही है, स्थिरता नहीं आती है या घबराहट होती है तो चौबीस मिनट में दो तीन बार करो।

मैं बार बार कहती हूँ कि कुछ ध्यान विधियाँ इन्द्रियों को निष्क्रिय करके करनी होती हैं। जिससे ऊर्जा का संचय हो, ऊर्जा की बचत हो। निरर्थक विषयों में व्यय होती ऊर्जा बचकर, उर्ध्वगामी बनकर आपको बदल दे। कुछ विधियाँ इन्द्रियों को विशेष रूप से बहिर्मुख करने या खास विषय वस्तु में स्थिर करके उन इन्द्रियों की शक्ति को विशुद्ध आनंद पाने में उपयोग करके निर्विकल्प अवस्था तक पहुँचना है। और कुछ विधियों में शरीर के खास स्थान, बिन्दु और भाग पर दबाव डालकर मन को उस बिन्दु के प्रति आकर्षित करके निरविचार करना है। कुछ विधियों में तीव्र भावना ही चित्त को स्थिर कर देती है।

यहाँ इस विधि में हो सकता है कि मन घबराकर भी आँख के प्रति केन्द्रित हो जाए। विधि गहन होते ही आँख निष्क्रिय होने से निर्विषय हो जाएगी। और इस तरीके से मन भी निर्विषय अवस्था में प्रवेश कर लेता है। वह क्षणिक प्रवेश ही परिचय है, परमावस्था का। सूर्य के पते के लिए एक किरण ही काफी है। वह किरण मिल जाएगी आपको ध्यान विधि में। अगर आपकी निष्ठा और समग्रता है तो।

## धरणा - २४

# सुवास प्रवेश ध्यान

प्रिय साधको !

ऐसे स्थान पर जाकर बैठ जाओ जहाँ सुवास सहज प्राप्य हो। इसके लिए तीन मार्ग हैं। अगर संभव है तो सच्चे पुष्पों के हरे भरे बगीचे में जाकर पुष्प के सानिध्य में बैठो। सुवासित पुष्प को मंदिर की मूर्ति से बिल्कुल कम नहीं समझना।

भगवान की विविध मूर्तियाँ भक्त के मन के साथ अलग ढंग से काम करती हैं और एक सुवासित पुष्प ध्यानी के साथ अलग ढंग से। दोनों का परिणाम तो रूपांतरण ही है। याद रहे, ध्यानी जब पुष्प के सानिध्य में ध्यान करने बैठता है तब एक अर्थ में वह पुष्प की सुवास का भक्त ही है। वह सुवास को पूरा पूरा समर्पित हो जाता है। जिस तरह परमात्मा को पाने के लिए एक सगुण उपासक के लिए मूर्ति माध्यम है उसी तरह ध्यानी के लिए माध्यम है पुष्प की सुवास।

अगर सच्चे पुष्प सहज रूप से प्राप्त न हों। तो किसी मंदिर, मस्जिद, दरगाह या कोई भी ऐसा स्थान जहाँ धूप दीप से माहौल सुवासित हो जाता हो वहाँ जाकर बैठो। इतना ध्यान रहे कि माहौल में धूप की वजह से आपको घुटन हो ऐसा नहीं होना चाहिए क्योंकि यह विधि कोई धार्मिक विधि नहीं है। यह एक अतिधार्मिक विधि है। यहाँ कोई बंधन नहीं है धार्मिक प्रतीकों का। यहाँ ऐसा नहीं है कि धूप दीप हो रहे हैं तो श्रद्धा से घुटन भी सहन कर लो। स्वयं को पीड़ा या कष्ट देना यह मूढ़ता है, ध्यान और भक्ति नहीं।

अगर धूप तीव्र हो रही हो और आपको तकलीफ हो रही हो तो वहाँ से दूर चले जाना। ये कोई पाप या नास्तिकता नहीं होगा। ध्यान खुद को तकलीफ देने के लिए नहीं है। ध्यान तो है आत्मसाक्षात्कार।

सुवास प्रवेश ध्यान के नाम से खांसी या ऐलर्जी होने लगे ऐसा माहौल नहीं चाहिए। यहाँ केन्द्र में सुवास है, शांति है, सहजता है, मौन है धर्मस्थान नहीं। धर्मस्थान में अगर शांति है, स्वच्छता है और वहाँ की तरंगें आपकी मदद कर रही हैं तथा ज्यादा भीड़-भाड़ और घुटन नहीं है तो वहाँ के धूप की सुवास में प्रवेश करना बहुत अच्छा है। परंतु अक्सर जाहेर धर्मस्थानों में ऐसा संभव नहीं है।

मैं तो चाहूँगी कि हर धर्म स्थान में जहाँ बड़े बड़े ट्रस्ट चल रहे हैं। बड़ी तादाद में भक्त आते हैं और भक्तों के साथ करोड़ों का चढावा भी आता है ऐसे हर धर्म स्थान पर ध्यान प्रेमियों के लिए एक खास ध्यान खंड की सुविधा उपलब्ध करानी चाहिए। जहाँ केवल मौन और शांति हो। और सम्यक अनुशासन के साथ वहाँ ध्यान प्रेमियों को प्रवेश देना चाहिए।

खैर! विश्व में ऐसा तो बहुत कुछ होना चाहिए मगर करे कौन? मैं कहती हूँ, शुभ कार्य का आरंभ स्वयं से करो, अपने घर से करो, अपनी ऑफिस से करो, अपनी संस्था से करो। आप में से हरेक व्यक्ति कुछ न कुछ शुभ करने के लिए सक्षम है ही। अगर आप कुछ भी नहीं कर पाए तो आपका धरती पर आना निरर्थक है।

प्रिय साधको!

कम से कम आपके घर में भले छोटी सी मगर एक शुद्ध शांत और स्वास्थ्यप्रद जगह ध्यान के लिए अवश्य होनी चाहिए। जिसका उपयोग घर के ध्यानप्रेमी लोग भले पांच मिनट परंतु केवल ध्यान के लिए ही करें। **ध्यानी का सहयोग करना यह परोक्ष रूप से धर्म की स्थापना है और अधर्म का नाश। ध्यान में उतरना यह प्रत्यक्ष पुण्य कर्म और महाधर्म है।**

हाँ! तो सुवासित और स्वास्थ्यप्रद एवं सहज मात्रा में धूप से भरे हुए माहौल में भाव से बैठो। अगर ऐसा भी संभव नहीं है तो घर में आपकी प्रकृति को अनुरूप सुवासित धूपबत्ती जला दो। जरूरी नहीं है कि कमरे में मंदिर या मूर्ति हो तो ही धूपबत्ती करें। भगवान की छबी या मूर्ति की ज्यादा चिंता मत करो। मैंने एक भजन में लिखा है इस संदर्भ में। और अक्सर मेरे अनेक प्रवचनों में उस भजन की विचार क्रांति को दोहराए बिना नहीं रह सकती हूँ।

मंदिर में जाने वालो तुम, खुद भी तो इक मंदिर हो

पत्थर में बैठा है प्रभु तो, तुम तो कितने सुंदर हो

पल दो पल की पूजा क्या है, हर क्षण खुद को योद करो

मूर्ति तो बोले न बोले, तुम तो ज़िन्दा ईश्वर हो

मंदिर में जाने वालो तुम, खुद भी तो इक मंदिर हो

फूल चढ़ाया भोग लगाया, मंदिर में जीवन को गँवाया

मानव तुमने मन को मनाया, ना सोचा क्या भीतर हो

मंदिर में जाने वालो तुम, खुद भी तो इक मंदिर हो

दैरो हमम पे भटका हुआ तुम, जनम जनम से भटक गया

“मोहिनी” बनो और जानो, तुम तो मस्त कलंदर हो

मंदिर में जाने वालो तुम, खुद भी तो इक मंदिर हो

पत्थर में बैठा है प्रभु तो, तुम तो कितने सुंदर हो

आखिर कब तक नकारोगे स्वयं को। कब तक निंदा करोगे शरीर की, कब तक समझोगे खुद को पापी, दीन, हीन! छोड़ दो सारी गलत धारणाओं को। धरती पर से अगर पाप मिटाना है तो मंदिर-मस्जिद की मूर्तियों से नहीं मिटेगा। मनुष्य की समझ बढ़ानी पड़ेगी। मनुष्य में सजगता लानी पड़ेगी। अगर सिगनल खुला है तो यातायात कैसे रुकेगा? उसे रोकना है तो सिगनल बंद करना पड़ेगा। मैं कहती हूँ मंदिर भले कितने भी खुलें परंतु पाप के रास्ते बंद नहीं होंगे तब तक पाप नहीं रुकेंगे। पाप के रास्त बंद कर दो। फिर कहाँ से आएगा मन में पाप?

आपको इतना तो पता होगा ही कि कोई भी पाप पहले मन में आकार लेता है। पाप का मूल स्वरूप तो विचार देह है। फिर वह कार्य रूप में प्रगट होता है। मैं कहती हूँ ध्यान पाप के मार्गों को बंद कर देता है। मानव चित्त का शुद्धिकरण हो जाता है ध्यान से।

किसी ने कहा है कि पापी से नहीं पाप से घृणा करो। मैं कहती हूँ पाप से भी घृणा मत करो और पापी से भी नहीं। घृणा से कुछ होगा ही नहीं। केवल पाप-विचार से सजग हो जाओ। पाप विचार को दफनाना सीखो। वह दफनाना सूक्ष्म है। यह हिंसा नहीं है परम अहिंसा की स्थापना है।

आप जिसे पाप कर्म कहते हो वह तो केवल अज्ञान और मूढ़ता के कारण आचरित हुई हानिकारक क्रिया है। क्रिया तो हो गई, बिगड़ना था वो बिगड़ गया, नुकसान होना था वो हो गया। फिर उसकी कितनी भी निंदा करो क्या फायदा? सिगनल तो चालू रखते हो। और चाहते हो कि ट्राफिक बंद हो जाए, रुक जाए। पटरी तो खाली है, रास्ते खुले हैं, ग्रीन सिगनल है, ट्राफिक चालू ही रहेगा। ढोंगी मनुष्य मन को हमेशा हरी झंडी दिखाता रहता है। ऊपर ऊपर से धार्मिक दिखता है। हिंसक और मूढ़ मनुष्य शरीर और मन दोनों को हरी झंडी दे देता है। चालाक आदमी पकड़ा नहीं जाता। मूढ़ पकड़े जाते हैं। महावीर ने कहा है पाप को धिक्कारो पापी को नहीं। मैं कहती हूँ, पाप या पापी किसी को मत धिक्कारो, धिक्कार में मत गँवाओ अपनी ऊर्जा, विरोध में उतरो ही नहीं। आपका कर्तव्य केवल इतना है कि प्रत्येक विचार पर आत्मनिरीक्षण करो। आपकी चेतना स्वनिरीक्षण की वजह से इतनी सजग हो जाएगी कि हानिकारक कृत्य में प्रेरित करने वाले विचार को सिगनल ही नहीं मिलेगा चेतना की ओर से। पाप विचार का ट्राफिक मुड़ जाएगा किसी और तरफ। आप नहीं बनेंगे निमित्त, आप नहीं बनेंगे पाप कर्म के लिए रास्ता।

आत्मनिंदा बंद करो। सबकुछ आपके हाथ में है। चालाकियाँ, अंधश्रद्धा, भय और पलायन भाव छोड़ो। अपना दायित्व निभाना सीखो। परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ रचना हो आप, अमृत की संतान हो। आप केवल जीवन दे सकते हो, नवसृजन कर सकते हो, आनंदित हो सकते हो, आनंद बांट सकते हो; किसी को हानि पहुंचा ही नहीं सकते। आप पैदा नहीं हुए है दुष्कृत्य करने के लिए।

बेशक महावीर का कर्मवाद अद्भुत है परंतु चालाक मनुष्य अपने आलस और घटियापन की वजह से महावीर के कर्म के सिद्धांत की कोरी फिलसुफी का शस्त्र बनाकर लड़ने लगा। ये बहादुरी नहीं है; महावीर की आड़ में लड़ना यह नपुंसकता है।

महावीर ने जब कर्मवाद समझाया तब समय अलग था अर्थात् अंदाजन ढाई हजार वर्ष पहले महावीर ने उपदेश दिया। उस समय मनुष्य सहज, सरल और बहुत भोला रहा होगा। आज मैं कहती हूँ कि प्रत्येक वाद, धर्म और सिद्धांतों से अगर कुछ ज्यादा उपयोगी है तो यह है ध्यान। जो गणित और हिसाब किताब से ऊपर है। सब वाद विवाद से ऊपर है। सीधा सादा सत्य का अनुभव है। ध्यान सही कर्म के लिए रास्ते खोल देता है। जो ध्यान में उतरता है, उसके लिए गलत काम करने का कोई रास्ता बचता ही नहीं है। इस अवस्था को मैं कहूँगी, आध्यात्मिक विचारों की उत्क्रांति, विचारशुद्धि, भावशुद्धि।

भावशुद्धि और विचारशुद्धि से मनुष्य का व्यवहार स्वतः स्वाभाविक और शुद्ध हो जाएगा। फिर उसे कोई ग्रंथ, कंठी, माला, धर्मस्थान या उपदेश की आवश्यकता नहीं रहेगी। ध्यान में उतरने के बाद भी अगर किसी के जीवन में ये सारी बातें रहती हैं तो समझना वह केवल सिंगार और आनंद के लिए होगी। वह उनकी पसंद होगी। धार्मिक आश्वासन या धोखा नहीं।

प्रिय साधको!

हम सुवास प्रवेश ध्यान पर बात कर रहे हैं। किसी भी धार्मिक स्थान में बैठकर भी सुवासित धूप के माध्यम से अथवा अपने कमरे में धूपबत्ती जलाकर आप यह प्रयोग कर सकते हैं।

अगर ऐसी भी संभावना न हो, तो क्या करें? मैंने देखा है कि ध्यानी किसीका कुछ भी नहीं बिगाड़ता। फिर भी अशांत प्रकृति के लोग उपद्रव खड़े करते रहते हैं। ध्यानी को विक्षेप पहुंचाते रहते हैं। कुछ लोग ध्यानी को ध्यान करता हुआ देखकर लघुताग्रंथि से पीड़ित होने लगते हैं। क्योंकि जो खुद के बस की बात नहीं है, ऐसी बात में कोई और सफल जा रहा है तो उससे सहन नहीं होता। इसलिए हमेशा ऐसे प्रयास करते रहते हैं कि ध्यानी ध्यान न कर पाए।

मीरा की भक्ति और सुरीले भजन मेवाड़ के राजमहल के सोन्दर्य को चार चांद लगा रहे थे परंतु कुछ अशांत और विकृत मन के



लोगों को तकलीफ होती थी। ऐसे लोग अकारण परपीड़न शुरू कर देते हैं। अच्छे काम में विक्षेप खड़ा करना, बाधा डालना, अफवाहें फैलाना और माहौल को दूषित करना वे उनके रस के विषय होते हैं।

प्रिय साधको !

मत रहना ऐसे माहौल में, नहीं करना ऐसे लोगों का संग, बचा लेना अपने आप को। यह भगौड़ापन नहीं है परंतु समझदारी है। गलत माहौल से खुद को बचा लेना यह परम धर्म है। कहाँ जाए ? क्या करे ? क्या होगा ? कैसे जीएंगे ? ये सब प्रश्न मत उठाना। अस्तित्व महान है। महान ध्येय की वजह से क्षुल्लुक और क्षूद्र को छोड़ा है तो अस्तित्व किसी न किसी रास्ते से आपकी मदद करेगा। आपकी आवश्यकताएं बिना मांगे पूरी हो जाएंगी।

परंतु अफसोस की बात है कि लोग साहस नहीं जुटा पाते हैं। आवश्यकता है केवल सत्य के लिए साहस करने की। मैंने चौदह वर्ष की उम्र में अपार विश्वास के साथ खुद को अस्तित्व के हवाले कर दिया था। संघर्ष तो हुआ, बहुत सारे आरोह अवरोह भी आए। दुःख तो जगत का मूल सत्य है। इससे मैं, बुद्ध, महावीर, राम, कृष्ण, ईसू या महम्मद कोई नहीं बच पाया। परंतु जब इरादा साफ है, पक्का है और मूल वृत्ति कल्याण भाव की है तो कल्याण ही होगा।

मेरे अनुभव के आधार से मैं कह रही हूँ कि आत्मशांति के लिए घटने दो क्रांति। ऐसी क्रांति को मैं धर्मक्रांति कहती हूँ, आध्यात्मिक क्रांति कहती हूँ। इसमें अगर शहीद भी हो गए तो अच्छा है। क्योंकि आखिर मरने के लिए ही तो पैदा हुआ है मनुष्य। तो कम से कम अपनी इच्छा से और शांति से तो मरो। मेरे शब्द थोड़े कठोर जरूर हैं परंतु एक शुभचिंतक या कुशल वैद्य की दवाई समझकर पचा लेना।

खैर ! घर में भी ध्यान का माहौल न मिले और धर्म स्थानों में भी भीड़ की वजह से माहौल न बने तो एक अन्य उपाय भी है। और यह है इत्र। ध्यान रहे स्प्रे और इत्र के प्रभाव में भी फर्क पड़ जाता है। इत्र या पुष्पों के अर्क की सुवास कुदरती सुवास के ज्यादा निकट है। वह तेल आदि की मिलावट से पुष्पों का सार तत्व ही है। उसका असर भी बहुत हकारात्मक आता है मनुष्य के मन पर। परंतु ध्यान रहे आपकी प्रकृति को अनुकूल आनी चाहिए वह सुवास।

सुगंधी फव्वारा यानि स्प्रे का भी इस्तेमाल कर सकते हैं आप इस विधि में। परंतु साधक को ध्यान रखना चाहिए कि खुशबू का प्रकार शांतिप्रद होना चाहिए। वह स्प्रे पेट्रोलियम बेस नहीं परंतु वोटर बेस होना चाहिए। खुशबू ऐसी होनी चाहिए कि चित्त को प्रसन्न करे, शांत करे परंतु शरीर को नुकसान करे या मन को उत्तेजित करे ऐसी नहीं होनी चाहिए। अगर मन को उत्तेजित करने वाली खुशबू का उपयोग कर लिया तो विधि निरर्थक हो जाएगी। इस्लाम में आज भी हिन्दुओं की भांति खुशबू की अतिशय महिमा है।

विश्व का कोई भी धर्म ध्यान और खुशबू के खिलाफ नहीं है। हिन्दू गूगल का धूप करते हैं और मुस्लिम लोबान का। परंतु दोनों का प्रभाव लगभग समान है। दोनों की खुशबू बाहर के वातावरण को शुद्ध करती है और चित्त को धीरे धीरे स्थिर करके निर्विचार स्थिति तक पहुंचा देती है। मैंने अभ्यास के द्वारा यह सब जाना है। ये कोई किताबों में लिखी हुई बातों को मैं नहीं दोहरा रही हूँ। ये एक सत्यानुभव है। जिसे मैं आपके साथ बांट रही हूँ। शायद आपको बताई हुई किसी भी विधि में से आपको प्रेरणा मिल जाएगी और आप ध्यान में उतर जाएंगे तो मेरे पैंतीस साल का अनुभव सविशेष रूप से सार्थक हो जाएगा।

अगर आपने कुछ पा लिया तो आपसे ज्यादा मेरे लिए आनंद की बात होगी। मेरे पास आने वाले अनेक साधकों में से एक भी साधक को मैं ध्यान में डूबता हुआ देखती हूँ तो मेरा हृदय नाच उठता है, झूम उठता है, आँखें आनन्द अश्रु से सजल हो जाती हैं। कुछ लोगों ने मुझे व्यंग्य में कहा है कि मीरा प्रेम दीवानी थी मैं ध्यान दीवानी हूँ।

प्रिय साधको !

हाँ, मैं सच में ध्यान दीवानी हूँ। मेरे दीवानेपन का कारण ना ध्यान है, ना ही प्रेम। मेरा दीवानापन ये मेरी मस्ती है, ये मेरा सहज स्वभाव है। ध्यान के माध्यम से या ध्यान विषयक सत्संग में कुछ लोग मेरी उस मस्ती को पहचान लेते हैं। ये दीवानगी दिव्य भी नहीं है और दुन्यवी भी नहीं। यह दीवानगी किसी भी विषय वस्तु की नहीं है। यह तो मेरा सहज स्वभाव है। यह दीवानगी सहज आनंद की है। इसी आनंद में से पूरा शिवमहापुराण भी चौपाईयों में उतरा, भागवत पुराण भी उतरा, देवीभागवत भी उतरा तथा सैंकड़ों कविताएं, गज़लें, नज़्म, लोरियाँ, गरबे और सूफी गीत भी उतरे। एवं ध्यान एक नई दिशा जैसे अनेको ग्रंथ भी। बहुत काम आ गई मेरी दीवानगी, मेरी मस्ती।

प्रिय साधको !

हम बात कर रहे थे सुवास ध्यान की। इस विधि को आप खुशबू ध्यान से भी याद रख सकते हैं। शास्त्र की भाषा याद न रहे तो चलेगा। उसके मर्म को याद रख लो। सत्य को समझने के लिए शास्त्रीय भाषा याद रखना अनिवार्य नहीं है।

सुवास प्रवेश ध्यान विधि इस्लाम में सबसे पुरानी और प्रसिद्ध विधि है। प्राचीन सूफी संत, औलिया जहाँ से गुजरते थे वहाँ सुवास

फैल जाती थी। मैंने सुना है कि निजामुद्दीन औलिया जहाँ से गुजरते थे वहाँ एक एक कोस तक हवा के झोंकों के द्वारा उनकी चंदन की खड़ाऊ की सुवास फैल जाती थी। कुछ सूफी संत कोई खास प्रकार की खुशबू लगाते थे। वह खुशबू ही पहचान होती थी उस संत की। खुशबू के प्रकार से उसके भक्त जान जाते थे कि उनके गुरु गुजर रहे हैं। उन संतों के लिए प्रेमी भक्त उनकी पसंद की खुशबू ही उपहार के रूप में या दक्षिणा के रूप में ले आते थे। और वे मुस्लिम संत जो भी आए उसे खुशबू का प्रसाद ही देते थे, जो भी आए उसे इत्र का फाया देते थे, हाथ पर इत्र लगा देते थे। बस वही स्पर्श और सुवास आशीर्वाद बन जाते थे, भक्त के लिए। प्रसन्नता छा जाती थी माहौल में बिना किसी शास्त्र, उपदेश या शब्द के। आज भी छोटे छोटे गाँव या शहरों के खास इलाके में कुछ फकीर लोबान का धूप लेकर घूमते हैं। यहाँ मैं भीखमंगों की बात नहीं कर रही हूँ।

इस्लाम की इस सुवास परंपरा को कुछ लोगों ने समय के साथ भीख मांगने का साधन बना दिया। परंतु हकीकत में तो फकीरों द्वारा चलाई गई मूल परंपरा थी सुवास फैलाने की। सुवास बाँटने की। मनुष्य के चित्त को तनाव में से कुछ क्षणों के लिए प्रसन्नता देने के लिए। हाँ, यह बात अलग है कि कुछ भक्त लोग स्वेच्छा से फकीर के जीवन निर्वाह हेतु या सत्कर्म के भाव से कुछ दक्षिणा धूप दानी में धर देते थे।

फकीर द्वारा स्वीकारी गई दक्षिणा से देने वाला अनुग्रहित होने का अनुभव करता था। और आज क्या है? आज एक दिव्य और अद्भुत परंपरा धंधा बन गया। बन गया भीख मांगने का साधन। हर परम्परा में इसी तरह से एक या दूसरा दूषण घर कर गया है। मैं कहती हूँ कि अगर परंपरा सही है तो दूषण को हटाकर, पुनः उस परंपरा को नए परिप्रेक्ष में, नई दृष्टि से, नए स्वरूप के साथ, आगे बढ़ाओ।

यहाँ सुवास का ध्यान विधि में उपयोग और समावेश करके कुछ ऐसा ही करने का मेरा प्रयास है। इस परंपरा को आज भी कई हिन्दु मुस्लिम संतो ने जीवित रखा है।

मेरे वतन, गढ़ड़ा स्वामीना, में बचपन में मेरे घर पर एक फकीर आया करते थे। वे घंटों तक बैठते थे, मेरे पिताजी के साथ। उस वक्त मेरी उम्र करीब चार-पांच साल की थी। वे मेरे पिताजी के मित्र थे। उनके व्यक्तित्व में मेरा कोई खास रस नहीं था। परंतु उनकी दो-तीन बातें मुझे बहुत अच्छी लगती थीं। एक तो वे ढोलक अच्छा बजा लेते थे, दूसरा बड़े सुरीले स्वर में पुराने ढंग से कव्वालियाँ अच्छी गा लेते थे।

मेंहदी लगाए हुए उसके लंबे दाढ़ी-बाल, नीली लुंगी और सफेद जुना पुराना कुर्ता। आज भी मुझे याद है उनका लिबास। थे बड़े सरल। लोग उन्हें गनी फकीर के नाम से जानते थे। उसकी तीसरी बात जो मुझे अच्छी लगती थी वह थी धूप दानी लेकर गढ़ड़ा की छोटी सी बाजार में दुकान दुकान पर घूमना। बड़ा संतोषी फकीर था वह। बीबी-बच्चों का बड़ा परिवार होने पर भी गरीबी में भी आनंदित था, मस्त था। बाज़ार में मैं कभी भी उन्हें देख लेती थी तो धूप की सुवास की वजह से वह मेरे लिए आकर्षण का कारण बन जाता था। मेरे पिताजी की अंगुली थामकर मैं उनसे गनी चाचा, गनी चाचा कह कह कर बातें कराकर रोके रखती थी। शायद पिताजी भी नहीं समझ सकते थे यह राज़। क्योंकि घर में आते थे तो मैं उनकी ओर खास ध्यान नहीं देती थी और बाजार में चाचा चाचा करके इतनी बातें क्यों करती हूँ? उस फकीर को भी मेरे साथ बहुत अच्छा लगता था। क्योंकि उसमें भी कहीं बचपन ज़िन्दा था। परंतु हम दोनों की दोस्ती का राज़ था, धूपदानी का राज़। गनी चाचा पचास साल के और मैं पांच साल की। देखो सुगंध का कमाल!

आज भी मैं नहीं भूल पाती हूँ मेरे उस सुवास प्रवेश की क्षणों को। केवल मुझे नहीं, सुवास सबको आकर्षित करती है। सुवास का प्रभाव ही ऐसा है कि किसी भी सुवास प्रेमी को ध्यान लग जाए।

हाँ! प्रकृति के अनुसार भिन्न भिन्न सुवास में रुचि हो यह बात अलग है। यह भी सत्य है कि एक के लिए रुचिकर सुवास दूसरे के लिए अरुचिकर भी हो सकती है। परंतु ऐसा आदमी ढूँढना मुश्किल है कि जिसको किसी भी प्रकार की सुवास पसंद ही न हो।

एक दूसरी बात भी समझने जैसी है। जिसे किसी भी प्रकार की गंध आती ही न हो। ऐसा मनुष्य अधूरा है। भगवान ने उसे एक द्वार कम दिया है। एक क्षमता कम दी। एक भी इन्द्रिय की कमी आदमी को कमजोर या विकृत बना सकती है।

सुवास के लिए तो सांप जैसा जहरीला प्राणी भी लालायित हो जाता है। तो मनुष्य का क्या कहना? संस्कृत के सुभाषितकार कहते हैं कि चंदन के वृक्ष सांप से लिपटे हुए रहने पर भी अपनी सुवास नहीं छोड़ते। ये कवि की कल्पना नहीं है। यह एक मनोवैज्ञानिक और सनातन सत्य है। यह खुशबू का प्रभाव है। खुशबू की गुणवत्ता है। चंदन की खुशबू सांप पर असर करती है परंतु सांप की जहरीली सांस चंदन की खुशबू पर नहीं। भारतीय तंत्र शास्त्र और ध्यान शास्त्र में सुवास को कहीं भी ध्यान का सीधा माध्यम नहीं बनाया है। परंतु मुझे सुवास के प्रभाव को ध्यानविधि में सम्मिलित करना अनिवार्य लगा। क्योंकि स्वानुभव से बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है? मुस्लिम औलियाओं ने सुवास के रहस्य को सचमुच पाल लिया है।

भारत में गुजरात के कच्छ प्रांत में अंजार शहर की दो दिशाओं में हमारी दो ध्यान पीठ हैं। एक खंभरा शांतिनगर में और दूसरी

अंजार से पांच किलोमीटर की दूरी पर अंजार भुज हाइवे पर जो ॐकार धाम ध्यान तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। कच्छ के लोग संत प्रेमी और ध्यान प्रिय भी हैं। गुजरात की एक दिशा का अंतिम छोर जहाँ एक ओर समंदर और दूसरी ओर रेगिस्तान है। ऐसे प्रांत में ध्यानयज्ञ की अति आवश्यकता लगी क्योंकि बड़े बड़े शहरों में तो हर कोई आते हैं, रहते हैं, बसते हैं। लेकिन कच्छ में ध्यान का काम कौन करेगा ? जहाँ जिस चीज़ का अभाव हो वहाँ उसकी पूर्ति होनी चाहिए। ध्यान के प्रचार प्रसार के लिए मैंने कच्छ में ध्यान तीर्थ की स्थापना की है। कुछ ध्यान प्रेमी लोग यहाँ आते हैं। एकांत में आत्मपरिचय पाकर भीतरी परमात्मा का दर्शन करके प्रसन्न होते हैं। कच्छ में हर संप्रदाय के लोग मुझे चाहते हैं। मेरे कुछ मुस्लिम भक्त भी वहाँ हैं, मेरे प्रवचन में सब लोग आते हैं। इन ध्यान पीठों की वजह से मेरा बार बार कच्छ में आना जाना रहता है।

अंजार में एक मुस्लिम संत हैं। वे बड़े उदार चित्त, भावुक और सरल हैं। अक्सर मेरे प्रत्येक प्रवचन में एकाद बार तो वे जरूर आते हैं। मेरे शब्द जब विराम लेते हैं तब मंच पर आकर मुझे शॉल उढाते हैं, खुशबुदार इत्र लगाते हैं, भाव से मुझे पुष्प भी देते हैं। इत्र की एक शीशी मेरे लिए खास भेट के रूप में होती है। इस्लाम की खुशबू परंपरा उन्होंने बराबर निभाए रखी है। इससे मुझे बहुत अच्छा लगता है।

ध्यान की विधि की तरह अगर खुशबू को ले सको। तब तो धन्य हो जाओगे। परंतु साधारण रूप से भी किसी शुभ प्रसंग में या संत सभा में या शादी विवाह में खुशबू छिड़कना, ये अपने आप में कितना बड़ा संदेश है मनुष्य के लिए! एक छोटी सी चीज़ जो काम कर सकती है। अर्थात् जो प्रसन्नता फैला सकती है, वह पांच हाथ का आदमी नहीं कर पाया तो निरर्थक गया उसका मनुष्य जन्म।

आपको सुगंध आती हो या न आती हो यह अलग बात है। आपकी घ्राणेंद्रिय काम करती हो या न करती हो यह दूसरी बात है। परंतु मैं कहती हूँ कि सुवास बाँटना मत चूकना। काम तो थोड़ा कठिन है। जिसे गंध ही न आती हो या सुगंध पसंद न हो। उसके लिए कैसे संभव होगी यह बात ? ? ? परंतु थोड़ा सोचना। अगर सोचेंगे तो भीतर से जवाब मिल जाएगा। सुवास बाँटने के अनेक रास्ते हैं। प्रिय साधको !

अब समझ लीजिए कि सुवास हमारे भीतरी तंत्र के साथ कैसे काम करती है ? विज्ञान या मनोविज्ञान कहाँ तक समझता है इस सत्य को ? यह बात अलग है। परंतु इस ध्यान में अनेक बार उतरने के बाद, मैं कह सकती हूँ कि आपकी नासिका के द्वारा समग्रता से सुवास भीतर जाने के साथ ही रोम रोम में प्रसर जाती है। सुवास के असर से शरीर में प्रसन्नता के रसायन उत्पन्न होने लगते हैं। वह प्रक्रिया अति शीघ्रता से घटती है। और उन रसायनों के उत्पन्न होने के साथ ही मनुष्य का मानसिक तनाव कम हो जाता है।

मानसिक तनाव कम होते ही हृदय शांत होता है। रक्तचाप संतुलित होता है। कुछ ही क्षणों में प्रसन्नता और स्वास्थ्य का अनुभव होने लगता है। चिड़चिड़ापन कम हो जाता है। कभी कभी निरंतर भागते रहते मन और मस्तिष्क के लिए कुछ खास प्रकार की खुशबू ऐनेस्थेसिया जैसा काम करती है। अर्थात् मनुष्य ज्यादा प्रसन्नता के साथ तनाव के प्रति बेहोशी में चला जाता है। यह स्थिति बहुत फायदेमंद है।

प्रसन्नता की वजह से आदमी का सोचने का ढंग बदलने लगता है। प्रसन्नता हकारात्मकता को बहने देती है। और दूसरे के प्रति बहती हकारात्मकता हजार गुनी होकर उसके पास वापस लौट आती है। इस तरह से ब्रह्मांड में हकारात्मकता का एक वर्तुल आकार लेता है। उस वर्तुल में आने वाले मनुष्य को शांति और स्वास्थ्य प्राप्त होता है। मैं उसे पोजिटिव वायब्रेशन थैरेपी कहूँगी। खुशबू ऐसे वर्तुल के लिए भूमिका तैयार कर सकती है। आप इसे फ्रैग्रेन्स थैरेपी भी कह सकते हैं।

आजकल नई नई थैरेपियाँ देने और लेने की फैशन चली है। परंतु मैं कहती हूँ ओल्ड इज़ गोल्ड। और आजकल की ज्यादातर थैरापियाँ तो हमारे प्राचीन योग शास्त्र और वेदों की पद्धतियाँ ही नाम बदलकर आई हैं। प्रत्येक ध्यान विधि को आप एक थैरापी के रूप में भी उपयोग कर सकते हैं। बहुत सारी पथियाँ और थैरापियाँ मूल में तो ध्यान शास्त्र, योग शास्त्र और आयुर्वेद का ही अंग हैं।

विविध थैरापियों के नए नए नामों से प्रभावि होकर आज का मनुष्य शांति और सुख के लिए हजारों रुपये खर्च कर देता है। ज्यादातर तो उसके पैसों की बरबादी ही होती है। क्योंकि वह सब टेम्परेरी है, क्षणिक है। थैरेपी देने वाला चौबीस घंटे साथ नहीं रहेगा। परंतु ध्यान विधियाँ शाश्वत सुख दात्री हैं। शाश्वत शांति दायनी हैं। वह एक महाशक्ति है। पराविद्या है। जहाँ संपूर्ण आत्मनिर्भरता है।

परंतु मुझे आश्चर्य होता है कि क्यों नहीं बढ़ते लोग आगे ध्यान के लिए ? मनुष्य आसन और कसरत कर लेता है। खूब उठा पटक कर लेता है। कुछ कष्टदायक आसन सीखने में शरीर पीड़ा भी मोल लेता है परंतु ध्यान में नहीं उतरता। एक ही कारण है इसका; समाज के तथाकथित साधुसंत और बाबा लोग ध्यान की ठीक समझ नहीं दे पाते हैं।

मैं कहती हूँ कि रिंग मास्टर बनना आसान है, शेर जैसे हिंसक प्राणियों के साथ काम करना भी आसान है। परंतु अनेक चित्तवान मनुष्य को ध्यान में बिठाना, ये ध्यान मार्गदर्शक के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। मेरा अनुभव है कि एक लाख में से एक मनुष्य ध्यान में स्थिर



होता है। ध्यान में बैठना और ध्यान में स्थिर होना, इन दोनों बातों में बहुत फर्क है।

कुछ लोग ध्यान परंपरा में काम कर रहे हैं परंतु उनमें भी कुछ परंपरा नियमजड़ है। किसी भी विषय में जड़ता बाधक बन जाती है और उन नियमों की वजह से साधारण मनुष्य ऊब जाता है। उनके नियम प्रायमरी और पी.एचडी. सभी स्टान्डर्ड के लिए एक होते हैं। उनके पास विधि भी एक और बड़ी कठिन होती है। जो हरेक के लिए काम की नहीं होती है।

कुछ परंपरा में ध्यान के नाम पर अति स्वच्छंदवाद पुष्ट हुआ। परिणाम यह आया कि कुछ ध्यानोत्सुक परंतु अजाग्रत लोग गए थे ध्यान के लिए लेकिन अति स्वतंत्रता और आकर्षणों में आकर बेध्यान हो गए। हाँ! जो आत्मदृष्टि वाले लोग थे, वे बच निकले खूँटा छोड़कर।

प्रिय साधको!

मनोविज्ञान और मनुष्य का बहुत गहरा संबंध है। मनुष्य के मन पर जितना शास्त्र विकसित हुआ उतना किसी पशु-पक्षी के विषय में नहीं हुआ। मानव मन पर विकसित हुए शास्त्र को हम मनोविज्ञान के नाम से जानते हैं। यह बात क्या सिद्ध करती है? इतना ही कि मनुष्य के पास सबसे बड़ा मन है। देखने में शरीर बड़ा लगता है लेकिन मन ज्यादा बड़ा है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य का अचेतन मन चेतन से नौ गुना बड़ा है।

स्वाभाविक है कि जो बड़ा है वह जल्दी थकेगा। थका हुआ मन स्वस्थ देह को भी कभी कभी थका देता है। याद रहे देह और मन भिन्न भिन्न नहीं हो सकते। मनुष्य देह और मन का जोड़ है। मनुष्य के थके हुए मन को किसी भी मेडीसिन से भी जल्दी अगर तरो ताजा कर देने वाली चीज़ है, तो वह है खुशबू।

हाँ! कुछ चीज़ें ऐसी हैं जिसे मनुष्य मुंह में रखे कि तुरंत उसे मस्ती आने लगती है। परंतु जिसे आप छुओ तक नहीं और आपके रोम रोम में प्रसन्नता छा जाए वह है खुशबू।

आपको पता है, आपके रक्त संचार की ऊर्जा में से साठ प्रतिशत ऊर्जा दिमाग ले लेता है। और दिमाग की थकान के पीछे मन की थकान काम करती है। दिमाग इसलिए थकता है कि मन नए नए विषयों को देकर दिमाग को व्यस्त रखता है।

सुगंध के प्रभाव से मनुष्य का मन प्रफुल्लित हो जाता है। मन की प्रफुल्लता के कारण मस्तिष्क भी प्रभावित होता है। सुवास से मन शांत हो जाता है और चित्त प्रसन्न। मन के शांत होने की वजह से मस्तिष्क को भी शांति मिलती है, मस्तिष्क की खुराक कम हो जाती है। जिसकी वजह से हृदय का तनाव कम होता है। मैंने थोड़ी देर पहले ही कहा कि सौ प्रतिशत रक्त संचार में से साठ प्रतिशत ऊर्जा तो मस्तिष्क ही खा जाता है। परंतु शांत मस्तिष्क जिन क्षणों में अकर्म में प्रवेश करता है। तब उसे ज्यादा ऊर्जा की जरूरत नहीं पड़ती है। उन क्षणों में हृदय को भी आराम मिल जाता है। अर्थात् हृदय को मस्तिष्क के लिए कम पंपिंग करना पड़ता है। और सहजता से शरीर के अन्य भागों में पर्याप्त मात्रा में शुद्ध रक्त प्रवाह बहकर शरीर को ओजस्वी और स्फूर्तिवान बनाता है।

याद रहे! तृप्त मनुष्य जैसे ज्यादा भोजन नहीं कर सकता, वैसे ही संतुष्ट और प्रसन्न मस्तिष्क शरीर से ज्यादा रक्त लेना बंद कर देता है। जिससे देह के अन्य भागों में पूरी मात्रा में रक्त प्रवाह पहुंचकर देह के साथ परस्पर जुड़े हुए सारे तंत्र ज्यादा पुष्टि और तुष्टि का अनुभव करते हैं।

प्रसन्नता के कारण और तनाव मुक्त क्षणों की वजह से फेफड़े सहज और पूर्ण गति से क्रियान्वित होते हैं। जिससे रक्त में ज्यादा ओक्सीजन मिलता है। इस तरह से सुगंध का प्रभाव सर्वप्रथम श्वसन तंत्र पर पड़ता है और बाद में अन्य सारे तंत्रों पर। नासिका श्वसन तंत्र का प्रथम बाहरी और अनिवार्य अंग है।

सुगंध वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दोनों ढंग से एकसाथ चमत्कार करती है। घ्राणेन्द्रिय के ज्ञानतंतुओं द्वारा सुवास का संदेश मस्तिष्क को मिलते ही मन प्रसन्न हो जाता है और वह प्रसन्नता मनुष्य के रसायनों को बदलने लगती है। दूसरी ओर श्वसन तंत्र सुवास के द्वारा विशुद्ध हवा को प्राप्त करके विशेष प्रभावित होकर ज्यादा सक्रिय हो जाता है।

आपको पता है, सुवास से केवल बाहरी वातावरण शुद्ध और सुगंधयुक्त लगता है ऐसा नहीं। केवल लगने से क्या होगा? कुछ वनस्पतियाँ, कुछ औषधियाँ, पुष्प, अगर, चंदन, गुगुल, लोबान और कपूर जैसे अनेक प्रकार के सुवासित द्रव्य कुछ ही क्षणों में अपने इर्द गिर्द के वातावरण को हायजेनिक बना देते हैं। कुछ धूप के लगाने के साथ ही वातावरण में से स्वास्थ्य के लिए हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

सरकार को कह दो, नगरपालिका एवं महानगरपालिकाओं से भी कह दो के डी.डी.टी. आदि दवाओं के छिड़काव के स्थान पर खास पदार्थों के धूप का प्रयोग करें तो ज्यादा फायदेमंद होगा, मनुष्य जाति के लिए। क्योंकि कीटाणुओं को मारने की जहरीली दवाईयाँ

जिसकी बास से बचने के लिए नाक बंद करना पड़ता है; वे मनुष्य और अन्य पशु-पक्षियों के लिए कम हानिकर्ता नहीं हैं। जबकि धूप और सुवास वातावरण के कीटाणुओं का नाश भी करते हैं और मनुष्य को स्वास्थ्य, प्रसन्नता और शांति भी प्रदान करते हैं।

हाँ! डी.डी.टी. और गेमेक्सीन जैसी जहरीली दवाइयों से हो सकता है कि धूप थोड़ा मंहगा पड़े। परंतु वैसे भी सरकार कहाँ टैक्स माफ करती है। खैर छोड़ो, सरकार तो नेताओं के दिमाग से चलेगी। सरकार तो बेचारी है, उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। कुछ राजनितिज्ञों का समूह मिलकर बनती है, सरकार। उन्हें कुर्सी में रस है, ध्यान में नहीं।

हाँ, कोई अपवाद निकल आए, वो अलग बात है। परंतु जो मनुष्य ध्यान में उतरेगा वह यह प्रयोग करेगा। वह भले कोई भी हो। लेकिन उसे सत्य का स्वीकार करना पड़ेगा। क्योंकि ध्यान सारे बंधन और अहंकार को गिरा देता है। ध्यान मनुष्य को एक शुद्ध समझ देता है। और विशुद्ध समझ के जन्म के बाद शरीर के रूप में एक विशुद्ध चेतना ही घूमती फिरती रहती है। उस चेतना के द्वारा सत्य का अस्वीकार या अनुचित कार्य होना संभव ही नहीं है।

खैर! फिर से एक बार ध्यान दो विधि पर। क्योंकि आज का वातावरण अत्यंत दूषित है। आज के पहले एन्वायरमेन्ट में इतना प्रदूषण कभी नहीं फैला (युद्ध घटनाओं को छोड़कर)।

सुगंध भीतर और बाहर दोनों माहोलों को प्रदूषण मुक्त कर देती है। शुद्ध हवा से श्वसन तंत्र प्रफुल्लित बनता है औप प्रसन्न मन से मस्तिष्क। श्वसन तंत्र का असर रुधिराभिसरण तंत्र पर पड़ता है। रक्त को पर्याप्त ओक्सीजन मिला तो पाचन तंत्र सुधरेगा, अच्छे पाचन से स्नायु तंत्र और अस्थीतंत्र सुधरेंगे। दूसरी ओर खुशबू के प्रभाव से पूरा चेता तंत्र प्रफुल्लित होगा। चेता तंत्र के प्रफुल्लित होने से अंतःस्त्रावी ग्रंथियाँ हकारात्मक रूप से सक्रिय हो जाएंगी। इस तरह देह के दशों तंत्रों पर सुवास प्रवेश ध्यान का अत्यंत शुभ प्रभाव पड़ता है।

अफसोस की बात यह है कि बहुत सारे सूक्ष्म अनुभव मनुष्य ले रहा है परंतु अज्ञानवश उसे पता नहीं है। कितनी बड़ी करुणा? अपनी ही इन्द्रियों का अपने हाथ में जिसका रिमोट कंट्रोल है ऐसे उपकरणों का फायदा उठाना भी मनुष्य नहीं जानता। कुछ लोग केवल पसीने की बदबू दूर करने के लिए ही डियोडरेन्ट या स्प्रे का इस्तेमाल करते हैं यह है तो अच्छा परंतु कुछ मूर्ख नौजवान टी.वी. के विज्ञापनों को देखकर लड़कियों को आकर्षित करने के भाव से कपड़ों पर सुवास छिड़कते हैं। कैसी करुणा की है यह बात?

सुवास का स्वभाव है मनुष्य का हित करना। इसलिए वह अपना काम कर रही है। परंतु मनुष्य जब इस सत्य को जानकर आदर के साथ उसे एक आध्यात्मिक आधार बनाकर उसका जब स्वीकार करेगा अर्थात् उसे ध्यान विधि के रूप में आत्मसात कर लेगा। तब एकसाथ बहुत सारी घटनाएं घटेंगी। फिर केवल पसीने की बदबू ही नहीं, परंतु स्वभाव की बदबू भी नष्ट हो जाएगी। फिर आप किसी स्त्री-पुरुष के आकर्षण के केन्द्र नहीं परंतु समग्र अस्तित्व के लिए आकर्षण रूप बन जाएंगे।

खुशबू के संग संग आप भी अपने व्यवहार से, वाणी से, वर्तन से, खूशबू बांटने लगेंगे। आप जहाँ जाएंगे वहाँ महौल मुस्कुराने लगेगा, बिलकुल उपवन की तरह। परंतु केवल मेरे अनुभव की बातों को पढ़ लेने से कुछ नहीं होगा। आपको ध्यान में डूबना पड़ेगा। यह संवाद इसलिए हो रहा है कि मेरा अनुभव आपका अनुभव बने।

प्रिय साधको!

अब फिर से एक बार ध्यान से समझ लो इस ध्यान विधि को। वैसे तो समझाने के लिए कुछ बाकी नहीं बचा। अब जो कुछ भी आगे है वह ऊपर ऊपर का नहीं, क्षणिक नहीं, शाब्दिक नहीं परंतु एक गहन एवं शाश्वत तथा अद्भुत अनुभव और परिणाम का जगत है। हो जाओ तैयार उस विश्व की ओर उड़ान भरने के लिए।

असली फूल या सुगंधी पदार्थ का सानिध्य संपूर्ण शांतिपूर्ण माहौल में प्राप्त कर लो। अगर सुवास कुदरती पदार्थों की हो तो ज्यादा उपयोगी होगी। याद रहे, यहाँ केन्द्र में घ्राणेन्द्रीय है। बार बार लगता है कि केन्द्र में सुवास है परंतु सुवास अनुभव है। घ्राणेन्द्रीय अर्थात् नासिका अनुभव कराने वाला उपकरण है। आपकी चेतना अनुभवकर्ता है। तीनों में घ्राणेन्द्रीय की भूमिका बहुत बड़ी है।

बैठो सुवासित माहौल में अन्य इन्द्रियों के कार्यक्षेत्र को बंद कर दो। सामने पुष्प हो तो प्रेम से भले देख लो उसे परंतु प्रवेश पुष्प में नहीं सुवास में करना है। पुष्प का सौन्दर्य विक्षेप करता है तो आंखें मूंद लो। सर्व इन्द्रियों की शक्ति को समेटकर घ्राणेन्द्रीय की ओर मोड़ो। तल्लीन हो जाओ सुवास ग्रहण करने में। रोम रोम में सुवास को भर लो। प्रफुल्लित होने दो मन को सुवास के द्वारा। ज्यादा क्रियाशील होने दो फेफड़ों को। ज्ञानतंतुओं को भर जाने दो सुवास से। होने दो उन्हें पूर्णरूप से प्रसन्न। आने दो उसका हकारात्मक असर आपके देह के प्रत्येक तंत्र पर। अगर संभव है तो बहत्तर मिनट तो अवश्य बैठो। कम से कम चौबीस मिनट तक बैठना ना चूकें।

धीरे धीरे ध्यानस्थ हो जाओ और बन जाओ सुगंध रूप, खो जाओ सुवास में। आप पर इतनी प्रसन्नता और शांति बरसेगी कि आपने ऐसी कल्पना भी नहीं की होगी कि ऐसी शांति इतनी सहजता से प्राप्त हो सकती है।

धीरे धीरे देह, मन, इन्द्रियाँ सब साधन अदृश्य होते जाएंगे। भीतर और बाहर की चेतना सुवास के साथ तद्रूप होते होते विकसित होता हुआ अनुभव करेगी। यह विकास ही परम विकास या अहंब्रह्मास्मि भाव है।

धरणा - २५

## करण शक्ति ऊर्ध्वीकरण ध्यान

प्रिय साधको !

योग की भाषा में इन्द्रियों को करण कहते हैं। मैं बार बार कहती हूँ कि इन्द्रियों को शत्रु मत समझो परंतु उपकरण समझो। आपके आध्यात्मिक विकास में आपकी इन्द्रियों की शक्ति का इस्तेमाल कैसे किया जाए ? इस रीति को समझ लो।

एक कला जब एक बार आत्मसात हो जाती है, तब उसे बार बार नहीं सीखना पड़ता। ध्यान विधियों में निज रूप में स्थिर होने की कुछ कुंजियाँ हैं। कुछ कलाओं के द्वारा वह कुंजियाँ संपूर्ण आंतरजगत को खोल देती हैं। जिससे अस्तित्व के असंख्य रहस्यों को आप स्वाभाविकता से पाने लगते हैं।

मेरा उद्देश्य इतना ही है कि ध्यान विधियों को ढंग से समझकर उन कुंजियों को हस्तगत कर लें। मैंने आज तक जो कुछ भी जाना और पाया है, वह सबकुछ मैं आपको दे देना चाहती हूँ। परंतु वह कोई स्थूल चीज नहीं है कि जिसका हस्तांतरण हो सके। मेरी तरह आपको समग्रतया आत्मनिष्ठा और विधिनिष्ठा से उन विधियों में उतरना पड़ेगा। मैं केवल कैसे हो सकता है ? इसका रास्ता दिखाऊंगी। और आपकी उलझनों को कुछ हद तक दूर करूंगी।

आपको प्रेरित करूंगी मैं ध्यान के लिए, आपका हौसला बढ़ाऊंगी। बस, इतना ही काफी हो जाएगा आपके लिए। इतना हो गया तो सहजता से परम उपलब्धियाँ घटित होने लगेंगी। हो सकता है कि कुछ विधियों में आप मुझसे भी जल्दी प्रवेश कर लो। उसका आधार है आपकी प्रकृति पर। कर्तव्यनिष्ठा, समग्रता, सजग प्रयास और निरंतर भाव सब कुछ कर सकता है।

मैं बार बार कहती हूँ कि इन्द्रियाँ द्वार हैं। कभी उनकी शक्तियों को बहिर्मुखी बनाकर साधक को अंतरमुखी होना है और कभी कभी उनकी शक्ति के बाहरी गति को किसी खास तरह से रोककर उस शक्ति को भीतर संजोकर और विकसित करके ध्यानस्थ हुआ जाता है।

यह विधि शंका, कुशंका, तर्क-बुद्धि, प्रश्न अथवा केवल उत्तरों से आप नहीं समझ पाओगे। अगर आपके पास बौद्धिक चित्त है तो दुन्यवी संदर्भ में अच्छी बात है। परंतु यदि आपके पास हार्दिकता और आध्यात्मिक चित्त है तो यह चित्त ध्यान के विश्व में सर्वश्रेष्ठ है।

कभी कभी आपका बंधारण अर्थात् मानसिक, शारीरिक, सामाजिक और धार्मिक-आध्यात्मिक बंधारण आपकी आधी साधना पूर्ण कर देता है और कभी कभी वही बंधारण बाधा भी बन सकता है। आपके पास कैसा चित्त है ? और आपका मनोदैहिक बंधारण कैसा है ? उस पर ये दोनों बातें निर्भर करती हैं।

प्रिय साधको !

तो सबसे पहले तो देखो स्वयं को। आरंभ करो अपना अभ्यास करना। करो स्वपरीक्षण और आत्मनिरीक्षण, पहचानो स्वयं को, जानो अपने बंधारण को, आपके स्वभाव को, आपकी आदतें, रहन सहन का ढंग, भाषा, सोच विचार, पसंद नापसंद आदि से आप अपनेआप को जान पाओगे। फिर निर्णय करो कि आपका रास्ता कौन-सा है ? और आपको क्या करना है ?

मैंने देखा है कि ज्यादा चालाक लोग अकसर मूढ़ होते हैं। वे लोग अपना अभ्यास करके कह देते हैं कि मैं ध्यान के लिए नहीं हूँ। परंतु यह जल्दबाजी होती है, यह उसका अहंकार होता है। मैं ध्यान के लिए नहीं हूँ ऐसा कहना, ये उसके आत्मनिरीक्षण का परिणाम नहीं होता परंतु ये पलायन होता है।

मन की मूढ़ता नहीं छोड़ना चाहते हैं कुछ लोग। मूढ़ता के साथ उसका गहन नाता हो जाता है। कर्ण के कुदरती कवच कुंडल की भांति उसकी मूढ़ता जन्मजात होती है। उस मूढ़ता को मारने में उनको अपनी मौत दिखाई देती है। हकीकत में वह मौत ही नवजीवन है। परंतु नर्क के कीड़े की भांति ही जीना है उनको।

नर्क के कीड़े को उपवन, पुष्प, सुवास, शांति, प्रसन्नता कुछ भी अच्छा नहीं लगता। ऐसे माहौल में तो उन्हें घुटन होने लगती है। ऐसी प्रकृति के लोग कभी कभी कुतुहलवश ध्यान शिबिर में भी आ जाते हैं। परंतु थोड़ी ही देर में वे अस्वस्थ हो जाते हैं। उसकी चंचलता कहती है कि उसका चले तो ध्यान विधि से उठकर भागे। परंतु मेरी इज्जत रख लेते हैं।

सेशन पूरा होती ही ऐसे लोग भाग जाते हैं। भागते ऐसे हैं कि जैसे कहीं आग लगी हो। दूसरे दिन आते भी नहीं हैं। हाँ, उन्हें अहसास होता है कि ध्यान का माहौल और मेरे शब्द उनके समग्र अतीत में आग लगा रहे हैं। वे भयभीत हो जाते हैं कि यहाँ उनका सबकुछ भस्मीभूत



हो जाएगा। मुझे पता है कि उनकी सम्पत्ति में कूड़े करकट के सिवाय कुछ नहीं है। परंतु कचरे के व्यापारी की पूंजी तो कचरा ही रहेगी ना। बड़े बड़े गोडाउन भरे हुए होते हैं कचरे के व्यापारी के। आपने देखा होगा प्लास्टिक का कचरा, पस्ती का कचरा, लोहे का कचरा.... परंतु कचरा आखिर कचरा ही है। उसे खत्म करने में ही भलाई है।

याद रहे, जिसके मन में केवल कचरा ही भरा है वे भले भाग जाए ध्यान को छोड़कर और अहंकारवश बोलें कि हम ध्यान के लिए नहीं हैं परंतु मैं कभी भी नहीं कहूंगी कि वे लोग ध्यान के लिए नहीं हैं। मैं तो यह कहूंगी कि ध्यान एक ऐसा मार्ग है, जो प्रथम और अंतिम है ऐसे लोगों के लिए।

आज नहीं तो कल परंतु प्रत्येक मनुष्य को ध्यान की ओर आना ही पड़ेगा। वो अंतिम सीढ़ी है परमात्मा के द्वार की। पांच, पचीस, पचास, सौ वर्ष बाद या दूसरे जन्म में भी; ध्यान के द्वारा ही मनुष्य को सच्ची मुक्ति और शाश्वत शांति प्राप्त होगी।

हाँ, ऐसा हो सकता है कि ऐसे लोगों के लिए कुछ अलग विधियाँ हों। परंतु गुजरना तो पड़ेगा ध्यान मार्ग से ही। क्योंकि ध्यान कोई धर्म या संप्रदाय के द्वारा दी हुई धारणा नहीं है। यह कोई खानगी रास्ता नहीं है, यह महामार्ग है। जिसपर चलने का हर किसी को अधिकार है। ध्यान विधियाँ समग्र मनुष्यता के लिए प्रशस्त की गई हैं।

प्रिय साधको!

अब आइए ध्यान विधि की ओर, ध्यान से समझिए इस ध्यान विधि को। इस विधि में आंख, कान, नाक और मुंह सभी द्वारों को हाथ की अंगुलियों से बंद कर रखने का विधान है। उन द्वारों को बंद करके, उनकी शक्तियों का तीव्र भाव के साथ साधक को उर्ध्वीकरण करना है।

साधक को खास ध्यान रखना है कि द्वार के द्वारा बहार की ओर बहती शक्ति नीचे नहीं परंतु ऊपर की ओर उठनी चाहिए। इसके लिए मूलाधार से लेकर फेफड़ों तक का जितना सहकार लेना पड़े, उतना ले लो। खूब धैर्य रखो। अगर थक जाओ, आपकी सांस भर जाए तो खोल दो नासिकाओं को। भर लो शरीर को फिर से ताजी हवा से।

शरीर को नए श्वासों की थोड़ी खुराक देकर फिर से आरंभ करो। बार बार करो। और ऊपर उठ रही सारी शक्ति को दो नेत्रों के बीच में केन्द्रित करो। उस स्थान को योग शास्त्र आज्ञाचक कहता है, ज्ञानी लोग तृतीय नेत्र कहते हैं। हठ योगी अग्निनेत्र कहते हैं, और मैं उसे कहती हूँ, चिंतन केन्द्र।

आपको भले लगे कि चिंतन मस्तिष्क में होता है परंतु वास्तव में चिंतन का केन्द्रबिन्दु भूमध्य में है। अर्थात् दोनों भ्रमरों के बीच में है। नाड़ी गुच्छ से बना हुआ वह सूक्ष्म शक्तिकेन्द्र है।

अगर इस केन्द्र को देखने के लिए कोई शरीर की सर्जरी करे तो स्थूल नाड़ी गुच्छ पा सकता है परंतु शक्ति-केन्द्र का दर्शन नहीं होगा। उस सूक्ष्म केन्द्र का मात्र अनुभव हो सकता है। वह प्राण जैसा है। प्राण के बिना जीवन असंभव है। यह हरकोई जानता है। फिर भी उसे पकड़ नहीं सकते, देख नहीं सकते। उसका सिर्फ अनुभव हो सकता है। इसी तरह से शरीर के शक्ति केन्द्रों के बारे में अनुभवसिद्ध और जिज्ञासु के बीच में बातें हो सकती हैं। फिर भी वह अगोचर है, वह ब्रह्म की तरह है। इन्द्रियों के द्वारा उसका अनुभव नहीं हो सकता।

वैसे तो हमारे शरीर में बहुत से केन्द्र हैं। और याद रखिए कि उन केन्द्रों की आज्ञा, आदेश-शक्ति और सहयोग के द्वारा ही इन्द्रियाँ अपने अपने क्षेत्र में कार्यरत होती हैं। परंतु आदेशकर्ता को देख नहीं सकते। कैसी व्यवस्था है कुदरत की? इन्द्रियाँ केवल नौकर हैं। बड़ी बड़ी कम्पनियों में हजारों नौकर काम करते हैं परंतु सबका प्रत्यक्ष संपर्क नहीं होता है मालिक से। वहाँ कम से कम एक बात हो सकती है कि नौकर मालिक को फोटो से पहचान ले। परंतु शरीर के नौकर तो फोटो द्वारा भी परिचित नहीं है मालिक से।

शरीर के शक्ति केन्द्रों की कोई छबि तक नहीं निकाली जा सकती। जैसे कोई महाशक्ति गुप्त रहकर समग्र ब्रह्मांड का संचालन करती है वैसे ही यह शक्तिबिन्दु शरीर में गुप्त रहकर कार्य करते हैं। रेशनालिज्म भले उसे संयोगवाद कहे परंतु वह संयोग हुआ कैसे? विश्व बना कैसे? पूरा ब्रह्मांड चलता है कैसे?... प्रश्न वहीं के वहीं रह जाते हैं। उन लोगों के पास एक ही जवाब होगा बार बार... हजार बार.... संयोग .. संयोग .. संयोग ..। क्योंकि उनके पास केवल बौद्धिक चित्त है। बुद्धि का क्षेत्र सीमित है। संत के पास आध्यात्मिक चित्त होता है और वह असीम है। उसी संयोग को संत कहते हैं, कुदरत, ईश्वर, परमात्मा।

प्रश्न समझ का है अहंकार का नहीं, प्रश्न हकीकत का है अंधश्रद्धा का नहीं। शब्द बदल सकते हैं, परंतु सत्य नहीं बदल सकता। मैं कहूंगी सत्य तर्क या बातों का विषय नहीं अनुभव का विषय है और वह अनुभव होता है ध्यान से। इसीलिए उतरो ध्यान में।

ध्यान बिलकुल प्रेम की तरह है। प्रेम शरतों से नहीं हो सकता। वैसा ही है ध्यान में। आपके सामने मैं या ध्यान शास्त्र कोई शर्त नहीं रखते हैं। नहाना, धोना, पूजा-पाठ, खान-पान, या फिर आपका ढंग; कुछ भी बदलने का आग्रह नहीं है। आप

प्याज खाते हैं ? लहसुन खाते हो ? ध्यान में नहा-धो कर आते हैं ? हिन्दु हो या मुस्लिम ? ब्राह्मण हो या चांडाल ? - इनसे ध्यान का कुछ भी लेना देना नहीं है।

ध्यान कहता है कि आप बदलने की चिंता में समय मत गँवाओ। मुझमें उतर जाओ। मेरे सानिध्य में जो कुछ भी गलत होगा वह रूपांतरित हो जाएगा। आप केवल मेरे निकट आ जाओ। बाकी सबकुछ मुझे करने दो।

प्रिय साधको !

ध्यान आपकी जिम्मेदारी ले रहा है। ध्यान परमात्मा जैसा है। गीता में कृष्ण कहते हैं ना कि “यागक्षेम वहाम्यहम्”। अर्थात् अनन्य भाव से सिर्फ मेरा ही चिंतन करने वालों का और मेरी शरण में आने वालों का क्षेमकुशल देखने की जिम्मेदारी मेरी है। मैं कहती हूँ कि अनन्य भाव से ध्यान में उतरने वालों का क्षेमकुशल का खयाल रखने की जिम्मेदारी अस्तित्व की है।

मेरा अनुभव है, ध्यान में उतरने के साथ ही बहुत सारी बातें बदलने लगेंगी। रोज नए नए अनुभव होंगे। मैं प्रतिपल ध्यान को समर्पित हूँ। इसलिए इस बात की घोषणा कर सकती हूँ। आप जब समर्पित हो जाएंगे तब आप भी ऐसे अनुभव करने लगेंगे। इसके लिए आपको कोई ज्यादा आयास प्रयास नहीं करना है।

जैसे हो वैसे समग्र भाव से बैठ जाइए ध्यान में। आपमें पड़ी हुई सारी अव्यवस्थाएं अपनेआप ठीक हो जाएंगी। सारी अराजकता धीरे धीरे अदृश्य हो जाएगी। लोग जिसे दुर्गुण और दुष्टता कहते हैं वह भीतर की अराजकता और अव्यवस्था के सिवाय कुछ भी नहीं है। इसीलिए मैं उसे अराजकता कहती हूँ।

अव्यवस्था व्यवस्था में बदल सकती है। ध्यान के द्वारा।

मैं अराजकता और अव्यवस्था शब्द इसलिए प्रयोग कर रही हूँ कि आप के मन में ऐसा अपराध भाव पैदा न हो जाए कि आप दुर्गुणी हैं।

प्रिय साधको !

अब ध्यान से समझिए इस विधि को। चिंतन केन्द्र प्रत्येक बात का अपनी विशिष्ट शक्ति के द्वारा पृथक्करण करता है। बात के तथ्यातथ्य का समग्र रूप से एनालिसिस करने के बाद यह केन्द्र आज्ञा देता है इन्द्रियों को, शरीर को, मन को, कोई भी क्रिया करने या न करने के लिए।

हमारे सारे आदेश सभी हकारात्मक, सृजनात्मक और विकासात्मक निर्णय उस चिंतन केन्द्र में से आते हैं। इसलिए तो उसका नाम ही योगियों ने आज्ञाचक्र रखा है।

शरीर को खोलकर देखेंगे तो आंखों से उन बिन्दुओं को ना तो देख पाओगे और न ही हाथों से उन्हें छू पाओगे। वास्तव में उनपर कोई नाम नहीं लिखे हैं। हम पैदा हुए थे तब हमारा भी कोई नाम नहीं था। परंतु किसी ज्ञानी ने बच्चे की हौरा, रेखाएं, एवं जन्मकालीन ग्रह नक्षत्र की स्थितियों को देखकर अनुभव के अन्दाज से एक राशि तय करके उसके अनुसार हमको नाम दे दिया।

ठीक इसी तरह ही योगी पुरुषों ने, ध्यानी आत्माओं ने अपने शरीर के केन्द्रों का सुक्ष्म अनुभव करके उनका गुण कथन किया। और उनके कार्यक्षेत्र और गुणों के अनुसार उनका नाम दे दिया।

अफसोस की बात यह है कि सबके पास आज्ञाचक्र है परंतु आज्ञाचक्र के आदेश के अनुसार चलने की क्षमता नहीं होती है उन लोगों में। उनका आज्ञाचक्र सक्रिय ही नहीं है। वह केन्द्र बंद पड़ा है। कौन करता है चिंतन ? लोगों को चिंता करने की आदत हो गई है। मनुष्य अगर चिंतन करके निर्णय लेना सीखे तो उसका कोई कार्य अधार्मिक, व्यर्थ या नुकसान कर्ता नहीं हो सकता। परंतु मनुष्य केवल चिंता करना जानता है चिन्तन चूक जाता है।

प्रिय साधको !

पहले जरा चिंतन के अर्थ को समझ लीजिए। चिंतन का अर्थ है - आत्मसत्ता के प्रकाश में सम्यक विचार करना और बुद्धि में से आई हुई प्रत्येक बातों का प्रथक्करण करने की प्रक्रिया।

याद रहे आप के पास आज्ञा चक्र जैसे अन्य छः चक्र हैं। जिन्हें योग शास्त्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और सहस्रार नाम से जानते हैं।

जब षड्चक्रों के विषय में समझाऊंगी तब उनके महत्व को समझ पाएंगे। परंतु खास बात यह है कि वे सभी चक्र एक परम चक्र के आदेशानुसार चलते हैं। वह है ऊर्जाचक्र। ऐसे तो वह मनुष्य के समग्र शरीर में कार्यरत है, रोम रोम में है, समग्र ब्रह्मांड में घूमता रहता है, उसे चेतना चक्र भी कह सकते हैं; परंतु मनुष्य के लिए उस चेतना चक्र के केन्द्र को हम आत्मा कहते हैं।

आत्मा की शक्ति परम प्रगाढ और अपार है। उस आत्मा के प्रभाव, प्रकाश और शक्ति के कारण ही शरीर के अन्य सारे चक्र शरीर और जीवन के विविध क्षेत्रों का नियमन करते हैं। इस बात को बाद में करेंगे। यहां सूचक इतना ही है कि सर्व चक्रों और देह के महत्वपूर्ण अन्य केन्द्रों का प्रमुख केन्द्र और आधार है, आत्मा।

अब आइए मूल विषय पर, दुनिया के ज्यादातर लोग विषयलक्षी, वस्तुलक्षी या शरीरलक्षी हैं। इस वजह से उन लोगों के पास आध्यात्मिक शक्ति और विविध केन्द्र शक्ति होने पर भी उन शक्तियों का उचित उपयोग करने का बोध नहीं है।

अब मैं एक विशेष बात कहने जा रही हूँ। एक नारी शक्ति के पास से यह बात सुनकर स्वाभाविक है कि पुरुष प्रधानता की परंपरा अनुसार आपको अज्ञानवश थोड़ा बेहुदा लगे परंतु मैं चाहती हूँ कि मुझे समझने के लिए आपकी समझ बढ़े। मैं यह कहने जा रही थी कि काम केन्द्र यानि मूलाधार चक्र तो पशु-पक्षी और मनुष्य समेत सभी जीवों में समान रूप से सहज सक्रिय है। फर्क इतना है कि पशुपक्षियों के काम केन्द्र को हम मूलाधार चक्र नहीं कहते हैं क्योंकि उनमें उस चक्र की शक्ति का उर्ध्वीकरण करने की क्षमता ही नहीं है। भारत के सिद्ध पुरुषों ने जान लिया कि कामशक्ति समग्र सृष्टि का मूल आधार है। और आध्यात्मिक रूप से विकसित होने का भी मूल आधार है। जरूरत है उस शक्ति को रूपांतरित करने की।

मूलाधार चक्र से सुचारू ढंग से कैसे काम लिया जाए? काम भोग का उपयोग आध्यात्मिक विकास के लिए कैसे किया जाए? अथवा विश्व को श्रेष्ठ संतति (संतान) मिले इसलिए विषय-वासना में भी वैज्ञानिक ढंग से कैसे उतरा जाए? यह सब विचार ऋषि ने किए। साधारण मनुष्य को इन सारी बातों का कोई बोध नहीं है।

भारत के ऋषिओं ने मनुष्य को योग-शास्त्र भी सिखाया और काम-शास्त्र भी। परंतु मनुष्य सबकुछ भूलता जा रहा है। मनुष्य के पास सृजनात्मक और कलात्मक दृष्टि ही नहीं है। वह क्षणिक सुख चाहता है। आनंद को बढ़ाना नहीं चाहता है। वह इन्द्रियों के द्वारा कचरे को सिर्फ बाहर फेंकना ही जानता है। परंतु उसे बोध नहीं है कि वह कचरे के साथ कितनी शक्तियों का भी व्यय कर रहा है। उपरांत आँख, कान आदि शक्तियों के द्वारा भीतर कितना कचरा इकट्ठा कर रहा है।

भारत के शास्त्रों ने यह सिखाना चाहा था कि हर कार्य को पूजा का दर्ज्जा प्राप्त हो। मनुष्य की प्रत्येक क्रिया साधना बन जाए। यहाँ की काम-क्रीड़ा भी राम जो जन्म दे सकती है। परंतु कुछ लोगों ने सब गड़बड़ कर दी। परमात्मा के विज्ञान को केवल विषय-वासना मान लिया फिर धर्मों ने संसार के आनंद को पाप मान लिया और दमन को तप।

मनुष्य पर ब्रह्मचर्य थोपकर उसको उसकी सहजता से दूर कर दिया। उसके मानस को पापी, नपुंसक और विकृत बना दिया।

एक दूसरी बात कहनी है। भारत में कोई मनुष्य ऐसा नहीं होगा जो शिवलिंग को वंदन न करता हो। वह क्या है? शिवलिंग का कभी ध्यान से दर्शन किया है? वे नर नारी के जननांग ही तो हैं। भारत का मानस इतना उदार, वैज्ञानिक और सहज था कि नर नारी के जननांग को मानव सृष्टि का आधार समझकर उसकी पूजा की जा रही है।

शिवलिंग हमको कदम कदम पर संदेश देता है कि संसार अपवित्र नहीं है, पाप नहीं है, स्त्री और पुरुष समरस भाव से जी कर, आध्यात्मिक रूप से विकसित होकर महान संतानों को जन्म दे सकते हैं।

शिव शक्ति के पुत्र का नाम गणेश है। मूलाधार चक्र का नाम गणेशचक्र भी है, क्या यह आपको पता है? यह सारी बातें बहुत सूचक हैं, अर्थपूर्ण हैं। मूलाधार चक्र सृष्टि प्रारंभ का श्रीगणेश है। नीचे सृजन है और ऊपर सर्जक। हकीकत में यह पूरा एक सायकल (चक्र) है। जन्म, जीवन और आत्मा परस्पर के पूरक बन जाते हैं।

कुछ वर्ष पहले आबू के एक धर्म संस्थान के सर्वधर्म सम्मेलन में मुझे निमंत्रित किया गया। वे लोग सभी धर्म गुरुओं को बारी बारी बुलाते हैं। वहाँ समन्वय की बातें होती हैं। परंतु मुझे कहीं समन्वय नहीं दिखाई पड़ा। आने वाले वी.आई.पी. संतों के फोटोग्राफ लिए जाते हैं। फोटोग्राफ से यह सिद्ध होता रहता है कि हमारे पास सब आते हैं। सब हमको मानते हैं। लोगों में वैसे भी आत्मदृष्टि का आभाव है। फोटोग्राफ में सबकुछ अच्छा अच्छा दिखता है। एक्स-रे कुछ और बताता है। रीयालिटी शो में कुछ और ही होता है। परंतु बेचारे फोटो बोल नहीं सकते। उनका जितना भी इस्तेमाल करो गुलाम की तरह होने देते हैं।

बड़े लोगों के फोटो के साथ अक्सर ऐसा होता है। फिर वह बड़ा धर्म गुरु हो तो भी ठीक है या बड़ा राजनेता हो तो भी ठीक है। कोई भी लल्लू पंजू नेता या शंकराचार्य के साथ अपना फोटो खिंचवा लेते हैं। बड़ा आदमी बेचारा अपने बड़प्पन में रह जाता है। ना नहीं बोल सकता। उनमें से कुछ धर्मगुरुओं और नेताओं की भी प्रचार भूख कम नहीं होती है! फिर वे ले-भागू लोग उन तस्वीरों को बड़ी कराके फोकट में ही खूब नाम और दाम कमाते हैं। बेचारे फोटो... फोटोग्राफ! खैर!

वहाँ आबू में एक हॉल की बड़ी भीड़ में बार बार पवित्र जीवन के नाम से ब्रह्मचर्य, पति-पत्नी भी भाई-बहन बने रहें ... ऐसे



अवैज्ञानिक और अकुदरती बातों का मारा चलाया जा रहा था, विविध स्त्री वक्ताओं द्वारा। उन लोगों की गलती हो गई कि उन्होंने मुझे बुला लिया। अचानक उनकी धारणा टूटी। भीड़ की हाँ में हाँ मिलाना मेरा स्वभाव नहीं है। मैंने सहज, स्वाभाविक और जाग्रत जीवन पद्धति पर जोर दिया। मैंने यह भी कहा कि यदि पूरा विश्व ब्रह्मचर्य का पालन करेगा तो धरती पर से मनुष्य जाति खत्म हो जाएगी। अगर मनुष्य ही नहीं रहा तो भगवान कैसे बचेंगे? मानव सृष्टि के विकास के लिए ब्रह्मा के कहने पर शिव ने मैथुन सृष्टि की रचना की; ऐसा हमारे पुराण कहते हैं।

मैंने कहा कि प्रति पल ब्रह्मभाव में विचरण करोगे तो काम भी राम बन जाएगा। मन की विकृतियाँ अदृश्य हो जाएंगी। परंतु भीड़ की महिमा कोई कम नहीं है। वहाँ उनकी बोल बाला थी। उनमें से एक साधवी ने कहा कि ब्रह्मचर्य का ही पालन करो। यही पवित्र जीवन है। मानव सृष्टि की चिंता भगवान पर छोड़ दो।

मैं वहाँ विटंदावाद करने तो गई नहीं थी। भीड़ में वैसे भी समझ कम होती है। भीड़ और भेड़ में मात्राओं को कोई फर्क नहीं, केवल उच्चार का फर्क है।

दुनियाँ के ज्यादातर लोग ईश्वरवादी और भाग्यवादी हैं। परंतु मैं कहती हूँ कि सब भ्रामक बातों से जल्दी बाहर आ जाओ। और अगर भगवान पर ही कुछ छोड़ना है तो सबकुछ छोड़ दो। क्या जरूरत है कोई साम्प्रदायिक संगठन खड़ा करने की? क्या जरूरत है अपना मत थोपन के लिए लोगों का अवैज्ञानिक ढंग से ब्रेनवोश करने की? क्या जरूरत है फोटो खींचने की और वीडिओग्राफी की? क्या जरूरत है प्रचार प्रसार की और धनवानों को वी.आइ.पी. ट्रीटमेन्ट देने की?

हमारे संतों ने तो खाना पीना भी छोड़ दिया था, वस्त्र तक छोड़ दिये थे, सबकुछ सौंप दिया था अस्तित्व के हाथों में। अगर आप आइब्रो करना, बालों का डार्क करना, इस्त्री टाईट कपड़ों में सज्ज रहना भगवान पर नहीं छोड़ सकते हैं तो और क्या छोड़ पाएंगे? मैं कहती हूँ कि ब्रह्मचर्य को भी छोड़ो न भगवान पर। भगवान चाहेंगे तो पूरी दुनिया ब्रह्मचर्य का पालन करने लगेगी। भगवान ने नहीं चाहा तो सब प्रजोत्पत्ति करने लगेंगे। ब्रह्मा का तो काम ही था प्रजोत्पत्ति। ब्रह्मा, पुराण के एक भगवान हैं।

खैर! नासमझ लोग सत्य भी स्वीकार नहीं कर सकते हैं। भीड़ और संप्रदाय के ज़ोर से वे लोग सत्य का भी खंडन कर देते हैं। परंतु सत्य तो सत्य है। वह कभी खंडित नहीं हो सकता।

मेरा काम संवाद का है विवाद का नहीं। मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि सहज बनो, स्वाभाविक बनो, आध्यात्मिक बनो, अंधा अनुकरण नहीं परंतु सजग अनुसरण करो। भीड़ की नहीं धर्म की महिमा को समझो। इसके लिए पहले सही धर्म को समझना पड़ेगा। इन्द्रियों को शत्रु मत समझो। मन के द्वारा इन्द्रियाँ जो माँग कर रही हैं उसके सामने विवश होकर उसके गुलाम भी मत हो जाओ। चिंतन करो हर बात पर। यही सच्चा आध्यात्मिक जीवन है।

मनुष्य के चिंतन केन्द्र अर्थात् भ्रूमध्य स्थान में छिपी हुई सूक्ष्म शक्ति को जाग्रत करो। उसे अग्नि नेत्र या तृतीय नेत्र इसलिए कहते हैं कि वह शक्ति चिंतन की आग में निरर्थक और हानिकारक बातों को भस्म कर देती है। बाहर के दो नेत्र तो स्थूल को ही देख पाते हैं परंतु तीसरे नेत्र को स्थूल के भीतर छिपी हुई हकारात्मकता या नकारात्मकता स्पष्ट नजर आता है।

तीसरा नेत्र नीर-क्षीर के विवेक को प्रगट करके व्यक्ति, विषय और वस्तु के पुरोगामी परिणाम को देख सकता है। वह हमेशा कल्याणकारी मार्ग ही निर्दिष्ट करता है। इसलिए तो उसे शिवनेत्र भी कहा गया है।

आपका चिंतन केन्द्र कुछ खास बातों के लिए आपको सजग कर देता है। इसीलिए भ्रूमध्य बिन्दु का योग की प्रत्येक धारा में और ध्यान मार्ग में बहुत बड़ा महत्व है।

करण शक्ति उर्ध्वीकरण ध्यान में आपको बैठना है शुद्ध, शांत और एकांत स्थान में। समग्रतया ध्यान को समर्पित होने के भाव के साथ। यह ध्यान किसी उपलब्धिवान ध्यानी अथवा ध्यानगुरु के मार्गदर्शन में किया जाए तो ज्यादा मदद मिल सकती है। इस ध्यान में कुछ योग मुद्राओं एवं बंध का समावेश स्वतः और सहज ही हो जाता है। प्राणायाम भी सहज ही घटेगा।

इस विधि में दीर्घ कुम्भक के साथ साथ अनुभव होगा कि नाक, कान, आँख, जीह्वा, त्वचा और वाणी की शक्तियाँ ऊपर उठ रही हैं। दीर्घ कुम्भक होने के साथ साथ अर्थात् श्वास को नासिका बंद करके भीतर लंबे समय तक रोकने की प्रक्रिया से मूल बंध और उड्डियान बंध लग ही जाएगा। परंतु ध्यान रहे आपको ध्यान बंध या मुद्रा की ओर अथवा कुम्भक की ओर केन्द्रित नहीं करना है। वह सब तो सहयोगी विधियाँ हैं। जो ध्यान विधि के साथ साथ घटती है। वह साध्य नहीं है।

ज्ञानेन्द्रिय की शक्तियों का उर्ध्वीकरण करके भ्रूमध्य बिन्दु का भेदन करना ही आपका लक्ष्य है। अर्थात् एक विधि के द्वारा आप स्वयं आपके चिंतन केन्द्र को विशेष रूप से सक्रिय कर रहे हैं, कार्यान्वित कर रहे हैं। ध्यान रहे मेरे शब्दों को मत पकड़ना। चिंतन केन्द्र को चार्ज करना अथवा जगाने का अर्थ ऐसा बिलकुल मत करना कि आप उस विषय में ज्यादा सजग होकर सोचते रहो। ना, ऐसा बिलकुल

नहीं है। आपको केवल विधि में डूबना है। कुछ सोचना नहीं है। शिवनेत्र सक्रिय होने के साथ ही आप अचानक निर्विचार और परमावस्था का अनुभव करेंगे। यह क्षण ही ध्यानस्थ होने का क्षण है। वही मोक्ष घटिका है।

प्रिय साधको !

ध्यान विधियों में से ज्यादातर विधियाँ स्व के द्वारा ही स्व पर ऊर्जापात करने का इल्म सिखाती है। इसमें गुरु का अनुग्रह, साधक का पुरुषार्थ, कुछ अज्ञात में से बरसता हुआ अनुग्रह और शक्तिपात ये सारे परिबल साधक की मदद अवश्य करते हैं परंतु मूल में तो ध्यान ध्यानारूढ होकर स्वशक्ति के परिचय के द्वारा आत्मारूढ होने की कला है। मेरा अनुभव है कि ध्यान कभी भी आपको आध्यात्मिक रूप से परावलंभी नहीं रखता।

एक दूसरी बात भी याद रहे। आजकल योग का फैशन चला है। योग आत्मसात नहीं हो रहा है। केवल स्पर्धा बन गया है योग। वह स्पर्धा भी सत्य के आधार पर हो रही कोई तंदुरस्त चुनौति नहीं है। वह स्पर्धा है केवल प्रचार भूख को संतुष्ट करने की और धन कमाने की।

योग के नाम से खड़े हुए इस नादुरस्त माहौल में मुझे कुछ योग विधियाँ कि जिसका प्रयोग ध्यान विधियों में साधन रूप से करना पड़ता है उनसे गुजरना पड़ता है। फिर भी बहुत सावधान रहना पड़ता है। उड्डियान बंध, मूल बंध, जालंधर बंध, कपालभाति जैसे शब्द आते ही लोग कुछ आंतरिक या सच्ची यौगिक समझ के बिना कुछ बेतुकी हलचल शुरू कर देते हैं। योग मनुष्य को परम ज्ञान, ध्यान, शांति और मुक्ति में ले जाता है। परंतु आज के तथाकथित योगियों ने उसे पेनकिलर गोलियाँ बनाकर विश्व के बाजार में रख दिया है।

योग के नाम पर करोड़ो लोग स्थिर होने की जगह ज्यादा चंचल बन गए हैं। मेरे शब्दों पर ध्यान देना, ऊर्जावान और चंचल में बड़ा फर्क है। शिव, पतंजलि या गोरख ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि मनुष्य योग की ऐसी हालात भी कर सकता है।

चलते-फिरते बस में, रिक्शा में दोनों हाथ की अंगुलियों को घिसने वाले और पेट को बार बार फुलाकर भीतर खींचने की स्थूल क्रिया करने वाला आदमी गुटका चबाता हुआ बोलता है कि मैं योग करता हूँ।

प्रिय साधको !

ध्यान और समाधि योग की पराकाष्ठा है। परंतु कुछ धंधाधारी बाबा लोग तट पर ही छबछबिया करना जानते हैं। उनमें कुछ आध्यात्मिक क्षमता ही नहीं है। ज्ञान गंगा के मध्य प्रवाह में वे गोता नहीं लगा सकते। आज का प्रचार माध्यम ज़ीरो को भी हीरो बना देता है। ज्यादातर लोग बेबूझ, दुःखी और नासमझ हैं। उनको तो अपना दुःख जल्दी दूर करना है। वह दुःख दूर करने वाला कोई बाबा, औझा, मदारी या जादूगर क्यों न हो ? वे सब स्वार्थ की वजह से इकट्ठे होते हैं। भीतर परमार्थ भाव जागा ही नहीं है।

ऐसे लोगों में कोई सच्ची प्यास, कोई धैर्य या साधना की क्षमता ही नहीं है। परंतु बड़ी भीड़ की वीडिओग्राफी एक नई भीड़ को प्रभावित करती है और यह भ्रामक परंपरा बन गया है आज का योग। इसलिए यौगिक शब्दावली का प्रयोग करने से मुझे बहुत सावधान रहना पड़ता है।

ऐसी भीड़ के कुछ प्राणी मेरी शिबिर में भी आ जाते हैं। वे बिलकुल तैयार होते हैं उठापटक के लिए। कुछ कर दिखाने के लिए। ऐसे लोग खुद को खास समझकर आते हैं। परंतु यहाँ से बेचारे निराश होकर वापस जाते हैं। उनकी सारी धारणाएं टूट जाती हैं। ऐसे लोग स्थिर बैठ नहीं सकते। कसरत या आसन के दाव पेच यहाँ होते नहीं हैं, तो और करें क्या ?

चंचल लोग बहुत जल्दी ऊब जाते हैं ध्यान से। बेचारे शांति से बैठने में भी थक जाते हैं। क्योंकि उनको सिखाया गया है कि क्रिया ही योग है। कैसे करेंगे वे ध्यान ? पहली कक्षा का विद्यार्थी पी.जी. की क्लास में घुस जाएगा तो स्वाभाविक है कि वह घबरा ही जाएगा।

खैर ! आसन सीखकर शरीर को साधकर आसनस्थ होकर मन को बांधकर जब तक ध्यानस्थ और समाधिस्थ नहीं हुए तो मैं कहती हूँ कि ऐसे मनुष्य के आसन निरर्थक गए और योग अधूरा रह गया। इस बात को लिख लेना अपने हृदय में।

प्रिय साधको !

कुछ अनिवार्य यौगिक क्रियाएं जब किसी ध्यान विधि में आती हैं तो पहले मुझे बहुत कुछ समझाना पड़ता है। कुछ नासमझ लोग ऐसे प्रश्न भी उठाते हैं कि फलाने बाबा तो ऐसा कहते हैं। मैंने किसी बाबा या बेबी की आधी अधूरी बातों को पूरा करने का ठेका नहीं ले रखा है। मैं कहती हूँ कि जब मेरे पास आओ तब सिर्फ मेरी बात को समझकर ध्यान विधियों में उतरने की पूर्ण तैयारी रखना।

आधे अधूरे लोग यहाँ आकर हताश हो जाएंगे। उन्हें लगता है कि उनका सीखा हुआ कुछ भी काम नहीं आ रहा है। वे निराश हो जाते हैं। राजयोग करने वाले, विपश्यना ध्यान करने वाले, सुदर्शन क्रिया करने वाले, डायनेमिक मेडीटेशन करने वाले, माइन्ड पावर की क्लास करने वाले, और ट्रांसेन्डेन्टल मेडीटेशन करने वाला भी कुछ कुछ अहंकार लेकर आता है यहाँ। और मानता है कि उसने बहुत कुछ कर लिया ध्यान के लिए। उसने बहुत खाक छानी है। वह बहुत कुछ जानते हैं और अब देखता हूँ कि गुरु मैया हरेश्वरीदेवीजी क्या सिखाती

हैं?

यहाँ आकर उसे अचानक पता चलता है कि सीखा हुआ तो कुछ काम का नहीं है। यहाँ तो बिलकुल नया माहौल, नई स्वतंत्रता, नई सावधानी, नई दृष्टि, नई विधियाँ और नई दिशाएँ खुल रही हैं।

जो साधक सही अर्थ में सरल और शोधक हैं वह आनंदित हो जाता है मेरे पास आकर; और जो भीतर से ठूस ठूस कर भर कर आया है वह भाग जाता है। उसमें इतनी क्षमता भी नहीं होती है कि वह समझे और स्वीकार करे कि पुरानी सीखी हुई बातें उसे परेशान कर रही हैं। ऐसे लोग ध्यानी होने के अहंकार से अपना रास्ता नाप लेते हैं। उसका अंतर तो जानता है कि वह स्वयं के भीतर नूतन के स्वीकार के लिए जगह नहीं कर पा रहे हैं परंतु उसका स्वीकार नहीं कर सकता है।

आखिर नारी शक्ति के पास कैसे झुकेगा अहंकार! कोई पुरुष गुरु होता तो फिर भी थोड़े बहुत झुक जाते। परंतु नारी के सामने कैसे घुटने टेक दे! कैसे सीखे नई चीजों को! ऐसे अज्ञान और अहंकार की वजह से कुछ लोग अवसर होने पर भी बहुत कुछ गंवा देते हैं और अपना आध्यात्मिक नुकसान कर लेते हैं।

प्रिय साधको!

आपने जो कुछ भी सीखा है उसके सिवाय भी विश्व में बहुत कुछ सीखने जैसा है। इस बात को हमेशा याद रखना। और जब कभी अवसर मिले तो नर-नारी-नपुंसक का भेद किए बिना ज्ञान को प्राप्त कर लेना। वास्तव में ऐसा व्यक्ति ही सच्चा विवेकी और ज्ञानी है।

मैं सिर्फ आरंभ हूँ अंत नहीं। तो आप इन सारी बातों को जाग्रति के साथ ध्यान में लेकर ढंग से समझ लीजिए ध्यान विधिओं को। हमेशा याद रखो कि आप नारी के पेट में पले हो, नारी से ही पैदा हुए हो, नारी का दूध पीकर बड़े हुए हो, नारी की अंगुली थामकर चलना सीखे हो, नारी के सानिध्य से बोलना सीखे हो और नारीमय हो। तो एक नारी के पास से ध्यान का ज्ञान प्राप्त करने में क्यों शरमाते हो?

शांत, एकांत और पवित्र स्थान पर बैठकर करण शक्ति उर्ध्वीकरण ध्यान का संकल्प करो। पलाठी लगाकर अथवा वज्रासन में बैठ सकते हो। वज्रासन कैसे लगता है यह पता नहीं है तो वह विधि, कुछ बंध, कुछ मुद्राएँ सीख लेना, मेरे योगी शिष्य शैलेश्वर के सानिध्य में रहकर।

शांति से सुखपूर्वक स्थिरासन में बैठकर अर्थात् जिस आसन में आपका शरीर सुगमता से, बिना किसी कष्ट के अनुभव किए, लंबे समय तक स्थिर रह पाए; ऐसे आसन में बैठकर विधि का आरंभ करो। ध्यान विधियाँ दुखी होने के लिए नहीं हैं। शरीर को टेढ़ा मेढ़ा करके पीड़ा देने के लिए नहीं हैं। ये विधियाँ तो मनुष्य को परम शांत और परम सुखी जीवन का अनुभव कराने के लिए हैं।

प्रिय साधको!

स्थिरासन में बैठकर दोनों हाथों की अंगुलियों से आपके दोनों कान, आँख, मुँह और नासिका बंद करना। उन अंगों पर ज्यादा दबाव नहीं डालना। परंतु इन्द्रियों की चंचलता को सिर्फ याद दिलाने के लिए कि उन्हें अक्रिया में प्रवेश करना है इसलिए अंगुलियों से द्वार बंद रखना। इससे मन को सतत बोध रहता है कि उन्हें शांत रहना है। इन्द्रियाँ उसकी सहायता नहीं कर पाएंगी।

इस विधि में ऊर्जा को बाहर की ओर फेंकना भी नहीं है और बाहर से भीतर कुछ आने भी नहीं देना है। परंतु यह सहज बनना चाहिए। इस विधि से श्वास-प्रश्वास की गति अपनेआप अवरुद्ध होगी। प्राणायाम सहज हो जाएगा।

अगर आपको लगे कि यह विधि आपकी प्रकृति के लिए अनिवार्य है, उपयोगी है, या अनुकूल है तो प्रतिदिन कम से कम चौबीस मिनट तक करते रहो।

श्वास मार्ग को बंद रखने के कारण अगर आप थक जाओ तो नासिका के छिद्रों को खोलकर शरीर को पुनः प्राणवायु युक्त श्वास भरकर, उन छिद्रों को फिर से बंद कर दो। जैसे जैसे इन्द्रियों की शक्ति उर्ध्वगामी होती जाएगी वैसे वैसे शरीर बार बार उसके द्वारा होती हुई क्रियाओं का विस्मरण करता जाएगा।

आपको समग्रता से और तीव्र भाव से इन्द्रियों की शक्ति को ऊपर उठाने की धारणा ही करनी है। अपनी सारी ऊर्जा को केन्द्रित करो आपके भ्रूमध्य बिन्दु पर। एकाध महीने के अभ्यास के बाद स्वतः अनुभव होगा कि भ्रूमध्य बिन्दु कुछ विशेष रूप से सक्रिय हो गया है। चिंतन शक्ति बढ़ रही है। भीतर कुछ भी अस्पष्ट नहीं है। त्वरित निर्णय शक्ति विकसित हो रही है। विचारों का शुद्धिकरण हो गया है।

देवी भागवत जिस देवी को धि, धृति, गति, मेधा, कांति और क्रांति कहता है। वह देवी आपमें प्रगट हो चुकी है। यही परम सिद्धी है। पराशक्ति का आविर्भाव है और सही अर्थ में ज्ञान का अद्भुत भोर है।

# दीप ज्योति ध्यान

प्रिय साधको !

छोटे से दीपक की ज्योति में दृष्टि स्थिर करके ध्यानस्थ होने का एक विधान बताया है योग शास्त्र में। कुछ धार्मिक संगठन के लोग इसे राजयोग नाम से जानते हैं। अभी मुझे योग के बारे में ज्यादा चर्चा नहीं करनी है, विधि बतानी है। परंतु इसके पहले कुछ भूमिका और सत्संग अनिवार्य है।

ध्यान शास्त्र की तरह मुझे योग शास्त्र की रचना करना भी अनिवार्य लगा। कुछ लोगों ने बहुत कुछ गलतफहमियाँ खड़ी कर दी हैं ध्यान और योग के नाम से। बहुत लोग गुमराह हो चुके। बहुत शोषण हो चुका ध्यान और योग के नाम से इस समाज का।

राज्याश्रय के अभाव में आज के ज्ञानी, ध्यानी, संत, कवि, कलाकार सबके लिए अपना अस्तित्व टिकाए रखने के लिए अर्थोपार्जन करना अनिवार्य हो गया है। धन जीवन के लिए अनिवार्य बन गया। जरूरी नहीं है कि हरेक ज्ञानी, ध्यानी, योगी और संत जंगल में जाकर ही बैठ जाए। सबको अपना अपना जीवन अपनी सुविधा के अनुसार जीने का अधिकार है। ऐसा भी नहीं कि जंगल में चला गया वह बहुत बड़ा सिद्ध हो गया और समाज के बीच में रहने वाला संत कोई निम्न कोटि में आ गया।

मनुष्य के धार्मिक आध्यात्मिक उत्थान के लिए जो कार्यरत है वही सच्चा महान है। परंतु जब धर्म के नाम पर शोषण शुरू हो जाता है तब अंजान, अबूध, दुःखी और भोले स्वभाव के लोगों को योग के नाम से लूटा जाता हो और परिणाम शून्य हो, तो ऐसा शोषण अति खतरनाक है। वह जल्दी ही अटक जाना चाहिए।

अफसोस की बात है योग-ध्यान के नाम पर ध्यान और योग दोनों गौण बन गए। बचा केवल धनलोभ, थोड़ी सी कसरत और मनोरंजन। यहाँ मुझे एक फिल्मी डायलोग याद आ रहा है -

खहर की लंगोटी, चांदी का पीकदान।

सौ में से अस्सी बेईमान, फिर भी मेरा देश महान।

- ऐसा केवल राजनीति में ही नहीं हो रहा है। आज यह दूषण धर्मक्षेत्र में ज्यादा है। “अहो रूपम अहो ध्वनि” का आलाप छेड़ने वालों का संगठन बढ़ रहा है। सत्य और स्पष्ट बोलने वालों के प्रति समाज का दुर्लक्ष्य है।

परंतु मुझे आशा है कि विश्व में कुछ समझदार लोग भी हैं। जो सत्यांवेषी हैं; वे नहीं हारे हैं, ना ही भीड़ में मिले हैं। वे खोज कर रहे हैं एक ऐसी ऊर्जा की जिससे उन्हें मदद मिल जाए। उस मदद से पूरे पूरे जागकर पा लें निज स्वरूप में ही पूर्ण तृप्ति। ऐसे साधकों की मदद के लिए ही मुझे सक्रिय रहना है, बोलना है, लिखना है, नए शास्त्रों की रचना करनी है, समाज को जगाना है, अगर मनुष्य जाग गया तो धार्मिक शोषण अपनेआप बंद हो जाएगा।

प्रिय साधको !

मैंने जो भी ध्यान विधियाँ बताई हैं, उनमें से ज्यादातर सरल हैं। छोटे से दीपक के ज्योतिर्बिंदु पर ध्यान क्यों करना है ? पहले समझ लीजिए।

आपको याद होगा कि मैंने कहा था कि कुछ विधियाँ ऐसी हैं कि जिनमें इन्द्रियों का उपयोग करना है। इन्द्रियों को अपनी दुश्मन नहीं समझनी है। ध्यान विधियाँ शरीर के विरोध में या आत्मा के पक्ष में नहीं हैं। ध्यान है प्रत्येक देहधारी को आत्मलक्षी बनाकर परम प्रसन्नता शांति और मुक्ति देने की विधि।

फिर भी योग शास्त्र में तो थोड़ी बहुत भी गुंजाइश है देह दमन की। योग शास्त्र में बहुत सारे स्थान पर उल्लेख है इन्द्रियों को बलपूर्वक रोकने के विधान का परंतु योग का सातवां सोपान अर्थात् जहाँ से ध्यान का प्रारंभ होता है वहाँ कोई पक्ष-विपक्ष नहीं है, कोई विरोध नहीं, कोई दमन नहीं, कोई दबाव नहीं, कोई जबरदस्ती नहीं, कोई हीनता ग्रंथि नहीं।

ध्यान खड़ा है सजगता, समग्रता, समर्पण और सहजता पर। इन चारों में से एक भी स्थान पर आप औपचारिक साबित हुए तो विधि तो होगी, ध्यान करने और कराने वाला भी रहेगा परंतु ध्यान खो जाएगा। समय का व्यय हो जाएगा।

ध्यान विधि छोटी हो या बड़ी, सरल हो या कठिन, परंतु इसमें कोई औपचारिकता ना आ जाए इसलिए साधक को जाग्रत रहना है। यहाँ संशय नहीं करना है कि छोटे से दिए के सामने आंखें फाड़कर बैठे रहने से क्या फायदा ?

छोटी छोटी चीजों पर बहुत बड़ी बड़ी बातें आधार रखती हैं। माइक्रोस्कोप का एक छोटा से लेंस अतिसूक्ष्म चीज को कितना स्पष्ट



करके दिखा देता है! कम्प्यूटर के छोटे से सॉफ्टवेयर के बिना हार्डवेयर का पूरा बाजार भंगार हो जाएगा। मोबाईल फोन का एक छोटा सा सिमकार्ड भारत और अमरीका में बैठे हुए दो व्यक्तियों को कितने करीब ला देता है। एक छोटा सा रिमोट टी.वी. के पर्दे पर पूरे विश्व को जीवंत कर देता है। एक छोटा सा सेल आपकी डीजिटल डायरी में हजारों एंट्री भर देता है। ऐसे तो हजारों दृष्टान्त दे सकती हूँ।

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि ध्यान की हर विधि भीतर के विज्ञान से जुड़ी हुई है। इसे छोटी या बड़ी न समझकर समग्रता के साथ पूर्ण रूप से समर्पित होकर बच्चे जैसी निर्दोषता, संत जैसी सहजता और साधक की उत्सुकता के साथ करना है।

हाँ, फर्क इतना होगा कि बच्चा सजग नहीं होता है। वह खेलते खेलते कुछ भी करने लगता है और कुछ भी करते करते खेलने लगता है। आपको इतना सजग रहना है कि आपकी चेतना ध्यान विधि को छोड़कर और कुछ न करने लगे। मन का तो स्वभाव है इधर उधर भटकना। मन उसके स्वभाव के अनुसार काम करेगा। परंतु आपकी समग्रता उसे स्वाभाविक रूप से विधि में रसाक्त कर देगी।

सामान्य रूप से भटकते हुए मन को बार बार पकड़ना पड़ता है परंतु समग्रता के साथ ध्यान में डूबने के प्रभाव से मन सहजता से अदृश्य हो जाता है। साधक का ध्यान में विलीन होते ही उसका मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सबकुछ विलीन हो जाता है।

प्रिय साधको!

याद रहे कि ध्यान की प्रत्येक विधि सफल होते ही आनंद, प्रसन्नता और मुक्ति तो देती ही है। परंतु प्रारंभ में साधक के स्वास्थ्य का खयाल भी किया गया है। कोई भी विधि अति पीड़ादायक नहीं है, हठ योग जैसी कष्टप्राप्य भी नहीं है।

हाँ, कुछ विधियाँ हैं आत्मबोध जगाने के लिए और शारीरिक पीड़ा की स्थिति में साधक को साक्षीभाव बनाए रखने का बोध जगाने के लिए परंतु वह एक छोटा सा प्रयोग है। आत्मपीड़न नहीं। अनुभव के लिए प्रयोग करना और आत्मपीड़न में जीना उन दोनों में फर्क है। ध्यान विधियाँ हठयोग सी कठिनाई भरी, जटिल या खतरनाक नहीं हैं। एकाद दो विधियों को छोड़कर मेरी बताई हुई लगभग सारी विधियों में हरकोई उतर सकता है।

रुद्रयामल तंत्र कहता है कि छोटे से दीपक के ज्योतिर्बिंदु पर ध्यान करो। अब जरा समझ लें, इस दिए के माध्यम को और आँखों के उपकरण को।

प्रकाश के दो स्वरूप हैं। एक अंतरप्रकाश और दूसरा बहिरप्रकाश। प्रकाश प्रमाण है अग्नि की मौजूदगी का। अग्नि के प्रमुख चार कार्य हैं। जलाना, पकाना, ऊर्जा देना और प्रकाश देना। अग्नि के दाहक रूप को हम आग कहते हैं। और केवल प्रकाशित रूप को हम उजाला, प्रकाश या आलोक कहते हैं। उसके छोटे स्वरूप को हम ज्योति कहते हैं। जैसे प्रत्येक आत्मा परम आत्मा का अंश है वैसे ही प्रत्येक ज्योति में महाअनल छिपा है।

सुश्रुत पित्त को अग्नि कहते हैं। वह शरीर में पांच प्रकार से स्थित है। जिसे शारंगधर रंजकाग्नि, पाचकाग्नि, साधकाग्नि, आलोचकाग्नि और भ्राजकाग्नि कहते हैं। जिनमें से आंख में रही हुई अग्नि को आलोचकाग्नि कहते हैं। जो दृष्टि का निष्पादन करता है अर्थात् रंग, रूप को आंख के द्वारा ग्रहण करता है। वह अग्नि ही आंख का प्रकाश है। जिसे मैंने यहाँ नेत्र प्रकाश कहा है।

एक बात को हमेशा याद रखना। समानधर्माओं के बीच में संबंध जल्दी स्थापित हो सकता है। कविता प्रेमी का मित्र कवि होता है। भक्त प्रभु प्रेमी, साधक साधना प्रेमी होता है। समान प्रकृति वाले लोगों में शीघ्र संबंध हो जाना अति स्वाभाविक है।

अब आइए विधि की ओर। दिए की ज्योति में खुली आंख से ध्यान लगाने की विधि बड़ी सूक्ष्म, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक है। इस ध्यानविधि में चार प्रकार के प्रकाश का परस्पर विलीनीकरण हो जाता है। हाँ, यह सत्य है। आपने कभी सोचा भी नहीं होगा ऐसा।

मुझे मेरे बचपन की एक घटना याद आ रही है। मैं आठवीं कक्षा में पढ़ती थी। सौराष्ट्र के महुवा शहर में मेरे पिताजी सर्विस करते थे। कुछ दिन के लिए मेरा उनके पास रहना हुआ। उनके साथ नौकरी करता था कोई एक शेठ सरनेम का व्यक्ति। उनकी पत्नी ब्रह्माकुमारी संप्रदाय से दीक्षित थी। वह मेरे पिताजी को एक अर्धशिवलिंग के आकार का अथवा करीब करीब अंडाकार एक लाल लेम्प दे गए थे। इलेक्ट्रीक कोर्ड लगाकर स्विच ऑन करने से उसमें लाईट होती थी। जिस दिन वह लेम्प पिताजी के पास आया उसके दूसरे दिन मेरा पिताजी के पास जाना हुआ। आखिर पिताजी भी मेरे थे। उनका मिजाज भी मेरे जैसा था, मस्त-मौला। किसी भी धर्म को उन्होंने बंधन के रूप में कभी भी नहीं स्वीकारा। वे बड़े उदारचित्त और स्वतंत्रता के हिमायती थे। उन्होंने लेम्प मुझे पकड़ा दिया। और कहा कि तुझे ध्यान करना है तो यह लेम्प जलाकर कर सकती है। मैंने कहा कि पहले तो मैं इस विधि को समझूंगी। समझने से विधि मेरे लिए सरल हो जाएगी। इतेफाक से मेरा उस बहन को मिलना भी हुआ। मेने उससे लेम्प पर ध्यान करने का रहस्य पूछा। मैंने पूछा कि विधि कैसे काम करेगी हमारी चेतना के साथ। उसने कहा कि यह शिव बाबा की ज्योति है उसे देखते रहो। परंतु वे मुझे कुछ समझा नहीं पाई। उस लेम्प का बरसों तक

नाइट लेम्प की तरह उपयोग होते हुए मैंने देखा। फिर तो अनेक ब्रह्माकुमारियों और कुमारों को मैंने पूछा। बड़े छोटे सभी ने एक ही जवाब दिया कि यह हमारा सिम्बोल है, उसमें शिवबाबा के प्रकाश पर ध्यान करो।

मेरी ध्यान जिज्ञासा वैसी की वैसी रही। मुझे पता था कि किसी भी सिम्बोल से अच्छा संदेश ले लेना चाहिए। इसके सिवाय मेरा प्रतीकों से ज्यादा लेना देना नहीं था। चिटकना मेरा स्वभाव नहीं था। और जहाँ तक उस प्रतीक में रोशनी का संबंध है तो वह रोशनी तो बिजली और लेम्प के फिलामेन्ट के अनुसंधान से हो रही है। और जहाँ तक शिव बाबा की बात है। तो वह तो हमने बचपन से सीखा था।

सियाराम मय सब जग जानी।

तो शिव बाबा तो कण कण में है। अब क्या करें ?

मुझे ध्यान तो करना था उस ज्योति पर परंतु कुछ बातें समझने के बाद ध्यान अत्यंत सरल हो जाता है। और इन बातों को समझाने के लिए कोई प्रबुद्ध संत की आवश्यकता थी मुझे। जैसे कोई बड़े आदमी के थोड़े से भी सहयोग से छोटा आदमी जल्दी प्रोग्रेस कर लेता है। वैसे ही किसी जागी हुई चेतना की सहायता से साधक त्वरित आध्यात्मिक विकास साध सकता है।

फिर तो यह लेम्प मेरे लिए रिसर्च का विषय हो गया। बहुत सारे ध्यान संदर्भ के ग्रंथ पढ़े। कुछ ग्रंथों में यह विधि भिन्न शब्दों में प्राप्त हुई। मैंने आरंभ किया एकांत में दिया जलाना। बिजली की गरज कौन करे ? लाईट रहे ना रहे, ध्यान भंग नहीं होना चाहिए।

आधे घंटे से एक घंटा तक शुरू हुई मेरी साधना। ध्यानस्थ होने के साथ साथ मुझे यह भी जानना था कि इस ज्योति से क्या घट रहा है मेरे भीतर ?

प्रिय साधको !

मैं कहूँगी कि हमारे यहाँ पाँच प्रकार के सिद्ध हुए हैं। कुछ सिद्धों ने सत्य को पा लिया, जान लिया, और प्रसन्न होकर मौन हो गए। कुछ सिद्धों ने यह भी जाना कि भीतर यह सब कैसे होता है ? परंतु आंतरिक पृथक्करण करने के बाद सत्य जानकर मौन में चले गए। कुछ सिद्धों ने अन्य साधकों की मदद के लिए प्रेम और करुणा के वश होकर विश्वकल्याण हेतु समझाना प्रारंभ किया कि विधि मनुष्य के साथ कैसे काम करती है ? विधि की उपयोगिता क्या है ? विधि कैसे करनी चाहिए ? कुछ सिद्धों ने इन सारी बातों का अनुभव भी किया, खोजियों को समझाया भी और विधियों में उतरकर उसका स्मरण रखकर शास्त्र रच दिया। कुछ सिद्धों ने अपने अनुभव को सूत्रों के रूप में बताया। जैसे पतंजलि का योग सूत्र, वेद व्यास का ब्रह्मसूत्र, शिव का ध्यानसूत्र इत्यादि।

मुझे लगा कि अब केवल सूत्र या सूक्तियों से काम नहीं चलेगा। मनुष्य बदल गया है, भाषा बदल रही है, समय और माहौल बदल गया है; आज के युग में केवल सुक्तियाँ या सूत्र के रूप में शास्त्र लिख देने से नहीं चलेगा। कौन समझेगा इसे ? कौन समझाएगा इसे ? बिना समझे तो साधक की स्थिति ठीक वैसी ही हो जाएगी जैसी बचपन में मेरी हुई थी।

परिस्थिति का समग्रलक्षी अभ्यास करने पर मुझे लगा कि ध्यान सूक्तियाँ लिखकर उसे समझाना भी पड़ेगा इसलिए मुझे मेरे शास्त्र का इतना विस्तार करना पड़ा। परंतु इन विधियों को जब मैं शिबिरार्थियों को समझाती हूँ तब उनके चहरे पर जो प्रसन्नता संतोष और संशयमुक्ति के भावों को देखती हूँ तब मुझे भी बहुत संतोष होता है।

प्रिय साधको !

तर्क वितर्क करना ये एक बात है। और अंतर से ब्रह्मजिज्ञासा का उठना और उस विषयक प्रश्नों का उठना ये दूसरी बात है। ऐसा होना सच्चे साधक के लिए अत्यंत स्वाभाविक है। कुछ लोग संतो के पास जाते हैं तो आदत के वश होकर प्रश्नों को छेड़ देते हैं। यह गलत तरीका है। ऐसी आदत को पहले देखें और फिर छोड़ दो।

एक दूसरी बात। अगर आपको कभी भी कोई प्रश्न उठते ही नहीं और फिर भी आप ध्यान में आते हो, ध्यान करते हो। तो उसके दो अर्थ हुए – एक तो आपका हृदय इतना सरल, स्वाभाविक, ऋजु और स्वीकारभाव तथा श्रद्धा से इतना भरा है कि आपके सारे प्रश्न विलीन हो गए हैं। केवल सानिध्य और विधि से आप परितृप्त हो जाते हैं। अथवा ऐसी भी संभावना है कि आप ध्यान को केवल एक क्रिया मानकर कर रहे हो। परंतु उसके लिए आप सिंसियर नहीं हो। एक अर्थ में कहें तो आप केवल सबकी तरह अनुकरण कर रहे हो, ध्यान नहीं। ऐसी स्थिति में आप ध्यान में बैठेंगे जरूर परंतु परमावस्था का कोई अनुभव नहीं होगा।

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि विरोध भी नहीं करते हैं। प्रश्न भी नहीं करते। जिनमें प्यास ही नहीं कुछ विशेष जानने की तो प्रश्न आएंगे कहाँ से ? वे श्रद्धा भी नहीं रख सकते हैं। ऐसे लोग मात्र कुछ करने की भाषा समझते हैं। इसलिए ध्यान भी कर लेते हैं। ध्यान में डूब नहीं सकते कभी भी। यहाँ हाँ में हाँ मिलाते हैं। और बाहर जाकर कहते भी हैं कि औरों का तो पता नहीं, मुझे ध्यान-व्यान कुछ नहीं लगा।

परंतु एक बात तो है। ऐसे लोग प्रयासपूर्ण भले न हों परंतु प्रमाणिक हैं। कम से कम कह तो देते हैं कि मुझे ध्यान नहीं लगा।

कुछ लोग तीसरे प्रकार के होते हैं। वे न तो डूब सकते हैं ध्यान में और न क्रिया के रूप में करते हैं ध्यान को। उनको आशा भी नहीं है कि आज नहीं तो कल कुछ तो घटेगा। ऐसे लोग केवल दंभ कर सकते हैं। बड़ी बड़ी बातें करते हैं चमत्कारों की, चक्रों की, कुंडलीनी जागरण की परंतु कुछ भी सत्य नहीं होता।

ऐसे लोगों से सावधान रहना। ऐसे लोग खतरनाक हैं। वे भ्रम फैलाते हैं। ऐसे लोग ध्यान का मायाजाल की तरह उपयोग करते हैं। इतने सजग रहो कि ध्यान आपके लिए भ्रान्ति या मायाजाल न बन जाए। परंतु एक सत्यरूप रहे। एक आंतरिक अनुभव बन जाए। जो अवर्णनीय है।

ध्यान में आप उस अवस्था तक पहुंचो कि आपको आपकी अवस्था के बारे में कोई कुछ पूछे तो थोड़ा मौन, थोड़े आंसू, थोड़ा भाव, थोड़ी उत्तेजना और अपार आत्मविश्वास के साथ आप कह पाओ कि मैंने जो पाया है, और जो मेरे भीतर हो रहा है ऐसा तू भी पा सकता है। तेरे साथ भी ऐसा आनंद बह सकता है। बैठ जा ध्यान के लिए। जरूरत लगे तो चला जा ध्यानी सिद्ध के चरणों में।

मैं इतना ही कहना चाहती हूँ कि ध्यान अंतरजगत से जुड़ी हुई विधि है, आत्मचेतना उसका अनुभव करती है। शरीर केवल रोमांच और प्रसन्नता का अनुभव कर सकता है। आप उस अनुभव के बाद की प्रसन्नता को बाँट सकते हो। ध्यान को नहीं। ध्यान के लिए किसी को प्रेरित और प्रोत्साहित किया जा सकता है। परंतु वस्तु की तरह ध्यान सीधा सीधा दिया नहीं जा सकता।

मैं बात कर रही हूँ दिये की रोशनी पर ध्यान करने की। मैंने यह ध्यान प्रयोग कई महीनों तक किया। और अस्तित्वगत रूप से अनुभव हुआ कि रोशनी तो एक ही है। उसका प्रकाश अल्प और ज्यादा हो सकता है उपकरण की क्षमता के आधार पर।

प्रकाश बिलकुल ज्ञान की तरह है। ज्ञान तो एक ही है। उसके लिए रास्ते भले हजार हों। परंतु ज्ञान दूसरा नहीं हो सकता। वैसे ही प्रकाश तो एक ही है। जैसे स्वर्ण के भिन्न भिन्न प्रकार के गहने बनते हुए भी स्वर्ण तो एक ही रहता है। बिलकुल ऐसा ही है प्रकाश का भी। प्रकाश के प्रगट होने के मार्ग अलग अलग हैं। प्रकाश अलग अलग नहीं है। परंतु विभिन्न माध्यामों के कारण वह भिन्न भिन्न स्वरूप का भासित होता है।

प्रिय साधको !

जब आप भी इस ध्यान विधि में सजगता के साथ उतरेंगे तब इस बात को आप बड़ी आसानी से समझ लेंगे। मैंने अनुभव किया है इस ध्यान में, कि दिए का प्रकाश, नेत्र प्रकाश और आत्म प्रकाश इन तीनों के बीच में धीरे धीरे अनुसंधान हो जाता है। और उन तीनों के अनुसंधान के बाद एक ऐसा क्षण आता है कि उसका अनुसंधान हो जाता है महाप्रकाश के साथ। उस महाप्रकाश के ही अंश हैं पहले के तीनों प्रकाश।

आपको समझना है कि भीतर प्रकाश भरा है। अगर भीतर प्रकाश नहीं होता तो नेत्र को देखने की शक्ति कहाँ से मिलती ?

आपने कई हिन्दी फिल्मों में देखा होगा कि बचपन से बिछड़े हुए दो-तीन भाई और उनके माता पिता कोई खास घटना से सर्जित संयोग से पुनः मिल जाते हैं। ठीक ऐसी ही घटना घटती है इस दीप ज्योति ध्यान में।

हमारे भीतर इस ध्यानविधि द्वारा निःश्लेष नेत्रों से दीपक को देखते देखते नेत्र प्रकाश और दीप प्रकाश अचानक एक होकर आत्म प्रकाश का बोध करके क्षण भर के लिए एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं। और ध्यान की चरम सीमा की क्षण में परस्पर में विलीन हुआ नेत्र प्रकाश, दीप प्रकाश और आत्म प्रकाश उस विराट महाप्रकाश में मिल जाता है। अथवा उस महाप्रकाश के साक्षात्कार का अनुभव करने लगता है। यह एक ऐसी अवस्था है जिसके वर्णन के लिए शब्द छोटे पड़ते जाएंगे। वही क्षण है साक्षात्कार का क्षण। वही क्षण है रूपांतरण का क्षण।

**धरणा - २७**

## **आठवें ध्यान**

प्रिय साधको !

प्रकृति के साथ साथ स्वयं के शरीर को समझना भी अत्यंत जरूरी है। विज्ञान और तकनीकी विकास के कारण मनुष्य बाहरी तौर से सुखी सम्पन्न अवश्य हुआ परंतु ज्यादातर लोग भीतर से खाली खाली, सहमे सहमे और दिशाहीन होते जा रहे हैं। विज्ञान के विकास के द्वारा मनुष्य ने अपना समय और ऊर्जा तो बचाना सीख लिया परंतु बचे हुए समय और ऊर्जा का उपयोग आत्म शांति और आंतरिक विकास में कैसे किया जाए ? ये जानना और समझना चूक गया। जिसके परिणामस्वरूप हताशा, निराशा, प्रमाद, नशा और अनेक अनिष्टकारी बातों का वह भोग बनता गया।

आज नर नारी की शारीरिक कार्यों की ज्यादातर जिम्मेदारी मशीनों पर डाल दी गई है। जैसे कि मनुष्य की जगह गाड़ियाँ दौड़ने लगीं। कागज, कलम और मस्तिष्क के उपयोग की जगह कम्प्यूटर आ गया। कपड़े धोना, भोजन पकाना, और आटा गूंदने जैसा काम भी मशीन करने लगीं। ऐसे तो असंख्य उदाहरण हैं। परंतु संक्षेप में इतना ही कहूंगी कि ये सारी चीजें केवल मनुष्य की स्वार्थ बुद्धि का परिणाम हैं। मनुष्य ने अभी तो अपनी पांच प्रतिशत बुद्धि ही काम में लगाई है और इतने सारे फायदे उठा लिए। बुद्धि का महत्तम भाग का इस्तेमाल तो अभी बाकी है। स्वार्थ के मार्ग में पांच प्रतिशत से ज्यादा बुद्धि का उपयोग इन्सान कर ही नहीं पाएगा। बाकी बची हुई बुद्धि को आपकी सुविधा के लिए मैं नाम दूंगी परमार्थ बुद्धि, परोपकार बुद्धि और अध्यात्म बुद्धि।

परमार्थ बुद्धि अपने आंतरिक विकास के बारे में प्रवृत्त होती है, परोपकार बुद्धि अन्य के हित में प्रवृत्त होती है और अध्यात्म बुद्धि हर परिस्थितियों में दृष्टा भाव विकसित करती है।

प्रिय साधको !

वास्तव में मनुष्य के मस्तिष्क में बुद्धि के इन विचारों के लिए कोई अलग अलग व्यवस्था नहीं है। मनुष्य की समझ बढ़ने के साथ मति परिवर्तन भी होता है। परंतु आपको समझाने के लिए मुझे विभाग करने पड़ते हैं।

पतंजलि जिसे ऋतंभराप्रज्ञा कहते हैं वही है परिशुद्ध बुद्धि। वही है सत्य को प्रतिबिंबित करने वाली शक्ति। वही है सही निर्णय और सही समझ की प्रेरक। परंतु करुणा की बात है कि आज का मनुष्य स्वार्थ बुद्धि के सिवाय बुद्धि के अन्य पहलुओं से अछूता रह जाता है। मेरी दृष्टि से वही मनुष्य अछूत है कि जिसने परम सत्य के स्पर्श को नहीं पाया। कभी कोई झलक नहीं पाई उस अदृश्य की।

मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि मनुष्य अपनी बुद्धि के ऊपरी स्तर का ही उपयोग करता है। गहनता से कभी सोचता ही नहीं। एक बार जब गहन सोच का आरंभ हो जाएगा तब सारी परतें, स्वार्थ, मूढता, टेढ़ापन और अहंकार अपनेआप हटने लगेंगे। और बुद्धि का शुद्ध एवं सत्यमयरूप आपके सामने प्रगट होने लगेगा। वह आपकी मदद करेगा संबोधि में प्रवेश करने के लिए। संबोधि का अर्थ है सम्यक बोध। सम्यक का अर्थ है उचित, वास्तविक, सही सही, सत्यरूप, जिसे द स्टेट और रियालाईजेशन कहते हैं। यह संबोधि एक प्रकार की समाधि ही है। जहाँ ऋतंभराप्रज्ञा के प्रभाव में आपको आपके मूल स्वरूप के बारे में सम्यक बोध जग जाता है। वह क्षण आत्मसाक्षात्कार का क्षण है।

हमारे ऋषि, मुनि, ज्ञानी, ध्यानी ने विविध मार्गों से मनुष्य में सम्यक बोध जगे इसलिए प्रयास किए हैं। आत्मज्ञानी पुरुष कोशिश करते हैं मनुष्य के कल्याण की, उसे अपने निकट रखने की ज्ञान, ध्यान, योग एवं सत्संग को माध्यम बनाकर। परंतु मनुष्य उनसे दूर भागता जा रहा है। अथवा क्षणिक मन को बहलाने के लिए या टाइम पासिंग के लिए उपयोग कर लेता है।

याद रहे ! यहाँ मैं धर्म के ठेकेदारों की बात नहीं कर रही हूँ। आत्मा, परमात्मा, राम, कृष्ण, ईसु, मोहम्मद, बुद्ध, महावीर के नाम से आपको सम्मोहित करके घर भरने वाले बेचारे बेहोश उपदेशकों की बात नहीं कर रही हूँ। मैं आपको मोहनिद्रा से जगाने वाले ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों की बात कर रही हूँ। मेरा अनुभव है, कथाओं में आदमी तीन घंटा बैठता है, छः घंटे भी बैठ लेता है। वही मनुष्य ध्यान में दस मिनट भी नहीं बैठ सकता। मोहनिद्रा में चले जाने के लिए उन्हें बचपन से कहानियाँ सुनने की आदत है। तो स्वाभाविक है, कहानियों से भरपूर कथा में उसका ज्यादा रस रहेगा। उसे शिक्षण मिला ही नहीं है आत्मनिष्ठ बनने का। उसे किसीने कभी कहा ही नहीं है कि तू केवल स्वयं के साथ जीने की कला सीख ले।

प्रिय साधको !

ध्यान है स्वयं के साथ जीने की कला। जैसे सामाजिक रूप से पराधीन मनुष्य कभी सुखी नहीं रह सकता। वैसे ही धार्मिक रूप से पराधीन मनुष्य आध्यात्मिक सुख से वंचित रह जाता है। मैं आपको एक ऐसी अवस्था में देखना चाहती हूँ कि आप कोई कथा कीर्तन, मंदिर मस्जिद, कंठी माला के बिना भी प्रसन्न रह सकें। मस्ती से भजन गुनगुनाना यह बहुत अच्छी बात है परंतु इसके लिए भीड़ की जरूरत नहीं है। भजन नहीं आता है तो अच्छी धुन का फिल्मी गीत गा लो परंतु स्वयं के साथ खुश रहने की कला सीख लो। और यह कला, आंतरिक प्रसन्नता, परम स्वतंत्रता और परम धार्मिकता आप ध्यान द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। ध्यान की अवस्था में आप केवल अपने परमात्मा के आधीन ही होंगे और किसीके नहीं। याद रहे, सही धर्म आपको हमेशा स्वतंत्र और मुक्त करता है। पराधीन नहीं बनाता। यह बात अलग है कि मेरी बात बहुत कम लोग ही समझ पाएंगे। उनमें से बहुत कम लोग अनुसरण कर पाएंगे। और उनमें से कुछ लोग उपलब्ध हो जाएंगे सत्य को। परंतु उसके लिए भी एक कुशल किसान की भांति मुझे बीज तो हर जगह छिड़कने पड़ेंगे। क्या पता कहाँ प्रस्फुटित हो जाए यह बीज ?

हकारात्मक अभिगम और मनुष्य में पड़ी हुई संभावना जाग उठेगी। ऐसी आशा के आधार पर मैं सबके लिए बोल रही हूँ। यह एक



कल्याणकारी आशा है, एक आध्यात्मिक आशा है, एक परम आशा है।

हम बात कर रहे थे कि मनुष्य जैसे जैसे प्रकृति से दूर चला गया वेसे वह खुद से भी दूर चला गया। वह केवल मन को और बाहरी रूप को जानता है। उसके अनुसार जीता है। उसने मानव देह की संरचना के जादू को समझने का प्रयास ही नहीं किया। विश्व में बहुत कम लोग होंगे कि जो भीतर की संरचना के बारे में जागरूक हों।

योग के भी बाहरी अंगों तक ही मनुष्य पहुंचा है। उनमें से भी आसन और प्राणायाम, क्योंकि ज्यादातर गुरु वह ही सिखाते हैं। यम, नियम को तो छोड़ देते हैं। जबकि पतंजलि यम, नियम से प्रारंभ करते हैं योग का। सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य ये पांच बातें आती हैं यम में। और पवित्रता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर भक्ति ये पांच गुण आते हैं नियम में। परंतु यह सब मात्र शाब्दिक रह गया कागज पर। मनुष्य को बदलना नहीं है केवल बड़ी बड़ी बातें करनी हैं। वह केवल क्रिया की भाषा ही समझता है। क्रिया के पार के विश्व में प्रवेश करने से वह घबराता है।

योग बेचारा अटक गया आसन प्राणायाम पर। योग का हेतु मारा गया। शारीरिक रह गया आंतरिक शुद्धिकरण छूट गया। मनुष्य योग के मध्य में भटक गया है। अगर आगे के मार्ग का कोई बोध कराए तो वह यात्रा के अन्य पड़ावों पर से गुजर कर समाधि तक पहुंच सकता है। और इसीलिए मैंने मनुष्य को ध्यान मार्ग पर प्रेरित करना और इसके लिए उसका मार्गदर्शन करना आरंभ किया है।

बहुत सारे लोगों का भाव होता है ध्यानस्थ होने के लिए। परंतु शरीर सहयोग नहीं करता। शरीर इसलिए चंचल है कि वह मन के पीछे भागता है। उसकी अंतरचेतना चाहती है ध्यान में स्थिर और शांत होना। शरीर ध्यान और मन के बीच की कड़ी है। वह कमजोर होगी तो मनुष्य और ध्यान दोनों बिखर जाएंगे। तो माध्यम को अवश्य संभाल लेना है।

ध्यान के लिए माध्यम को अर्थात् शरीर को स्थिर करना और उसका सहयोग लेना अनिवार्य है और खास करके जो विधियाँ देह और इन्द्रियों के सहयोग के द्वारा संपन्न की जाती हैं उनमें तो अति आवश्यक है शरीर को समझना।

किसी भी के पास से हकारात्मक सहयोग प्राप्त करना है तो पहले उसे जानना पड़ेगा, समझना पड़ेगा, उसका सहयोग भी करना पड़ेगा। तब सहयोग मिल जाएगा। धिक्कार या घृणा से, आप अन्य के पास से हकारात्मक सहयोग कभी नहीं पा सकेंगे। अपने शरीर से भी नहीं।

प्रिय साधको !

इतनी बात समझ लेने के बाद आइए ध्यान विधि की ओर। अभी जो विधियाँ चल रही हैं वह देह और इन्द्रियों के सहयोग से सम्पन्न होने वाली विधियाँ हैं। जिन विधियों में से एक विधि है, ट्राटक।

प्रिय साधको !

आप अपने शरीर के बारे में बहुत कम जानते हैं। मैं कहती हूँ नहीं के बराबर। आप इस क्षेत्र में जितनी गहनता से उतरेंगे उतने ही ज्यादा आश्चर्यचकित हो जाएंगे। वह आश्चर्य भी आपको ध्यानस्थ होने में मदद करेगा। परमात्मा ने मनुष्य शरीर को अत्यंत रहस्यमयी बनाया है। परंतु मनुष्य ने कभी भी उसे जानने की कोशिश नहीं की। वह जातीय तृप्ति, स्वादपूर्ति तथा मौज शौक तक ही पहुंचा है।

हर प्रकार की भूख और प्यास की तृप्ति के लिए मनुष्य जिन्दगीभर कोल्हू के बैल की तरह मेहनत करता रहता है। इससे आगे क्या ? हृदय बिगड़ा तब याद आया कि उसके शरीर में हृदय भी है। अन्नाशय बिगड़ा तब पता चला कि शरीर तो बहुत महत्व का है। अचानक मौत का डर लगने लगा। आजतक मस्तिष्क से जीआ था। शरीर की भीतरी व्यवस्था पर ध्यान ही नहीं दिया था। फिर सबकुछ डॉक्टर पर छोड़ना पड़ता है। मनुष्य ने केवल पैसे से शरीर को संभालने की कोशिश की, दवाईयों से स्वस्थ पाने की परंतु वह तो अंतिम रास्ता है। सरल रास्ता तो वह भूल ही गया। ज्यादा से ज्यादा किसी बाबा की शिबिर में जाकर कुछ आसन सीख लिए, परंतु इससे क्या ?

प्रिय साधको !

ध्यान के द्वारा मन का शुद्धिकरण होता है, देह की सूक्ष्म ग्रंथियों में से अमृत टपकना शुरू होता है। जिससे आनंद, स्वास्थ्य और शांति प्राप्त होती है। परंतु वह कला नहीं जानी तो कसरत भी बोझ बन जाएगी। एक उम्र के बाद कसरत काम नहीं आएगी। शरीर बुढ़ापे से थक जाएगा। हड्डियाँ साथ नहीं देंगी। कैसे करेंगे कसरत ? इसलिए कहती हूँ कि आत्मशांति सबसे बड़ा खजाना है मनुष्य का।

प्रिय साधको !

आपके भीतर अमृत भरा है। जो हीरे जवेरात से भी मूल्यवान है। परंतु तिजोरियाँ बंद हैं। उसे खोलना सीखो। भीतर की अमृतग्रंथियों को सक्रिय करने की कला है, ध्यान।

मनुष्य शरीर का प्रत्येक अणु अद्भुत है। इस रहस्य को मनुष्य जब पूर्ण रूप से जान लेगा और अपने आध्यात्मिक विकास में

उसका सम्यक उपयोग करना सीख लेगा। तब उसके लिए वह सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।

प्यारे साधको!

आप जैसे जैसे शरीर संरचना की सूक्ष्मता में जाग्रति के साथ उतरना सीखेंगे वैसे वैसे आपके सामने नए नए रहस्योद्घाटन होते जाएंगे। शरीर में कुछ ऐसे तत्व हैं जिसका मात्र अनुभव हो सकता है, वे पकड़े नहीं जाते; जैसे कि मन।

मानव मन एक अर्थ में सूक्ष्म शरीर ही है। स्थूल देह और सूक्ष्म देह अर्थात् शरीर और मन दोनों का अपने आध्यात्मिक विकास में जिसने उचित उपयोग करना सीख लिया वह बन गया प्रबुद्ध।

वही सच्चा प्रज्ञावान और आत्मनिष्ठ है जिसने आत्मा के साथ साथ शरीर और मन को भी साध लिया। देह, मन और आत्मा को परस्पर का सहयोग करने के लिए अगर कोई प्रशिक्षित कर सकता है तो वह है ध्यान। उस ध्यान की अनेकानेक विधियों में से एक विधि है, त्राटक।

त्राटक शब्द को लेकर समाज में बहुत सारी गलतफेहमियाँ फैली हैं। त्राटक और त्राटक शब्द का बहुत दुरउपयोग भी हुआ है। त्राटक के नाम से बहुत सारी शंका, कुशंकाएं और अंधश्रद्धा फैली है। मैं आपका सारा भ्रम दूर करके केवल मन की स्थिरता के लिए आपको त्राटक विधि बताना चाहती हूँ।

सब प्रकार की भ्रांतिओं से मुक्त होकर एवं लालचों को छोड़कर केवल आत्मस्थ होने के लिए, केवल महाशांति में प्रवेश के लिए और केवल आत्मबोध के लिए ही इस विधि में उतरना। ताकि ऐसा न हो कि दुविधा में दोनों गए माया मिली ना राम।

त्राटक विधि आत्मबल को बढ़ाकर आत्मराम की सूक्ष्म शक्ति का अनुभव करने के लिए है। हाँ, विधि सिद्ध हो जाने के बाद आपके द्वारा सहज ही किसी को मदद मिल जाए तो धन्यवाद देना अस्तित्व को और स्वयं को। कि आप दूसरे के लिए सहज सहायक बन गए। परंतु आयास प्रयास नहीं करना।

चमत्कार फैलाने के लिए या पैसा बनाने के लिए मत उतरना इस विधि में। जिसकी पात्रता होगी उसको आपकी ओर से बिना चाहे, बिना मांगे सहायता हो जाएगी क्योंकि यह कुदरत का नियम है।

समर्पित और विशुद्ध आत्मा को कहाँ माध्यम बनाना है? और कौन से माध्यम से समर्पित आत्माओं को सहयोग करना है? ये गूढ़ निर्णय अस्तित्व ही लेता है। जहाँ माध्यम कर्म बंधन से नहीं बंधता।

सामान्य जन इस बात को नहीं समझ पाएंगे परंतु अनुभवी साधक अवश्य समझ लेंगे। ध्यान का हेतु दुन्यवी सिद्धी पाना नहीं, चमत्कार करना नहीं, किसी को प्रभावित करना नहीं, किसी से स्वार्थ साध लेना नहीं परंतु निराकांक्षा की परम अवस्था में पहुंचना होता है।

त्राटक शब्द मूल में संस्कृत शब्द है। योग विधियों का मूल स्रोत भारत है। भारत में योग की अनेकानेक शाखा प्रशाखा चलीं जैसे राजयोग, सहजयोग, हठयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि। इनमें से त्राटक विधि हठयोग की धारा से निकली हुई एक विधि है।

हठयोग प्रदीपिका में योगी को शरीर शुद्धि के लिए छः अंग बताए गए हैं। जैसे कि बस्ती, धौती, नौली, नेति, कपालभाति और त्राटक। इन षट्कर्मों में त्राटक प्रमुख है और अति आवश्यक है।

हठयोग के अनुसार शरीरशुद्धि का अर्थ करेंगे तो मन और देह दोनों का शुद्धिकरण। मैं बार बार कहती हूँ कि प्रत्येक साधक एक सत्य को याद रखे कि शरीर मन का स्थूल स्वरूप है और मन शरीर का सूक्ष्म भाग। शरीर शुद्धि का अर्थ केवल स्थूल शरीर की शुद्धि ही नहीं होता। केवल आंत, फेफड़े, जठर, अन्ननली अथवा स्नायू का शुद्धिकरण ही नहीं परंतु मन का भी शुद्धिकरण।

ध्यान में मन का शुद्धिकरण केन्द्र में है। एक दूसरी बात भी याद रखें। स्वास्थ्य के मूल भी मन में है। मनुष्य के ज्यादातर रोगों की वजह है, मन। अशुद्ध और रुग्ण मन शरीर को रुग्ण कर देता है। प्रसन्न और शुद्ध मन शरीर को फुर्तिला और तंदुरस्त रखता है। शरीर के लिए भले कितने भी उपाय करें। परंतु जब तक मन शुद्ध नहीं होगा तब तक दवाईयां ज्यादा मदद नहीं कर पाएंगी। आधुनिक विज्ञान को जब पता चला कि मन जैसी भी कोई सूक्ष्म चीज है मनुष्य के पास और उसका मनुष्य जीवन में बहुत बड़ा महत्व है तब मन का विज्ञान अस्तित्व में आया। मनोविज्ञान के कई शास्त्र रचे गए। उसके द्वारा मनोवैज्ञानिक तैयार किए गए। और मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति का आरंभ हुआ।

उस क्षेत्र में भी अनेकानेक थेरेपी डेवलप हुई परंतु दो चिकित्सा मुख्य रूप से उपयोग में ली जाती हैं। एक औषध चिकित्सा और दूसरा विरेचन। औषध चिकित्सा में मन की गति को मंद करने वाली दवाईयों की खोज की गई। मनोरोगी को ऐसी दवाई खिलाकर उसके मन के साथ जुड़े मस्तिष्क के ज्ञान तंतुओं को शुशुप्त या अर्धशुशुप्त कर दिए जाता है।

परंतु मेरी दृष्टि से यह उपाय शाश्वत नहीं है। ज्यादातर किस्सों में पेशन्ट को दवाई के नाम से एक नशे की आदत हो जाती है। फिर

आवश्यक बातों में भी उसका मन पूर्ण जाग्रति से सहयोग नहीं कर पाता। ना ही उसका मस्तिष्क सम्यक रूप से सोच सकता, ना निर्णय ले सकता। बात रही विरेचन की। कुछ सायकोलोजिस्ट मनोरोगी को एकांत में मिलकर उसके मन की गुप्त बातों का या सदमों का अथवा अतीत या भविष्य की चिंतापूर्ण बातों का विरेचन कराता है। विरेचन का अर्थ है नुकसान करनेवाली चीजों को शरीर या मन में से विविध प्रकार से बाहर फेंक देना। मनोविरेचन को अरस्तु कैथारसिस का सिद्धांत कहते हैं।

आयुर्वेद में बताई गई विविध प्रकार की बस्तिओं से मनुष्य के पेट का कचरा तो बाहर निकल जाता है परंतु मनोरोगी का मन का कचरा बाहर फेंकने के लिए भी विरेचन विधि है। इस विधि से मनोदुर्द हल्का हो जाता है। मन खाली हो जाता है। परंतु इस विधि में डॉक्टर जब मरीज से आत्मीयता स्थापित कर पाए तभी मनोविरेचन संभव हो सकता है। जब तक पेशेंट को पूरी तरह से डॉक्टर पर विश्वास नहीं आता तब तक मनोरोगी उसके सामने पूरा पूरा दिल नहीं खोल पाएगा। अथवा वह कुछ मनघटंत बातों से डॉक्टर को भी ठगता रहेगा और परिवार से सहानुभूति पाने के लिए अपने मन से नई नई बातें और प्रश्न उठाता ही रहेगा।

अगर ऐसा हुआ तो परिस्थिति ज्यादा गंभीर और घातक बन जाएगी। मैं एक बात और भी बताना चाहूंगी, आज के माहौल में सम्पूर्ण स्वस्थ और खास करके मन से पूर्ण स्वस्थ हो ऐसा मनुष्य खोजना कठिन है। औसत मनुष्य मन की चालबाज़ियों का शिकार बनते बनते अल्प या महद अंश से मनोरोगी बन चुका है। वह अपने मन पर से अपना सारा कंट्रोल गंवा चुका है। ज्यादातर लोगों का रिमोट कंट्रोल मन के हाथों में ही है। ऐसे लोग आत्मप्रकाश में जीना, चलना या सोचना जानते ही नहीं हैं।

महासागर में टूटी हुई नौका के समान वे लोग इधर उधर फैंके जा रहे हैं मन के द्वारा। ऐसे मनुष्यों को पुनः ठीक करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है, ध्यान। और उस ध्यानावस्था तक पहुँचने के लिए मनोशुद्धि का सर्वश्रेष्ठ उपाय है, त्राटक।

त्राटक विधि को आप चित्त का विशुद्धिकरण और एकाग्रवस्था का अभ्यास भी कह सकते हैं। इस हेतु से ही इस विधि में से गुजरना चाहिए। त्राटक ध्यान विधि को उपलब्ध हो जाने वाले साधक को जीवन में कभी भी मनोचिकित्सक की आवश्यकता नहीं रहती।

कुछ लोग अन्य हेतु के लिए त्राटक विधि से गुजरते हैं। उन्हें छोटे मोटे दुन्यवी फायदे भी हो जाते हैं। परंतु ऐसे लोग आध्यात्मिक नुकसान मोल लेते हैं। मैं कहती हूँ कि आध्यात्मिक नुकसान से बड़ा नुकसान और कोई नहीं हो सकता। मेरी बात मनुष्य की समझ में आए, न आए यह अलग बात है परंतु कभी कभी समझ में आते आते जीवन हाथ से निकल जाता है। तब समझ भी निरर्थक हो जाएगी। और इस बात को पहले समझकर जिस यात्रा को आप सरल कर सकते थे वह और कठिन एवं लंबी हो जाएगी।

योग के आठ अंगों में से ज्यादा से ज्यादा ध्यान पर जोर देने का एक ही कारण है कि ध्यान के सिवाय की यौगिक क्रियाओं में साधक प्रदर्शन वृत्ति का शिकार बन सकता है। अथवा छोटी मोटी सिद्धियों से वशीभूत होकर चमत्कार की बात करके अन्य को भी भ्रमित करके अपने आध्यात्मिक विकास में खुद ही रुकावट बन सकता है।

प्यारे साधको!

आत्मबोध का जगना ही सबसे बड़ी उपलब्धी है। योग का उद्देश्य ही मनुष्य को आत्मबोध कराना है। आजकल सुचारू देह अर्थात् बोडी फिटनेस के लिए योग का खूब इस्तेमाल किया जा रहा है। परंतु रुग्ण मन सुचारू शरीर के द्वारा होती हुई बेढंगी क्रियाओं से दुर्गंध मारता हुआ स्पष्ट दिखाई देता है।

अगर योग के ध्यान अंग के द्वारा आप जागृत नहीं हो पाए तो रुग्ण मन आपके जीवन में जो कुछ भी सुंदर है उसे असुंदर बना सकता है। इसलिए मैं बार बार कहती हूँ कि ध्यान में उतरो। ध्यान कोई पुरानी जीर्ण शीर्ण या सांप्रदायिक नियमों से आई हुई कोई परंपरा नहीं है परंतु वह सर्द हवा के झोंके जैसी नित नूतन और भीतर घटती हुई एक ताजा और आध्यात्मिक घटना है।

एक साथ एक हजार साधक एक ही ध्यानविधि में उतरेंगे फिर भी प्रत्येक की अनुभूति भिन्न एवं प्रक्रिया मौलिक होगी। क्योंकि प्रत्येक के पास भिन्न भिन्न मन हैं। ध्यान विधि सीधी मनुष्य के मन के साथ ही काम करती है। वह एक आइने की तरह है। प्रारंभ में वह आपके मन को उसके नितान्त नग्न स्वरूप में देखने का मौका देती है। वह आपको और मन को भिन्न भिन्न करके दिखा देती है।

मेरे पास आने वाले सुलझे हुए साधक कहते हैं कि हमको पहली बार पता चला कि मन क्या है? और अध्यात्म क्या है? यह कोई साधारण घटना नहीं है। मैं कई बार कहती हूँ कि स्वयं की पहचान ही परमात्मा की पहचान है। मन की पहचान अर्थात् आप पर थोपी गई और आपके द्वारा स्वीकृत निरर्थक बातों की पहचान।

उन निरर्थक बातों की छाप इतनी गहन है कि किसी भी तरीके से आप उसे नहीं मिटा पाएंगे, सिवाय कि ध्यान। कुछ चिंतक उसे संस्कार कहते हैं। मैं कहती हूँ असंस्कार। कुछ लोग कहते हैं कि कथा में, सत्संग में वे अपने गलत संस्कारों को भूल जाते हैं। परंतु यह विस्मरण क्षणिक होता है। वह एक छाप के ऊपर दूसरी छाप है। परंतु यह दूसरी छाप भी क्षणिक होती है। सत्संग में से छूटते ही वह छाप

स्फिरिट की भांति अदृश्य हो जाती है। और असंस्कारों की पुरानी छाप फिर से उभर आती है। छाप जन्मों जन्म पुरानी और बेचारा आदमी...। चंद दिनों के लिए आया है दुनिया में। लड़ता रहता है खुद से, दुनियां से। खत्म हो जाता है लड़ते लड़ते। ऐसे जीवन को मैं परिणाम शून्य जीवन कहती हूँ।

प्रिय साधको !

ध्यान है स्वयं को चाहना, स्वयं को पहचानना, स्वयं को समझना और स्वयं में लीन हो जाना। नहीं कि खुद से लड़ना। खुद से लड़ते लड़ते आदमी टूट जाता है, बिखर जाता है और खुद में स्थिर हो जाने से वह नूतन जीवन का अनुभव करता है।

ये खुद को पा लेना क्या है ? और कैसा है ? इसे आप सिर्फ ध्यान के द्वारा ही जान पाएंगे। मेरे शब्द ध्यान के लिए आपकी उत्सुकता बढ़ा सकते हैं। आप मुझे लगातार सुनसुन के ध्यान के बारे में कुछ बातें करना सीख सकते हैं। परंतु साधना में से गुजरे बिना मानव मन पर कब्जा जमाए बैठी हुई प्रत्येक छाप को आप कैसे मिटा पाएंगे ? ध्यान मिटा देता है प्रत्येक निरर्थक छाप को। ध्यान इरेज़र का काम करता है। यह बात भी अनुभव से समझ आएगी। मेरे शब्दों पर केवल विश्वास करने से कुछ नहीं होगा। परंतु विश्वास करके आपको ध्यान में उतरना पड़ेगा। तब वह विश्वास ज्यादा दृढ़ और अनुभव बन जाएगा।

त्राटक विधि चित्त को स्थिर करने में काफी मदद करती है। यह विधि जितनी गहन होगी, उतना ही मन स्थिर होता जाएगा। धीरे धीरे मन अदृश्य हो जाएगा।

त्राटक के मुख्य तीन भेद हैं। पहला निकट त्राटक, दूसरा दूर त्राटक और तीसरा अंतरत्राटक।

निकट त्राटक विधि में अनुकूल आसन में बैठकर दृढ़ संकल्प करें कि मैं एक ऐसी विधि में उतर रहा हूँ कि जिसमें पलक नहीं झपकनी चाहिए। ध्यान माध्यम पर टकटकी लगाए रखने तथा निर्विचार स्थिति में जाने के संकल्प के साथ आपके सामने शिवलिंग या स्फटिक का टुकड़ा करीब दो फीट की दूरी पर रख कर उसके मध्य बिन्दु में दर्शन शक्ति को स्थिर करके दृष्टि जमाए रखो। निष्पलक नेत्र से देखते देखते उतरते जाओ उस सूक्ष्म बिन्दु में। माध्यम पर टकटकी लगाए रहने से आँखों में से पानी निकलने लगे तो कुछ क्षणों के लिए आँख बंद कर दो। और फिर से विधि में उतरना शुरू करो। कम से कम चौबीस मिनट तक अभ्यास करो और छयानवे दिन तक उतरते रहो इस विधि में।

छयानवे दिन तक प्रतिदिन साधना का समय बढ़ाते जाने से आप महसूस करेंगे कि अब दृष्टि में स्थिरता आ गई है। दृष्टि स्थिर होते होते विचार शून्यता भी होने लगती है। यह विचारशून्य अवस्था ही मन के अदृश्य होने की क्षण है। हठयोग के कई सिद्ध पुरुष मूर्ति को माध्यम बनाकर, अभ्यास का आरंभ करके धीरे धीरे दीपक पर और फिर नाक की नौक पर दृष्टि को स्थिर करते थे। यह साधना स्थिरता, शून्यता और साक्षीभाव को जन्म देती है। होने पर भी नहीं होना, देखने पर भी नहीं देखना और सुनने पर भी नहीं सुनने की यह अवस्था है।

ऐसी अवस्था अत्यंत शांतिप्रद, संतोषप्रद और पूर्णता का अनुभव कराने वाली है। ये कोई शास्त्रों में नहीं पढ़ा है परंतु मेरा अनुभव है। बचपन में मेरे पिताजी ने मुझे डेढ़ साल तक इस विधि का अभ्यास कराया था।

दस मिनट से प्रारंभ करके करीब एक घंटे तक मैं बैठती थी। तब मैं पांचवीं कक्षा में पढ़ती थी। मेरे पिताजी शायद मेरी अतिमनस शक्तियों को पहचान गए थे। हो सकता है कि इसीलिए आध्यात्मिक क्षेत्र में जितना ध्यान मुझ पर दिया उतना अन्य किसी संतान पर नहीं दिया। चौदह साल की उम्र में तो मैंने घर छोड़ दिया। परंतु साधना कायम रही।

ध्यान की अनेक अनेक विधियों में से गुजरने के बाद एक बात स्पष्ट हो गई कि ध्यान मनुष्य के चित्त को स्थिर करने का एक अनूठा और सर्वोत्तम उपाय है। और वही अनुभव मैं आज आपके सामने रख रही हूँ। आपको प्रेरित कर रही हूँ ध्यान के लिए, उस अनुभव के बल पर। उस अनुभव के आनंद की वजह से मैं आपके लिए माहौल बना रही हूँ ध्यान का।

सर्व ध्यान विधियों में से त्राटक विधि जल्द से जल्द आपके विचारों को शांत कर पाएगी। क्योंकि एकांत से स्पर्श जगत और शब्द जगत शांत होगा। मौन से वाणी जगत शांत होगा। आंख किसी बिन्दु में स्थिर है इसलिए अन्य दृश्य का अवकाश नहीं। खान-पान की क्रियाएं हैं नहीं तो गंध और स्वाद के द्वार भी शांत हैं। बाकी रहा मन। इस विषय में तो मैं असंख्य बार कह चुकी हूँ कि मन और शरीर एक दूसरे के पीछे पीछे चलते हैं।

शरीर को एक बिन्दु पर स्थिर करने का दृढ़संकल्प है तो मन को भी उस बिन्दु पर ठहर जाना पड़ेगा। अगर मन इधर उधर भागा तो शरीर भी भागेगा। आंखें भले इन्द्रिय हैं परंतु शरीर का ही एक भाग हैं। आपकी जाग्रत चेतना जब एक बार ठान लेती है कि आंखों को एक बिन्दु पर स्थिर करना है तब मन और शरीर दोनों थोड़ी बहुत छटपटाहट के बाद उसका अनुशीलन करने लगते हैं।

जाग्रत चेतना के द्वारा किए हुए दृढ़संकल्प के कारण साधना में शरीर और मन धीरे धीरे सहयोग करने लगते हैं। और ध्यान दृढ़



होते ही साधक का शीघ्र ही निर्विचार और शांत स्थिति में प्रवेश हो जाता है।

आपने शिवजी के चित्र को देखा है? शिव का ध्यानस्थ चित्र और मूर्ति अद्भुत क्यों लगती है? क्यों होता है उसका अतिशय आकर्षण? क्यों जाता है हमारा ध्यान बार बार उसके दर्शन के लिए? याद रहे, स्थिरता और शांति सबको आकर्षित करती है। ज्ञानावस्था भी सहज आकर्षक है। निर्लिप्त अवस्था का दर्शन मात्र आपके भीतर कुछ क्षणों के लिए निर्लिप्त भाव को पैदा कर देता है।

आप उस निर्लिप्त भाव की झलक बार बार देखना चाहते हैं। हो सकता है आप इस सत्य से वाकिफ न हों परंतु सत्य तो सत्य है। इसलिए आप आकर्षित होते हो बार बार किसीकी भी ध्यानस्थ मुद्रा को देखकर। ध्यानस्थ बुद्ध और महावीर की छबि भी ऐसा ही चमत्कार करती है।

शिव, बुद्ध या महावीर की स्थिर और ध्यानस्थ मुद्रा के चमत्कार की वजह से ही वे मुद्राएं अर्थात् उन मुद्रा की छबि ज्यादा से ज्यादा प्रचलित है। इसी मुद्रा में शिव का शिवत्व, बुद्ध का बुद्धत्व और महावीर का महावीरत्व झलक उठता है। यदि आज तक आपने उस मुद्रा की तरफ लक्ष्य न दिया हो तो अब अवश्य ध्यान से देखना किसीकी ध्यान मुद्रा को। सही दृष्टि के साथ ही किसी भी स्वरूप का सही दर्शन हो सकता है।

### दूर त्राटक

हमारे कुछ सिद्ध दूर त्राटक भी करते थे। असल में यह विधि प्रथम विधि के बाद ही हो सकती है। इसमें पर्वत के अंतिम ऊंचाई बिन्दु पर या किसी ऊंचे वृक्ष के पत्ते पर दृष्टि लगाई जाती है। कुछ हठयोगी सूर्य पर भी दृष्टि जमाते हैं। यह विधि अत्यंत कठिन है परंतु असंभव नहीं। कोई ध्यान सिद्ध गुरु के मार्गदर्शन में आप भी उतर सकते हैं इस विधि में।

### अंतर त्राटक

निकट और दूर दोनों त्राटक खुली आंख रख कर पलके झपकाए बिना किसी बाह्य पदार्थ के माध्यम से करना है। परंतु अंतर त्राटक केवल आत्मबल के आधार पर नेत्र मूंदकर भृकुटि के मध्य बिन्दु में दृष्टि स्थिर करने की विधि है। प्रारंभ में साधक की पलकें चंचल होती हैं। आँखों की पुतलियाँ इधर उधर घूमती हैं। परंतु धीरे धीरे स्थिर हो जाती हैं। यह स्थिरता ही चित्त स्थिरता का आरंभ है।

इस विधि में साधक को चित्र विचित्र दृश्य, प्रकाश इत्यादि दिखाई देता है। परंतु अभ्यास की परिपक्वता में सबकुछ शांत हो जाता है। और एक पूर्णावस्था का अनुभव होता है। वही ब्रह्म साक्षात्कार का क्षण है। वह क्षण ही शिव नेत्र खुलने की प्रक्रिया अथवा खुलने का प्रारंभ है।

तिब्बत में साधक के सिर में सूक्ष्म छेद करके तीसरे नेत्र को खोलने की परंपरा है। परंतु यह विधि कठिन एवं जोखमी है। प्रिय साधको!

याद रहे, काफी लोग त्राटक सिद्धि के द्वारा मनोबल और नेत्र शक्ति को बढ़ाकर दूसरे को सम्मोहित करने में इसका उपयोग करते हैं। परंतु ऐसी वृत्ति और प्रवृत्ति आत्मोन्नति में बाधक है।

त्राटक के लिए कुछ अन्य साधनों का भी उपयोग किया जाता है। जिनमें मूर्ति त्राटक, बिन्दु त्राटक, प्रतिबिम्ब त्राटक, लाल वस्त्र त्राटक, ज्योति त्राटक, अग्नि त्राटक, तारा त्राटक, दृश्य त्राटक और सूर्य त्राटक का समावेश होता है।

त्राटक की साधना करने वाले को अनिष्ट तत्वों से हानि नहीं होती। अग्नि त्राटक से जल और पृथ्वी तत्व हल्का हो जाता है। साधक दुर्गम और अज्ञात स्थानों में प्रवेश कर सकता है। हमारे ऋषि कहते हैं कि देवता तीन तत्वों से बने हैं और मनुष्य पंच तत्व से। मृत्यु लोक पर ऐसी धारणा है कि देव उड़ सकते हैं और पृथ्वी के स्पर्श के बिना खड़े रह सकते हैं। ये कोई कपोल कल्पित बातें नहीं हैं। देवताओं के इस सत्य को एक दिन विज्ञान सिद्ध कर पाएगा और तब स्वीकार भी करेगा। देव मनचाहे लोक में विहार कर सकते हैं और पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण उसे नहीं खींच सकता। उसका एक ही कारण है कि वे केवल अग्नि, वायु और आकाश तीन तत्वों से ही बने हैं। तो स्वाभाविक है कि पृथ्वी तत्व उसे खींच नहीं पाएगा। परंतु साधारण साधक इसे नहीं समझ सकता।

देवताओं की बातें छोड़ो। मैं कहती हूँ ध्यान से देवत्व प्राप्त कर लो। उठ जाओ पार्थिव आकर्षणों से ऊपर।

हठ योगियों में त्राटक विद्या कालजय विद्या नाम से प्रख्यात है। इसका एक अर्थ होता है मृत्यु पर विजय पा लेना। दूसरा अर्थ है इस ध्यान में उतर जाने के बाद साधक को समय का बोध नहीं रहता। मृत्यु पर विजय पा लेने का अर्थ है— धरती के आकर्षणों से मुक्त हो जाना। यह मुक्ति ही आवागमन से मुक्ति है। दुन्यवी आकर्षणों से मुक्त होने से बड़ी सिद्धि और कोई नहीं हो सकती।

शास्त्र कहते हैं कि ऐसे ध्यानी के इर्द गिर्द सूक्ष्म रूप से सिद्ध और प्रबुद्ध चेतनाएं निवास करती हैं। वे उसकी मदद करने लगती हैं। ये मेरा अनुभव है। परंतु वर्णन करना संभव नहीं।

सोलह साल की उम्र में मैं एक अरण्य में रहती थी। वहाँ मेरे सामने अखंड धुणा था। वहाँ ग्यारह महीना तक अग्नि त्राटक के अभ्यास का मौका मिला। उस समय के दौरान कई आश्चर्यकारक, असाधारण और सूक्ष्म घटनाएं घटी थीं। मैं चौबीस घंटों महसूस करती थी कि कोई मेरे इर्द गिर्द है जो मेरी मदद कर रहा है।

प्रिय साधको !

सम्मोहन विधि का एक भाग ही है त्राटक। परंतु मैं कहती हूँ कि त्राटक शक्ति के द्वारा जो अन्य को सम्मोहित करना चाहता है वह मूर्ख है। बुद्ध या महावीर किसी को सम्मोहित करते नहीं हैं। उनकी साधना से लोग सहज सम्मोहित हो जाते हैं।

जो विधियाँ आपको ब्रह्म सम्मोहन तक पहुँचा सकती है। ऐसी दिव्य विधि से साधारण विषय वस्तु को प्राप्त करने की चाह तो मूढ़ता है। हीरा बेचकर कोयले खरीदने के विचार छोड़ दो।

कुछ लोग कहते हैं कि त्राटक विधि से अन्य का हित भी हो सकता है। मैं कहती हूँ कि पहले आत्मकल्याण साधो। एक बार आपके जीवन में आध्यात्मिक क्रांति घट गई तो फिर दूसरों की मदद के लिए आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा। आपकी उपस्थिति मात्र से हितकर और कल्याणकारी घटनाएं घटने लगेंगी। आपके सांनिध्य में आने वाले के हृदय में विश्वकल्याण के भाव उभरने लगेंगे। आपमें से स्वाभाविक बहती हुई कल्याणकारी किरणों के प्रभाव से माहौल बदल जाएगा।

क्या, फूल किसी पर त्राटक करता है ? फिर भी मनुष्य उससे संमोहित हो जाता है। वह तो पुष्प की स्वाभाविक गुणवत्ता है। मैं कहती हूँ कि कल्याणभाव आपका सहज गुणधर्म हो जाना चाहिए। तो आपकी उपस्थिति मात्र से विश्वकल्याण के कार्य सहजता से होने लगेंगे।

प्यारे साधको !

अब आरंभ करो त्राटक विधि का। और इस ध्यान विधि से पहुँच जाओ ब्रह्म सम्मोहन तक। जहाँ विचार, कर्म, मन और अहंकार पूर्ण रूप से तिरोहित हो जाते हैं और बचता है केवल अस्तित्वबोध।

## धरणा - २८

### ज्ञानवैद्य जागरण ध्यान

प्रिय साधको !

मनुष्य के पास तीन नेत्र हैं। साधारण मनुष्य इस बात के स्वीकार के लिए तैयार नहीं होगा। क्यों होगा ? अगर स्वीकार करने के लिए तैयार होगा तो उसे ढूँढना पड़ेगा तीसरा नेत्र, समझना पड़ेगा उसके स्थान को और उसके कार्य को। वह ऐसा कुछ चाहता ही नहीं है। वह तो कहता है खाओ पियो मौज करो। ये सारी बातें तो झूठ हैं। अगर तीसरा नेत्र है भी, तो कौन पड़े इस झंझट में ?

मैं कहती हूँ कि भले खाओ पियो मौज करो परंतु वह मौज हजार गुनी हो सकती है। खाना पीना सार्थक हो सकता है। थोड़ा भीतर उतरने से जीवन के प्रति पूरा अभिगम बदल जाता है। परंतु साधारण मनुष्य को सत्य हमेशा झंझट लगता है। और झंझट सत्य। वह उसका दुर्भाग्य है।

एक बात ध्यान से सुनिए। ध्यान को कभी झंझट मत समझना। वह झंझट नहीं है। वह तो सारे झंझटों से मुक्त होने का सरल मार्ग है। सरल मुक्ति है। ध्यानारूढ को झंझट झंझट नहीं लगते हैं। एक खेल लगता है। वह चलता रहता है बाहरी तौर पर और भीतर स्थिरता है, शांति है, धैर्य है।

मैं जब ऐसी बातें करती हूँ तब कुछ उतावली प्रकृति के लोग मुझे कहते हैं कि हमको यह सब जल्दी सिखा दो। मैं कैसे समझाऊँ उन लोगों को कि यह सब अगर सिखाया जा सकता तो पूरी दुनियां को सिखा देती। परंतु ध्यान मार्ग तो जो कुछ भी सीखा हुआ है उसे मिटा देने के लिए है। मेरे ऐसे निवेदन से वे लोग घबरा जाते हैं।

समाज में दो प्रकार के लोग ही ज्यादा हैं। एक प्रकार केवल प्रभावित होने वालों का है। जो भीड़ इकट्ठी कर लेते हैं। और दूसरा प्रकार कुछ समझ में ना आने से घबराकर भाग जाने वालों का है। मुझे आवश्यकता है एक तीसरे प्रकार के लोगों की जो भीड़ बनकर मेरे लिए भी घुटन पैदा न करें और ध्यान विधिओं से भाग भी न जाएं। मुझे ऐसे लोगों की आवश्यकता है कि जो मेरे संग संग रहकर कुछ अनुभव और कुछ इल्म को पाकर खुद के भीतर उतरना सीख लें। ऐसे संग को ही सत्संग कहा है।

परंतु समय के साथ सांप्रदायिक व्यापारियों ने सत्संग की व्याख्या भी बदल दी। खैर ! मैं कहती हूँ फिर से एक बार लौट आओ

सत्संग की ओर। सत्संग यानि केवल कथा वार्ता नहीं परंतु सत्यकथन, सद्विचार, सद्कार्य और सद्पुरुष की वाणी के द्वारा आप सत्य को जान लो, सत्य को पा लो और सत्य में जीना सीख लो। तभी तो वह सत्य-संग हुआ। सत्य-संग का छोटा स्वरूप है सत्संग। बाकी तो हो गया कुसंग।

परंतु कौन कहे ऐसे कटु सत्यों को। ऐसा कटु सत्य सुनने और कहने वाले कोई विरले ही होते हैं। वाह वाह और धन सबको अच्छा लगता है। और सत्य वचन उन दोनों से विपरीत परिणाम ला सकता है। क्या हुआ सोकरेटिस का, जीसस का, मीरा का? परंतु वे अपना काम करके ही गए। उन्होंने मरकर भी सत्य नहीं छोड़ा।

आपमें मेरी बातों को समझने और पचाने की क्षमता है तो ही मेरे पास आना। अगर आपका संबंध बाहर के भगवान और बाहर की दुनिया से ही है, आपको डूबे रहना है केवल बाहर की दुनिया में तो मैं आपके लिए नहीं हूँ।

मैं बात कर रही थी ज्ञान नेत्र की। अब ज्यादा ध्यान से सुनिए। हर मनुष्य के पास दो नहीं परंतु तीन नेत्र हैं। ये अलग बात है कि आपको उसका पता नहीं है। या आपने उसका अनुभव नहीं किया।

मनुष्य को इतना ही पता चलता है कि जितना उसे बाहर की इन्द्रियों के द्वारा मिल रहा है। क्योंकि जन्म जन्म से उसकी यात्रा बाहर की है। परंतु कुछ बातें इन्द्रियातीत हैं। अर्थात् इन्द्रियों की क्षमता के बाहर की हैं। ऐसी बातों का अनुभव शरीर के कुछ सूक्ष्म केन्द्रों के द्वारा मिल सकता है।

परंतु आज सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि मनुष्य का संपर्क उन केन्द्रों से बिल्कुल छूट गया है। समाजवादी, मार्क्सवादी, रेसनलिस्ट, सरकार और पर्यावरणवादी बाहर के प्रश्नों की चिंता खूब करते हैं। परंतु मनुष्य के भीतर जो भयंकर असंतुलन हो रहा है उसके विषय में तो कोई सोचता ही नहीं है। बाहर से कितनी भी योजनाएं की जाएं और परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाए परंतु मनुष्य जब तक भीतर से असंतुलित होगा तो वह बाहर के माहौल को फिर से बिगाड़ देगा।

मनुष्य के भीतर के केन्द्र रिश्तों के भांति हैं। जरा सोचने की जरूरत है इस विषय में। दुनयवी रिश्तों को भी जिंदा रखने के लिए कभी चिट्ठी, पांती, फोन, एस.एम.एस कुछ तो चालु रखना पड़ता है। ये सब माध्यम हैं परंतु वे माध्यम संदेशा देता है आपके प्रेम का, आपके स्वीकार भाव का, आपके स्नेह का, आपकी सामाजिक आवश्यकता का। जिसके द्वारा रिश्तेदार को पता चलता है कि आप रिश्ता बनाए रखना चाहते हो। आपका संपर्क रिश्ते के लिए ऑक्सीजन का काम करता है। संपर्क सूत्र से सिद्ध होता है कि आपको संबंधों में रस है।

ठीक वैसे ही मनुष्य शरीर के भीतर भी कुछ केन्द्र माध्यम हैं अपनी परम चेतना से संपर्क बनाए रखने का। उसे आपकी आत्मा, आपके परमात्मा कुछ भी कह सकते हो।

मैं कहती हूँ कि सूक्ष्म से जुड़े रहना। अगर आपको रस है तो आप भी बुद्ध, राम और कृष्ण के भांति सबकुछ देख सकते हैं। बहुत से लोग मुझे पूछते हैं कि आपने इतना सब कब पढ़ लिया कब सीख लिया? हम आपको बरसों से सुनते हैं। आपकी वाणी में परम सत्य सहज उतर रहा है। हम तो पंद्रह दिन तक तैयारी करने के बाद भी आध्यात्मिक विषय पर बोलने में गड़बड़ कर देते हैं।

मैं उन लोगों से कहती हूँ कि इसमें वाणी और बुद्धि की ज्यादा बड़ी भूमिका नहीं है। व्यक्तित्व भी काम नहीं आएगा। थोथे तो ज्यादा परेशान कर देंगे आपको। आपमें और मुझमें फर्क इतना ही है कि आपका बोलना मति से है, स्मृति से है, शब्दों से है और रटने से है अर्थात् बाहरी और ऊपर का है। आप बहुत मेहनत करने पर भी गड़बड़ कर देते हो विषय को समझाने में। इसका एक ही कारण है कि आपका उस विषय के साथ सीधा संपर्क नहीं है। आपके पास कोई अनुभव नहीं है। आपका सूक्ष्म केन्द्रों से संपर्क छूट गया है।

आप जो कुछ भी बोलते हो उसमें से कुछ मुझमें से, कुछ विवेकानंद से, कुछ शंकर से, कुछ रजनीश से चुराकर और रटकर बोलते हो। आपकी बुद्धि थोड़ी बहुत मदद करती है। परंतु वहाँ से ज्यादा मदद नहीं मिल पाएगी। क्योंकि वाणी का एक तत्व ऐसा है जो मन और बुद्धि से पर है। इसे परावाणी कही है। उस पराशक्ति के अनुभव के बाद साधारण वाणी में भी परावाणी की झलक मिलती है।

आपके रटे हुए प्रवचनों से लोग प्रभावित भी हो जाते हैं। क्योंकि उनका भी संपर्क सूक्ष्म के साथ नहीं है। आपको आश्चर्य होता है कि खूब तालियाँ बजी, लोग प्रभावित हुए लेकिन मैं असंतुष्ट क्यों हूँ मेरे प्रवचन से? क्योंकि आप जानते हैं कि जो विषय आपने उठा लिया था उसका आपके पास कोई अनुभव नहीं था।

पूंजी के बिना आप खर्चा करने निकले थे। आपको पता है कि आप जो बोल रहे हो वह सब उधार है। हमेशा उधार का भार रहता है। थोड़ी बहुत बौद्धिक कसरत और शब्दों के मायाजाल से काम तो निकल गया परंतु भीतर संतोष नहीं है।

मैं कहती हूँ कि जिस तरह आप अपने आंख कान नाक आदि के संदेशों के संपर्क में रहते हैं। ऐसे ही भीतर के कुछ सूक्ष्म केन्द्र के

संपर्क में भी रहो। जिसे मैं आदेश कहती हूँ।

इस संपर्क के लिए आपको थोड़ा ध्यान, एकांत, मौन, और अंतरमुखी होने की आवश्यकता है। आपके इर्द-गिर्द लोग बकवास कर रहे हैं। निरर्थक प्रवृत्तियाँ कर रहे हैं। आपके इर्द गिर्द पागलखाने जैसी स्थिति है। ऐसे माहौल में थोड़ा कठिन तो हो जाता है भीतर उतरना। परंतु मेरा अनुभव है कि बाहर की निरर्थक बातों की उपेक्षा करना सीख ली तो फिर ज्यादा तकलीफ नहीं होगी। भीतर साधना भी चलती रहेगी और बाहर नाटक भी।

भारत में एक नाथ संतों की परंपरा है, जिनके कान में बड़े बड़े छेद होते हैं और बड़े बड़े कुंडल पहनते हैं, नाथ साधु। उस परंपरा में एक बहुत प्यारा नियम है वे जब एक दूसरों से मिलते हैं तब बोलते हैं – “आदेश”। बड़ा प्यारा शब्द है यह। धर्मों और संप्रदायों के परे का है यह शब्द। इस शब्द का सीधा संबंध अंतरजगत के साथ है।

इस शब्द का संदेश ही है कि भीतर के आदेश के अनुसार मैं जी रहा हूँ। आप भी इस तरह ही जिओ। एक ही शब्द बहुत बड़ा उपदेश दे देता है, मनुष्य का बोध जगा देता है अगर समझ कर बोला जाए तो। फिर भी लगता नहीं है कि उपदेश दिया। इसमें उपदेश का भार नहीं है। दो संतों के मिलने पर का एक शिष्टाचार लगता है केवल। एक संत जब “आदेश” बोलता है तब सामने वाला भी “आदेश” बोलकर प्रत्युत्तर देता है। अर्थात् सूक्ष्म रूप से दोनों परस्पर को कह रहे हैं कि मैं जागता हूँ और प्रतिपल भीतर के आदेश को सुनता हूँ। आप भी जागते रहो और सुनते रहो उस आदेश को। यह एक आध्यात्मिक कोडवर्ड जैसा है।

प्रिय साधको!

नाथ संप्रदाय के कितने लोग इस सत्य को समझे हैं यह पता नहीं। परंतु “आदेश” शब्द कह रहा है कि अंतर की आवाज के अनुसार चलो।

प्यारे साधको!

यह आवाज आएगी कब? जब आंतरिक केन्द्रों के साथ संपर्क होगा तब। मनुष्य ने संपर्क तोड़ दिया है अपने भीतर के केन्द्रों के साथ। इसलिए भीतर से तो कोई आदेश आता ही नहीं। जो कोई आदेश दे रहा है वह मन या बुद्धि है।

मन झूठा आदेश भी दे सकता है। और ज्यादातर लोग मन के आदेश के अनुसार ही भागते जाते हैं। उसके पास आत्मबोध जैसा कुछ है ही नहीं। आत्मा को धारण करते हुए भी वे लोग खाली खाली हैं, खोखले हैं अथवा रोबोट जैसे हैं। स्वयं को चतुर समझने वालों को मैंने ज्यादा से ज्यादा गलतियाँ करते हुए देखा है। और ऐसी गलतियाँ कि जिन्हें वे जीवन भर नहीं सुधार सकते।

ऐसे लोगों का मन बुद्धि और अहंकार संगठन करके उनकी बनावट करते रहते हैं। ऐसे लोग मानते हैं कि मैं दुनियाँ को उल्लू बना रहा हूँ। हकीकत में वे खुद ही जिंदगीभर उल्लू बनते जाते हैं खुद की चालाकियों के द्वारा। उनमें से बहुत सारी चालाकियाँ तो मन की होती हैं।

अगर किसी के साथ ऐसा होता है तो इसे मैं आध्यात्मिक दुर्घटना कहती हूँ। ऐसी घटनाएँ घटने के कारण हैं भीतर के केन्द्रों से टूट जाना। केन्द्रों का संपर्क मनुष्य को सजग, सरल, सहज, प्रसन्न और निर्मल चित्त बनाए रखता है।

प्रिय साधको!

मैं चाहती हूँ कि ध्यान विधियों के द्वारा मनुष्य एक बार फिर से अपने केन्द्रों से संपर्क बनाना सीख ले। आपको पता है आदमी भले जिंदा हो, खाता-पीता हो, चलता-फिरता हो परंतु शरीर के जिस अंग के पास से काम लेना बंद कर दे, वह अंग निष्क्रिय हो जाता है। कुछ वर्ष के बाद अगर वह उस अंग से काम लेना चाहेगा तो भी अंग और अंगधारी दोनों को बहुत पीड़ा होगी, बहुत असुविधा खड़ी होगी। फिर वह मनुष्य उस अंग की निष्क्रियता का स्वीकार कर लेगा। परंतु उस अंग को सक्रिय करने में खड़ी होती हुई ज्यादा तकलीफें सहन नहीं कर पाएगा।

शरीर के कुछ सूक्ष्म बिन्दुओं का भी ऐसा ही है। भारत में एक समय ऐसा था जब ध्यान मनुष्य जीवन का एक अंग था, मनुष्य की दिनचर्या का एक अंग था, सहज और स्वाभाविक था। तब योग मनुष्य के साथ जुड़ा हुआ था। लोग उस विषय की शब्दावली को समझते थे। इसीलिए तो पतंजलि के सूत्र, ब्रह्म सूत्र, या भक्ति सूत्र जिनके प्रत्येक शब्द अपनेआप में विस्तृत अर्थ समाए बैठे हैं, ऐसे साहित्य का प्रभाव था।

रसायन शास्त्र का विद्यार्थी H<sub>2</sub>O सूत्र को आसानी से समझ लेगा। वैसे तो बात बड़ी साधारण है, H<sub>2</sub>O सूत्र पानी के लिए है। इसका अर्थ है हाईड्रोजन के दो भाग और ओक्सीजन के एक भाग की सम्यक मिलावट से पानी बनता है। परंतु बेचारे साधारण मनुष्य जिसका रसायन शास्त्र से कुछ लेना देना ही नहीं, उसका संबंध सिर्फ पानी के साथ है। हाँ, पानी के द्वारा जीवन संभव है। यह हम सब जानते हैं।



फिर भी सब लोग H<sub>2</sub>O सूत्र नहीं समझ पाएंगे। इसी तरह से आत्मरूप से गाढ़ नाता होने के बावजूद भी वह उससे दूर चला गया है। जिस वजह से पतंजलि ने संक्षिप्त में जो कुछ ज्ञान बता दिया है वह समझना साधारण जन के लिए असंभव है। शिव सूत्र को समझना भी असंभव है। क्योंकि ज्यादातर मनुष्यों का संपर्क टूट गया है इन सब बातों से।

मनुष्य जाति के लिए ध्यान एक परम सत्य होते हुए भी पुराना सत्य बन गया है। अनुभव के अभाव के कारण ध्यान मनुष्य जाति की कोई प्रचीन कथा जैसा हो गया है। कुछ ध्यान प्रेमी हैं परंतु उनका संघबल कम पड़ रहा है। जिसकी वजह से ध्यान पूर्ण रूप से विकसित नहीं पा रहा है।

समय समय पर पृथ्वी पर कोई न कोई प्रबुद्ध पुरुष प्रवास करते रहते हैं मनुष्य को पुनः पुनः सत्य का साक्षात्कार कराने के लिए। परंतु विकास और सुख के नाम पर मनुष्य के बाहरी रस के विषय इतने बढ़ चुके हैं कि स्वयं के भीतर उतरना उसे निरस लगता है। इतना धैर्य ही नहीं है मनुष्य के पास कि भीतर के रस का अनुभव करे। वह ध्यान में बैठते बैठते ऊब जाता है, थक जाता है।

ये थकान इसलिए है क्योंकि उसके भीतर की कुछ अमृतग्रंथियाँ निष्क्रिय हो गई हैं। बाहर से व्यवस्थित दिखने वाला मनुष्य भीतर से अपाहिज जैसा हो गया है। लंगड़ा आदमी चलेगा तो भी कितना चल पाएगा। ध्यान में उतरने का जिसे अभ्यास है ऐसे साधक को भीतर की ग्रंथियों से हकारात्मक रसायण तुरंत मदद करने लगते हैं। परंतु केन्द्र निष्क्रिय हो जाने के कारण जब मदद नहीं मिल रही है तो ध्यान में बैठा हुआ ऐसा आदमी ऊब जाता है, ध्यान से।

एक दूसरी विडम्बना ये है कि भीतर उतरे बिना उसे परम शांति मिलती नहीं है। परंतु भीतर स्थिर नहीं रह सकता। बाहर तनाव और अशांति का अनुभव कर रहा है। साधक जब ऐसी मनःस्थिति में है तब ध्यान मार्गदर्शक की जिम्मेदारी बढ़ जाती है।

अपाहिज को चलाना भी है। उन्हें पैर भी देने हैं। रास्ता भी दिखाना है। नए पैरों से परिचित न होने से वह लड़खड़ाता भी है। उसे थामना भी है। उसका हौसला भी बढ़ाना है और यदि गिर जाए तो बार बार उठाना भी है। आज के युग में ऐसे धैर्यपूर्ण और करुणावान हृदय के अनेक ध्यान गुरुओं की आवश्यकता है। कहाँ से लाएंगे इतने ध्यान गुरु। मेरे लिए यह कार्य अब एक अभियान बन गया है। हजारों हजारों साधकों को ध्यान में ले जाकर उनमें से ही कुछ साधकों के भीतर बैठा हुआ गुरु जाग जाए इसलिए मैं सक्रिय हूँ।

ये कोई स्कूल कॉलेज या यूनिवर्सिटी नहीं है। कि कुछ कोर्स चला दिए। डिगिरियाँ दे दी और मास्टर घोषित कर दिए। ये तो आध्यात्मिक जगत की सूक्ष्म प्रक्रिया है। बहुत कठिन अभियान है। ये एक चुनौती है। सम्प्रदायिक या परंपागत गुरुओं को पैदा किया जा सकता है परंतु एक ध्यानगुरु का उद्भव तो मनुष्य के भीतर रूपांतरण की लंबी प्रक्रिया के बाद ही हो सकता है। परंतु इसे कठिन मानकर छोड़ नहीं देना है। भारत के प्रबुद्ध ध्यान गुरुओं को केवल गुरु पद पर न चिटके रहते हुए सुपात्र ध्यान शिष्यों में छिपा हुआ गुरु प्रगट हो जाए, ऐसा आध्यात्मिक शक्तिपात और प्रयास करना पड़ेगा। मिशन कठिन है असंभव नहीं। उन जागे हुए नूतन ध्यान गुरुओं को ध्यान साहित्य की मदद मिल जाए इसलिए ध्यान शास्त्र और ध्यान ग्रंथादि का सर्जन, पुनर्सर्जन, प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार भी करना पड़ेगा। समाज को ज्यादा से ज्यादा माहौल देना पड़ेगा ध्यान का। सत्साहित्य मनुष्य के लिए दिशा खोलता है, उसमें रस जगाता है उस विषय के लिए। ध्यान में उत्सुक लोगों में तथा मध्यमवर्गी ध्यानियों को ध्यान ग्रंथ बहुत कम दाम में प्राप्त हो अथवा निःशुल्क प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था भी करनी पड़ेगी। आर्थिक रूप से सक्षम साधकों को इस कार्य को वेग देने के लिए अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करना पड़ेगा ध्यान साहित्य के प्रकाश में। खैर! यह बात निकली तो कुछ सृजनात्मक विचार दे दिए।

आंतरजगत की यात्रा के लिए मनुष्य का परम सहारा है ध्यान। एक बार जब साधक ध्यान से परिचित होकर उसका पूर्ण स्वीकार करके उसमें स्थिर होने लगता है तब उसके भीतर के कुछ केन्द्र कार्यान्वित होने लगते हैं। जैसे ही उसका संपर्क होगा उन केन्द्र बिन्दुओं से कि तुरंत वह प्रसन्नता, उत्साह और नवजीवन का आनंद लेने लगेगा।

ध्यान के द्वारा जब मनुष्य सुलझ जाता है तब ऐसे लोगों को देखकर बहुत प्रसन्नता होती है। मेरे लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं रहती है। फिर तो ऐसे मनुष्य को राम, कृष्ण, बुद्ध, या महावीर की जीवनी पढ़कर भी आश्चर्य नहीं होगा। उसे तुरंत समझ में आने लगेगा कि हाँ, जीवन में सबकुछ संभव है।

शरीर और मन को किसी भी प्रकार की पीड़ा या तकलीफ दिए बिना जो आंतरिक सुख प्राप्त होता है, उसका नाम है ध्यान। वह सुख धीरे धीरे, प्रतिपल आत्मशांति और आत्मस्थिति की अनुभूति कराता है, वह स्थिति जब अखंड रहती है तब बन जाती है समाधि।

परंतु इसके लिए आपको तैयार होना पड़ेगा। धर्म के नाम से फैल रही सारी भ्रमणाओं से एवं आपको सांसारिक जालों से मुक्त होने का संकल्प करके ध्यान को ही अपना परम धर्म बनाना पड़ेगा।

जब आप अपने परमात्मा को अपने भीतर ही ढूँढ लो तभी तो सच्चे साधक हो। दूसरों का अनुभव आपके कोई काम का नहीं है।

ध्यान के लिए कोई शोर्टकट कभी मत ढूँढना। न चिंता करना तथाकथित धार्मिक लोगों की आलोचना की।

आपको स्वयं को ध्यान को अपना रास्ता बनाकर यात्रा का आरंभ करना पड़ेगा। यात्रा लंबी भी हो सकती है। न डरो लंबी यात्रा से। पलायन मत करो। नपुंसक न बनो। आप जितनी लंबी यात्रा करके आए हैं। उससे तो ध्यान की यात्रा बेशक बहुत छोटी और सुगम है। प्रिय साधको!

मैं ध्यान की जिन विधियों की ओर जा रही हूँ उसके लिए अनिवार्य था इतना बोलना, इतना समझाना, आपके साथ विचारों को बाँटना। खैर! शरीर के स्थूल और सूक्ष्म सब मिलाकर बत्तीस महत्वपूर्ण स्थान हैं। उन बिन्दुओं के उपयोग से और सहयोग से आप ध्यान को आसान बना सकते हैं।

आपने कभी भस्मधारी शिवोपासक को देखा है? शैव मार्ग में शरीर के बत्तीस स्थानों पर भस्म लगाने का विधान है। क्या कारण है इसका? कभी सोचा है? कभी पूछा है उन लोगों को जो भस्म धारण करते हैं? भारत के प्रत्येक धार्मिक क्रिया कांड के पीछे अध्यात्म का सूक्ष्म विज्ञान छिपा है। परंतु समय के साथ वह विज्ञान, वह जिज्ञासा और अध्यात्म की सुवास अदृश्य हो गई उन कर्मकांडों में से। परिणाम स्वरूप कोरा कर्मकांड भ्रांति और अर्थोपार्जन का साधन बन गया।

हो सकता है कि शरीर के बत्तीस स्थानों में भस्म धारण करने वाले लाखों में से एकाद मनुष्य को पता हो उन बत्तीस देहबिन्दुओं का राज। बाकी लोगों से तो यही जवाब मिलेगा कि हमारे गुरु भस्म लगाते थे और हमारे धर्म की यह परम्परा है इसलिए हम लगा रहे हैं।

किसी भी परंपरा का नासमझीपूर्ण अनुसरण धर्म के मूल उद्देश्य को खत्म कर देता है। बहुत सारे धार्मिक क्रिया कलापों के पीछे बाहरी और भीतरी केन्द्रों को सक्रिय करने का हेतु छिपा है। परंतु कौन समझे? कौन पूछे? कौन समझाए?... बहुत सारे रहस्य रहस्य रह गए और चल पड़ी एक अंध परंपरा।

न सच्चे जिज्ञासु मिलते हैं, ना ही मिलते हैं संतोषकारक उत्तर देने वाले गुरु। तब ऐसी परंपरा एक मृत परंपरा बन जाती है। शोभा और खिलोने के फल जैसी। खिलौने के फल देखने में बहुत सुंदर लगते हैं, आप ठगे भी जाते हो उसे देखकर परंतु खा नहीं सकते। निकट जाकर छूएंगे तब पता चलेगा कि यह तो फायबर या लकड़ी को फलों का आकार देकर रंग किया है। उसमें स्वाद, रस, शक्ति कुछ भी नहीं होता। मनुष्य के ज्यादातर धर्म ऐसे ही हैं कि जहाँ सच्ची प्यास वाले लोग प्यासे ही रह जाते हैं।

खैर! मैंने भस्म धारण के बत्तीस स्थानों की बात छोड़ी थी। उनमें से बाइस स्थान बाहर के हैं और दस देह के भीतर के और सूक्ष्म हैं। मुझे यहाँ उन सूक्ष्म स्थानों पर ज्यादा ज़ोर देना है। जो निष्क्रिय जैसे हो गए हैं अथवा जिन बिन्दुओं की शारीरिक माँगों के संदर्भ में जितनी भूमिका है उतनी वे बिन्दु कुछ वर्ष तक निभा देते हैं। परंतु मनुष्य के आध्यात्मिक लाभ के लिए अछूते रह जाते हैं। मैं कहती हूँ कि देह के स्थूल और सूक्ष्म सभी अंगों का सदुपयोग कर लो आपकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए। वही सच्चा धर्म लाभ है।

अब मैं आपको आज्ञा चक्र से संबंधित एक विधि बताने जा रही हूँ। मैंने पहले भी बताया कि यह चक्र तृतीय नेत्र, अग्नि नेत्र, शिव नेत्र आदि नामों से जाना जाता है। ध्यान संबंधी कई विधियाँ आज्ञा चक्र से जुड़ी हैं। विधि के थोड़े बहुत फर्क के साथ साधक को प्रक्रिया में से गुजरना होता है। आज्ञा चक्र से संबंधित सभी ध्यान विधियाँ सुंदर और परिणामकारी हैं। परंतु सबसे पहले तो विधि को समझना अत्यंत जरूरी है।

मेरी शिबिर में अक्सर कुछ लोग ऐसे आ जाते हैं कि उन्हें मैं बताती कुछ हूँ और वे करते कुछ और हैं। कुछ लोग अपने मन में कोई और ध्यान संबंधी पुरानी धारणाएं लेकर आते हैं। कुछ लोग मूढ़ और हठीले भी होते हैं। उनको जो करना है वही करते हैं और भ्रम पालते हैं कि मेरा ध्यान लग गया।

ऐसे लोगों को समझाना भी निरर्थक है कि आप जो विधि कर रहे हैं उससे आपको ध्यान नहीं लगेगा। रोटी के लिए लगाए हुए आटे से हलवा नहीं बन सकता। हर चीज़ और कार्य के लिए जैसे पद्धति होती है, वैसे ही हर ध्यान के लिए पद्धति है। उसमें उस पद्धति के अनुसार ही उतरना चाहिए। अन्यथा निरर्थक हो जाएगा। कुछ लोगों का जीवन निरर्थक चला जाता है क्योंकि वे भटकते तो बहुत हैं साधु संतों में परंतु उन्हें जो सुनना होता है उतना ही सुनते हैं और जो करना होता है उतना ही करते हैं। ऐसे लोगों के लिए ध्यान है ही नहीं।

किसी भी ध्यानसिद्ध गुरु के मार्गदर्शन में रहकर ध्यान विधियाँ सीखने के लिए सबसे पहले तो आपमें अपार धैर्य, अनुशासन में रहने की क्षमता, मौन, स्वीकार भाव एवं तार्किक दलीलों से मुक्त होकर ध्यान संबंधी विधि विषयक बातों को सुनने की क्षमता, फिर उसे ग्रहण करने की क्षमता और फिर विधि के अनुसार ही धारणा जमाने की क्षमता, अपार आत्मविश्वास, ध्यान मार्गदर्शक में विश्वास और निष्काम भाव अर्थात् ध्यान के परिणाम अथवा फल की चिंता किए बिना ही ध्यान मार्ग पर लगे रहने का संकल्प होना चाहिए। इतनी गुणवत्ता के बिना दुनिया का कोई गुरु आपकी मदद नहीं कर पाएगा।

मैं यह नहीं कह रही हूँ कि अगर कुछ खास गुण आपमें नहीं हैं तो ध्यान आपमें नहीं है या आप ध्यान के लिए नहीं हैं। मैं यह सब इसलिए कह रही हूँ कि आप ध्यान के काबिल बनो। आप अपनी गुणवत्ता को, अपनी पात्रता को विकसित करो। आप स्वयं को देखो, ध्यान को समझने के पहले खुद को समझो, समझो अपने मन को, अपने शरीर को, अपनी प्रकृति को, आपके ईर्द गिर्द के माहौल को, ध्यान के लिए आपने जो माहौल बनाया है उसे भी देखो। कहाँ कहाँ से ध्यान में बाधाएं खड़ी हो सकती हैं? और कहाँ कहाँ से सहयोग मिल सकता है? इसका भी ठीक से अभ्यास कर लो। भीतर और बाहर के माहौल में तालमेल साध लो। वातावरण को खड़ा करो अपने पक्ष में, अपनी भूमि को तैयार करो ध्यान के बीज बोने के लिए। फिर ध्यान बिलकुल आसान हो जाएगा। यह सब मैं इसलिए बोल रही हूँ कि कम से कम आपको पता चलना तो चाहिए कि ध्यान के लिए क्या जरूरी है?

ध्यान श्लोकों से, शास्त्रों से, टेक्नोलोजी से, भाषण से, बड़े बड़े परदे पर चक्रों के चित्र दिखाने से, अथवा शरीर के भीतरी अंगों के वीडियो दिखाने से नहीं पनप सकता। ध्यान के लिए तो साधक को ध्यान में प्राण फूंक देने होंगे। आप समग्रता से समर्पित होने चाहिए ध्यान के लिए। साधना में निरंतरता और ध्यान की सच्ची प्यास बढ़ेगी तब कुछ हो सकता है।

एक बार फिर से कह रही हूँ ध्यान से सुनिए। भूमध्य बिन्दु को लेकर अर्थात् आज्ञा चक्र को लेकर कई ध्यान विधियाँ हैं। प्रत्येक विधि अनूठी है। परंतु पहले इसे ध्यान से समझ लेना; ताकि आप अर्थ का अनर्थ न करें अथवा विधि को गलत ढंग से न करें अथवा गलती से एक विधि दूसरी विधि में मिल न जाए।

आपको पता होगा कि रेडियो में कभी कभी सही स्टेशन न पकड़े जाने से दो तीन स्टेशन साथ बजने लगते हैं। सभी स्टेशनों पर अच्छा संगीत चल रहा है। परंतु सही स्टेशन नहीं पकड़े जाने की वजह से आप मनचाहे गीत का मजा भी नहीं से सकते हैं, ना ही रेडियो को छोड़ सकते हैं।

ध्यान में भी जब जागरुकता के साथ विधिओं का स्मरण नहीं रहा तो कुछ मिलती जुलती विधियाँ आपको उलझा सकती हैं इसके साथ साथ एक दूसरी बात भी याद रहे। प्रत्येक ध्यान अगर अस्तित्वगत रूप से समझ लिया है अथवा मेरी लिखी हुई ध्यान सूक्तियाँ पूरा पूरा लक्ष्य देकर समझी हैं तो गड़बड़ नहीं हो सकती। परंतु उतावलेपन से सबकुछ कर लेने की वृत्ति से ध्यान के नाम से उलझने खड़ी मत कर लेना। वैसे भी ध्यान मस्तिष्क का विषय नहीं है, अस्तित्वगत अनुभव का विषय है।

प्रिय साधको!

भूमध्य के साथ जुड़ी हुई दो चार ध्यान विधियों को आप एक दूसरे में जोड़ दें ऐसी संभावना है। कोई भी ध्यानविधि गलत स्मृति से, गलत अंदाज से, गलत ढंग से करेंगे तो ऐसा हो सकता है कि भीतर के दो चार स्टेशन मिलकर आपके लिए शांति के स्थान पर विक्षेप पैदा करें। परिणाम स्वरूप आप थक जाओगे।

तो अब ध्यान दीजिए ज्ञान नेत्र जागरण विधि की ओर – यहाँ मन को अर्थात् विचार को एक सूक्ष्म बिन्दु में स्थिर करने की विधि है। वह बिन्दु ऐसा है कि वहाँ विचार स्थिर होते होते, विचारों का परिमार्जन होते होते सिर्फ आवश्यक विचार ही रहेंगे और अंत में आवश्यक विचार भी परिशुद्ध होकर आपके लिए बंधन खड़े किए बिना आपके अस्तित्व को टिकाए रखने में मदद करेंगे। ऐसे विचारों को बुद्ध सम्यक विचार कहते हैं।

इस विधि के अभ्यास से अनावश्यक विचार भस्मीभूत हो जाएंगे। धीरे धीरे अनावश्यक विचारों का उत्पादन ही मिट जाएगा। भीतर एक विचार शून्यता घटेगी। इस अवस्था को ही सिद्ध जन निर्विचार अवस्था कहते हैं। और पतंजलि की भाषा में कहूँ तो यह अवस्था ही असंप्रज्ञात समाधि है।

प्रिय साधको!

शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद स्थान में अनुकूल आसन में बैठ जाओ पलाठी लगाकर। शरीर के भीतर की वायु को उच्छ्वास द्वारा बाहर निकालकर शुद्ध वायु को जितनी हो सके उतनी भर लो अपने भीतर। और तीव्र भाव करो कि आपके भूमध्य स्थान तक प्राण ऊपर उठ रहे हैं। प्राणशक्ति को ऊपर उठाते जाओ, ऊपर उठाते जाओ। भाव करो कि प्राणशक्ति का उर्ध्वीकरण हो रहा है।

शरीर की आवश्यकता के अनुसार फिर फिर के श्वास प्रश्वास की प्रक्रिया भले होती रहे। परंतु प्राणशक्ति का उर्ध्वीकरण हो रहा है, यह धारणा और अनुभव मत छूटने देना। अनुभव इसलिए कह रही हूँ कि हमारे ऋषिओं द्वारा दी हुई धारणाएं केवल कल्पना नहीं है, वह एक अनुभूत विज्ञान है। वे तीव्र धारणाएं धीरे धीरे अनुभव बनने लगती हैं। प्राणशक्ति के उर्ध्वगमन की धारणा का अर्थ है आपकी चेतना, शरीर या मन के प्रति न मुड़ती हुई केवल ऊपर की ओर उठती रहे, ऐसा हो इसलिए सजग रहो। दूसरी ओर सम्भव है कि मन और बुद्धि

उनके कार्य तो करते ही रहेंगे, उन्हें करने दो उनका कार्य।

हाँ, आपको ध्यान इतना ही रखना है कि उन्हें ऊर्जा नहीं देनी है। उसका सहयोग नहीं करना है, उनका विरोध भी न करो, उनकी उपेक्षा करो अर्थात् उनके प्रति ध्यान मत दो। आप सिर्फ एक ही ध्यान रखो कि जितने भी विचार आए उसे भृकुटि के मध्यबिन्दु में स्थिर करना है। जो कुछ भी आपके मन में आए उसे भेज दो एक केन्द्र पर।

विचार आपको इधर उधर घुमाएँ इसके पहले प्रत्येक विचार को आप भृकुटि के मध्य बिन्दु में पहुँचा दो। आज्ञा चक्र में सारे विचारों को स्थिर करने का मतलब लाइव डिटेक्टर में से सारे विचारों का पसार होना। प्रारंभ में अजीब लगेगा। परंतु धीरे धीरे विचारों का शमन होता जाएगा। मन स्थिर होता जाएगा। विचार शुद्धि घट जाएगी और निरर्थक विचार अदृश्य हो जाएंगे।

इनएलेजिबल स्टूडेंट को जैसे यूनिवर्सिटी में प्रवेश नहीं मिलता है इसी तरह से अयोग्य विचार को आपके भीतर की सजग ओटोसिस्टम प्रवेश ही नहीं देगी। विचार दरवाजे पर टहलते रहेंगे। आपके भीतर उसे प्रवेश नहीं मिलेगा। द्वार खुलेगा ही नहीं तो कोई कब तक खड़ा रहेगा। आज्ञा चक्र जागरण ध्यान विधि में उस केन्द्र का सिस्टम एक सजग द्वारपाल की भाँति काम करता है और निरर्थक विचारों को भीतर जाने ही नहीं देते। निरर्थक विचार ज्यादा देर तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। उसे वापस लौटना ही पड़ेगा। वे लौट जाएंगे अपने उद्गम स्थान में। विचार का उद्गम स्थान है मस्तिष्क और निवास है मन। धीरे धीरे मन भी अदृश्य होने लगेगा। ये ध्यान का परिणाम है।

ध्यान विधि में समग्रता के परिणाम स्वरूप तीसरा नेत्र सक्रिय हो जाता है। वह सारासार का विवेक देने लगता है आपको। आपका बोध अचानक जगने लगता है। ध्यान करते करते आप अचानक महसूस करेंगे कि कुछ क्षण पहले आप जैसे थे अब आप वैसे नहीं हैं।

इस विधि में से गुजरने के बाद ऐसा संभव भी नहीं है कि आप फिर से पहले जैसे हो जाओ। ऐसा हो ही नहीं सकेगा। आप स्पष्ट देख सकेंगे कि पुराना विदा ले रहा है। धीरे धीरे नूतन जन्म हो रहा है। यह पुनर्जन्म की घटना अति सूक्ष्म है। जिसमें कोई माँ बाप नहीं हैं। ना ही दूसरा शरीर है। न कोई गर्भाव क्रांति की घटना है। जो कुछ भी घटगा, वह आपके भीतर ही घटेगा, आप ही देंगे आपको दूसरा जन्म, और आप बन जाएंगे द्विज।

बच्चा नौ महीने के बाद माँ के गर्भ से जन्म लेता है। परंतु इस ध्यान विधि में पता नहीं कितने समय के बाद आप परिपक्व हों। नौ घड़ी, नौ दिन, नौ महीना या नौ साल भी लग सकते हैं। इतिहास में बहुत से ऐसे सिद्ध भी हुए हैं जिन्हें क्षण में ही ज्ञान हो गया था। आपके लिए भी ऐसी संभावना है, निराश मत होना।

आपका जो पुनर्जन्म होगा वह सूक्ष्म होगा। अर्थात् वह जन्म आत्मज्ञान का होगा, आत्मप्रकाश का होगा, वह साक्षात्कार के क्षण हैं। वही क्षण हैं महामृत्यु के और नवजीवन के भी।

प्राणशक्ति को ऊपर उठाते हुए विचारों को भृकुटि के मध्यबिन्दु में स्थिर करते करते आप एक ऐसे प्रकाश को पा लेंगे कि जो बाहर का नहीं भीतर का है। इसी बात को मैं दूसरे शब्दों में कह सकती हूँ कि भीतर का अंधकार नष्ट हो जाएगा। और एक ऐसे आत्मप्रकाश का उदय होगा जिसका कभी भी अस्त नहीं होगा।

वह प्रकाश आपके लिए तीसरे नेत्र का काम करेगा। इन्द्रियाँ गलती कर सकती हैं, बुद्धि गलती कर सकती है, मन का तो काम ही भटकना परंतु वह ज्ञान नेत्र वह प्रकाश आपकी ओर आ रही प्रत्येक चीज़ की ओर फोकस करेगा। वह तुरंत ही परख लेगा सार्थक और निरर्थक को। ऐसी अवस्था में आपके द्वारा गलती होने की संभावना ही नहीं बचेगी।

राजकुमार गौतम ने कहीं न कहीं पा लिया था इस प्रकाश को। इसी वजह से तो महल की प्रत्येक सीढ़ियों पर शराब की प्यालियाँ भर कर आकर्षक सुंदरियाँ भी उसे नहीं मोह सकती थीं। लोग कहते हैं कि राजकुमार गौतम ने गृह त्याग के बाद ज्ञान पाया परंतु मैं कहती हूँ कि वे जन्म से ही प्रबुद्ध थे। उनका प्रबुद्धत्व कैद किया जा रहा था महल में। उसके बुद्धत्व को अवरुद्ध करने की कोशिश हो रही थी महल में। उसके प्रकाश को अंधेरे का परिचय कराने का व्यर्थ प्रयास हो रहा था महल में। इसीलिए गौतम बुद्ध को महाभिनिष्क्रमण करना पड़ा।

एक बार जब आत्मप्रकाश की अनुभूति हो जाती है तब आप के प्रबुद्धत्व पर कोई माया को थोप नहीं सकता। आप के प्रकाश को कोई अंधेरा ढंक नहीं सकता। आपके सत्य को असत्य दबा नहीं सकता। सोने की जंजीरों से भी आप बंध नहीं सकते। ऐसी अवस्था के लिए वेद के ऋषि के बाद आज फिर से मुझे नेति, नेति शब्द की जरूरत पड़ रही है।

प्रिय साधको !

वह अवस्था सर्वश्रेष्ठ, अदभुत और अवर्णनीय है। मैं कैसे बताऊँ आपको ? कैसे समझाऊँ इसे ? वह अनुभूति तो मौन में घटती है। मौन में ही समझी जाती है और मौन में ही प्रवाहित की जाती है।

मैं कहती हूँ, बैठो ध्यान में, उतरो इस विधि में, पहुँचो अनहद में, वहाँ पहुँचकर आप भी नेति नेति कह देंगे।



## छादश स्थान वर्णोच्चार भाव ध्यान

प्रिय साधको !

वैसे तो हमारे रोम रोम में परमात्मा बसे हैं और उसके अनुभव के लिए परमात्मा ने हमको एक ऐसी इन्द्रिय दी है कि जो आपको सर से पैर तक लपेट कर बैठी है। जिसके द्वारा सर्द-गर्म, सुख-दुःख आदि का अनुभव होता है। जिसका नाम है स्पर्शेन्द्रिय।

वह स्पर्शेन्द्रिय त्वचा के रूप में है। इस चमड़ी के तंबू में परमात्मा ने करंट पास किया है। जो प्रतिपल बाहर से कुछ अनुभव लेता है और कुछ संदेश देता है आपके मस्तिष्क को। परंतु वह बहुत सूक्ष्म है।

इसका कार्य बहुत बड़ा होते हुए भी छोटा है। ऐसी त्वचा की व्यवस्था शरीर के भीतर भी है। ये तो एक शारीरिक व्यवस्था है। यह त्वचा विज्ञान के अनुसार भिन्न भिन्न नाम से शरीर के भीतर के भी कई अंगों के अंदर भी है। जैसे कि हृदय के लेयर्स को एंडोकारडीयम, पैराकारडीय और मायोकारडीयम कहते हैं। इसी तरह यह अन्य अंगों में भी है।

मनुष्य की रक्षा के लिए कुदरत के द्वारा दी गई यह एक सुंदर व्यवस्था है। मनुष्यता के लिए अफसोस की बात है कि वह शरीर के बाहर की चमड़ी तक ही देख सकता है। चमड़ी के रंग के अनुसार पूरी मनुष्यता बँट गई। जैसे काला, पीला, गोरा। परंतु सबके भीतर स्पर्श से भी असंख्य गुना ज्यादा ऊर्जावान केन्द्र कार्य कर रहे हैं। उनकी ओर तो कोई देखता ही नहीं है। शरीर की चमड़ी को रंग भी परमात्मा देते हैं और मनुष्य के भीतर के केन्द्रों को क्रियान्वित भी वही रखते हैं।

वे केन्द्र और उनके कार्य अतिसूक्ष्म हैं। दुनिया का कोई भी डॉक्टर शरीर को खोल कर कितनी भी सूक्ष्म छानबीन करे, यंत्रों को शरीर के साथ जोड़े फिर भी उसकी सूक्ष्मता को नहीं पकड़ सकता। ज्यादा से ज्यादा उन केन्द्रों का कार्य और असर पकड़ में आ सकता है।

विज्ञान ने इन केन्द्रों के बारे में अर्थात् उनके असर के बारे में कुछ इशारे पा लिए हैं। परंतु केन्द्र तो अति सूक्ष्म, गहन और गुप्त ही रहे हैं। वे केन्द्र प्रतिपल आपकी मदद कर रहे हैं।

मनुष्य उन केन्द्रों का पूर्ण रूप से अनुभव कर सकता है और उससे ज्यादा लाभांशित हो सकता है। परंतु उन्हें ध्यान के द्वारा पहले जानना होगा कि लाभांशित होने का ढंग क्या है ?

शरीर के सूक्ष्म केन्द्रों का खजाना एक ऐसा खजाना है कि वह मनुष्य के पास होते हुए भी मनुष्य उसे छू नहीं सकता, देख नहीं सकता। वह उन केन्द्रों से मिलने वाले लाभों को थोड़ा बहुत भुगत रहा है फिर भी वे केन्द्र मनुष्य के नेत्र और स्पर्श के दायरे के बाहर होने की वजह से मनुष्य उससे अज्ञात रह जाता है।

उन केन्द्रों पर चोट पड़ने से केन्द्र को नुकसान हो सकता है और मनुष्य मर भी सकता है। कुछ योगी, ध्यानी और कल्लरी आर्ट को जानने वालों के सिवाय उन मर्म स्थानों को कोई नहीं जान पाता।

भारत के द्रविड़ प्रांत में जन्मी और पनपी कल्लरी आर्ट का प्रचार प्रसार ज्यादा से ज्यादा बौद्ध संतो के द्वारा हुआ। कुछ लोगों ने उसे बौद्धों की विद्या मान ली परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। विश्व की कोई भी कला जैन, बुद्ध, मुस्लिम, हिन्दु नहीं होती कला तो कला होती है। वह बिलकुल ध्यान की भांति है। इसे हरकोई सीख सकता है।

बौद्ध संतों ने तो कल्लरी आर्ट को आत्मरक्षा के लिए सीखा था। कल्लरी आर्ट के मर्मज्ञ सहजता से मनुष्य की हड्डियों को ब्रेक करना, मनुष्य को बेहोश करना, मार देना, अपाहिज करना कि लकुवाग्रस्त करना ये सब कहा जानते थे। उन्हें कोई अस्त्र शस्त्र की जरूरत नहीं पड़ती थी।

अपनी आत्मरक्षा के लिए हमलावर पर किस हद तक चोट पहुंचानी है इस बात का उन्हें पूरा पूरा होश होता है। हिंसा या बदले की भावना से भरे मनुष्य को यह विद्या नहीं दी जाती और ऐसा मनुष्य इस विद्या को पूर्णरूप से आत्मसात भी नहीं कर सकता।

कल्लरी विद्या के पूर्ण ज्ञानियों का उपलब्ध होना ये तो मुश्किल है आज के युग में। परंतु ऐसा भी नहीं कह सकते कि नहीं है। कल्लरी विद्या का थोड़ा अभ्यास करने के बाद मैं कह सकती हूँ कि उस विद्या को जानने वाला सही अर्थ में योगी होता है। मेरा अंदाज है कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से योग विद्या जानना अनिवार्य हो जाता है कल्लरी विद्या सीखने के लिए।

वे लोग भले योग विद्या की शब्दावली के स्थान पर किन्हीं अन्य शब्दों का प्रयोग करते हैं परंतु योग विद्या को आत्मसात किए बिना कल्लरी विद्या की प्राप्ति संभव नहीं है। यह मैंने सूक्ष्म रूप से समझ लिया है।

कल्लरी विद्या भी देह के सूक्ष्म बिन्दुओं पर आजमाई जाती है और योग विद्या भी। तंत्र भी इन दोनों से बहुत करीब है। फर्क इतना

है कि कल्लरी स्वबचाव के लिए उसमें अन्य से लड़ने के लिए परोक्ष रूप से योग बल का प्रयोग करना है।

कल्लरी विद्या में दो बातें घटती हैं। एक तो अपने शरीर की सारी शक्ति को साधक अपनी किसी एक अंग में केन्द्रित करता है और फिर उसके द्वारा आत्मरक्षा के लिए हमलावर के मर्म स्थान अर्थात् शरीर के ऐसे सूक्ष्म केन्द्र जिसपर चोट पड़ने से नुकसान हो सकता है, उसपर प्रहार करता है।

परंतु उसमें दूसरे को मात देने के लिए अपनी ऊर्जा क्षीण होती है और न चाहने पर भी थोड़ी बहुत हिंसा अनिवार्य हो जाती है। जबकि योग विद्या में समग्र शक्ति का केवल उर्ध्वीकरण होता है उसका हास नहीं होता। उपरांत योग साधक का हेतु अथवा ध्यानी का हेतु एक मात्र आत्मसाधना का होने की वजह से अंजाने में भी हिंसा पैदा नहीं होती।

अहिंसा की वजह से मन सदा प्रसन्न रहता है। योगी ध्यान के पहले के सोपानों के द्वारा विकसित होता होता ध्यान के माध्यम से जान लेता है उन केन्द्र बिन्दुओं को जो अपार शक्ति के भंडार हैं और वह शक्ति योगी की आध्यात्मिक उन्नति में सहयोग करने वाली हैं।

आपको प्रश्न हो सकता है कि ऐसे केन्द्र कितने हैं? योग और तंत्र शास्त्र के अनुसार ये बारह स्थान हैं। तंत्र शास्त्र में जो द्वादश नाम से प्रसिद्ध है।

प्रिय साधको!

मैं बहुत जाग्रत रहती हूँ इस बात के लिए कि मेरा दिया हुआ ध्यान शास्त्र भारी भरकम न बन जाए। कभी कभी कुछ शास्त्रों में भाषा का बोझ इतना बढ़ जाता है कि साधक उसे समझते समझते तंग आ जाता है।

फिर भी मुझे कई बार ऐसा लगता है कि योग शास्त्र के मूल शब्दों के साथ छेड़खानी न हो तो अच्छा। उन्हें ज्यों के त्यों धर देना ही सुंदर लगता है। योग शास्त्र के कुछ शब्द इतने अनूठे हैं कि वे मूल रूप में ही शक्तिपूर्ण और प्रभावक लगते हैं। जब ऐसा हो तब उसे मूल रूप में रखने में ही सरमझदारी है।

ऐसे शब्द भले थोड़े भारी लगें परंतु साधक को इन शब्दों को समझ और अभ्यास करके स्वीकार कर लेना चाहिए।

उदाहरण के रूप में “यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।” कैसे बदलेंगे इन शब्दों को? शिव से लेकर पतंजलि तक कोई नहीं बदल पाया इन्हें। ऐसा नहीं कि उन लोगों के पास नए शब्द नहीं थे इनके लिए। परंतु शब्द कोष के अन्य कोई शब्द हैसियत ही नहीं रखते हैं इन शब्दों का स्थान लेने की। ये शब्द पुराने होते हुए भी नित्य नूतन हैं सनातन हैं।

ध्यान से प्यारा शब्द और समाधि से उत्तम शब्द कहाँ से लाएंगे? वे शब्द पुरातन होते हुए भी अर्वाचीन हैं। प्राचीन होते हुए भी नूतन हैं। शब्द स्वयं बोलने लगते हैं।

आज तक दुनियाँ का कोई फिल्सूफर, रहस्यवादी, ज्ञानी, योगी या क्रांतिकारी ध्यान के लिए नया शब्द नहीं ढूँढ पाया। हाँ, बुद्ध ने समाधि के स्थान पर समापत्ति और सतौरी शब्दों का प्रयोग किया परंतु वह तो समाधि के नीचे की अवस्थाएं हैं। और कहीं कहीं समाधि का अपभ्रंश है, पर्याय नहीं। पूरी दुनियाँ जानती है कि मागधी, अर्धमागधी और पाली भाषा अपभ्रंश धारा की भाषा हैं।

खैर! ऐसा ही योग शास्त्र का एक शब्द है द्वादशांत। द्वादश का अर्थ है बारह परंतु बारह बोलने में थोड़ा स्थूल लगता है। द्वादशांत का मैं एक अर्थ करती हूँ कि उन बारह स्थानों को जान लेने के बाद अंत आ गया। किसका अंत? मैं कहूँगी आवागमन का अंत, संसार का अंत, सुख-दुःख का अंत। एक दूसरी बात भी समझ लीजिए, द्वादशांत का अर्थ वैसे तो कई स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है परंतु जहाँ ध्यान से लेना देना है, विधि से लेना देना है। उसमें बारह भीतर के बिन्दु और बारह बाहर के भी समझना। इन बातों का प्रमाण आपको किसी भी शास्त्र से नहीं मिलेगा। ये एक अनुभव से दिया हुआ मेरा निवेदन है। जैसे बारह बिन्दु शरीर के भीतर हैं वैसे ही बारह बिन्दु शरीर के बाहर भी हैं। श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया में चक्र के चौबीस आरों की भांति वायु वर्तुलाकार होता रहता है, मनुष्य के भीतर और बाहर। यही है संसार चक्र का रहस्य। परंतु इस बात को ध्यानी ही समझ सकता है।

जिसने बारह स्थानों को जानकर उन केन्द्रों से संपर्क कर लिया उसके जन्म मरण का हमेशा हमेशा के लिए अंत आ गया। जिसे बुद्ध परिनिर्वाण कहते हैं। जिसे लोग मोक्ष कहते हैं।

मैं यहाँ शारीरिक मृत्यु की बात नहीं कर रही हूँ परंतु आसक्ति मृत्यु की बात कर रही हूँ। मनुष्य इच्छा और आसक्तियों की वजह से पल पल मरता है, मर मर कर जीता है और फिर आशा के आधार पर जिन्दा रहता है। नई नई आशा बना लेता है।

मनुष्य आशा के बल पर जीता है और एक बात याद रहे कि आशाएं टूटने के लिए ही होती हैं। आशाएं अगर पूरी भी होंगी तो भी शाश्वत नहीं हैं और मानव मन पूरी हुई आशाओं से संतुष्ट भी नहीं रहता। रोज नई नई आशाएं पैदा कर लेता है।

जिन्दगी के दिनों से हजारों गुनी ज्यादा उनकी आशा है। कैसी पूरी होंगी वे सब? वैसे भी हर आशा तो पूरी होती ही नहीं। अधूरी

और टूटती आशाओं के साथ मनुष्य भी टूटता है। टूटा हुआ मनुष्य असंतोष की वजह से मरता रहता है। यह वेदना समग्र मनुष्य जाति की है।

जो मनुष्य अपने शक्ति केन्द्रों से सजग संपर्क बना लेता है वह आत्मतुष्ट बन जाता है। जिसे गीता में कृष्ण स्थितप्रज्ञ कहते हैं। उसे मैं प्रज्ञावान कहती हूँ।

मैं उस मनुष्य को ही शक्तिमान कहती हूँ जो स्वानुशासित है। शरीर भौतिक या दुन्यवी व्यवस्था देखता है और भीतर के केन्द्रों की शक्ति आंतरिक रूप से मनुष्य को व्यवस्थित करती है। उस व्यवस्था को मैं अध्यात्म कहती हूँ। यह आंतरिक व्यवस्था जिसने पा ली है ऐसे मनुष्य को आध्यात्मिक मनुष्य कहती हूँ।

बाहर की व्यवस्था के लिए जैसे पांच कर्मेन्द्रियाँ और पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं वैसे ही भीतर की व्यवस्था के लिए अर्थात् मनुष्य की आध्यात्मिक सुरक्षा के लिए भी बारह स्थान हैं। परंतु जन्म से ही बाहर की यात्रा के लिए अभ्यस्त मनुष्य भीतर देखना ही भूल गया है।

भीतर के केन्द्रों के प्रति दुर्लक्ष्य की वजह से उन केन्द्रों की एक चौथाई शक्ति ही काम कर रही है आपके साथ। वे उपेक्षित केन्द्र शरीर को जिन्दा रखने के लिए जितना जरूरी है उतनी मदद तो कर रहे हैं। जीवन समाप्त होने के साथ उन केन्द्रों की शक्ति शरीर के साथ निरर्थक हो जाती है।

मैं कहती हूँ कि आपको जिन्दा रखने के उपरांत उन केन्द्रों की शक्ति आपकी अपार मदद कर सकती है। मनुष्य जीवन को सविशेष मूल्यवान बना सकती है। दुनिया इस मूल्य की कीमत नहीं चुका सकती। इस शक्ति को पद प्रतिष्ठा या धन के तराजू से नहीं तोला जा सकता परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से अमूल्य है।

जिन्होंने अपने आंतरिक शक्तिकेन्द्रों को पूरा पूरा जगा लिया था, ऐसे प्रबुद्ध पुरुषों के चरणों में बैठने के लिए राजा-महाराजा भी तरसे हैं। महाराजा जनक अष्टावक्र को कितनी प्यास के साथ सुनते हैं। कितने विविध हो गए थे महाराज परीक्षित शुकदेव को सुनने के लिए। महाराज जन्मेजय तो गिड़गिड़ा रहा है वेद व्यास के पैर पकड़कर।

प्रिय साधको !

इन शक्ति केन्द्रों के लिए मनुष्य सजग रहे और अध्यात्म के प्रति उन्मुक्त हो इसलिए आदि अनादि काल से भारत के कई योगी ध्यानी संत सक्रिय हैं।

समय समय के साथ मनुष्य फिर फिर विस्मरण कर जाता है, सत्य का। आज फिर से मैं एक बार आपको आपके खजाने के लिए बोध कराने आई हूँ।

वह एक गुप्त खजाना है। आपके पास होते हुए भी आप भिखारी की भाँति भटक रहे हो। स्त्री से, पुरुष से, बच्चों से, प्रेमियों से, दुनियाँ से कुछ न कुछ मांगते रहते हो।

इन्द्रियों को भटका भटका कर भीख इकट्ठी करके स्वयं को तृप्त करने का प्रयास करते हो। परंतु याद रखना भिखारी कभी खुश नहीं रह सकता। वह भीख माँगकर ही खुश रह सकता है। उसको आदत हो गई है भीख माँगने की।

कुछ दिन पहले मैंने अखबार में एक किस्सा पढ़ा था। उत्तर प्रदेश का एक बंदायुं नामक गाँव वहाँ सरपंच के चुनाव के लिए जितने भी प्रतिनिधि तैयार हुए थे, गाँव की दृष्टि से वे सब बदमाश थे। गाँव वालों को लगा कि इन लोगों में से किसीको भी सरपंच बनाया जाएगा तो हम तो और शोषित हो जाएंगे, दुखी ही रहेंगे। क्या करें ? अंत में उन्होंने गाँव के एक भीख माँगने वाले एक नट को खड़ा कर दिया। उसका प्रचार प्रसार किया, उसको चुनाव जिताने के लिए खर्चा भी उठाया। क्योंकि सब जानते थे कि गुंडों को सरपंच बनाने से तो पूरा गाँव भिखारी बन जाएगा। इससे तो बेहतर है कि हम भिखारी को सरपंच बना दें।

उस नट के सामने जब सरपंच का प्रस्ताव आया तब उसने कहा कि भले आप मुझे जिताओ, मैं सरपंच भी बन जाऊँ, जैसा आप सब कहेंगे वैसा मैं सबकुछ अपने गाँव के हित में करूँगा भी लेकिन भीख माँगना यह तो मेरी आदत बन गई है। मैं उसे नहीं छोड़ सकता। मेरा पूरा परिवार भीख माँगता है। हाँ, मैं इतना करूँगा कि मेरी भीख में से जो कुछ बचेगा। वह सब मैं गाँव के विकास में लगा दूँगा।

बात कुछ मजे की है। सामाजिक या राजकीय स्तर पर इस बात का जो लेना देना है वह तो हम सब आसानी से समझ सकते हैं परंतु सरपंच बनने के बावजूद भी भिखारी की जो शर्त है उस पर सोचना है।

प्यारे साधको !

यहाँ बात मन की है। मनोविज्ञान के ढंग से देखा जाए तो राजा महाराजा भी भिखारी की मानसिकता से पीड़ित हो सकते हैं। वह नट तो एक जीता जागता प्रतीक है। बात है स्वभाव की, मन की, आदत की।

प्रिय साधको !

आप राजा हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ, कमेन्द्रियाँ और मन तो आपके प्राधान और नौकर चाकर हैं। परंतु राजा अपनी असलियत को भूल गया है। उसे अपनी इन्द्रिय और मनोपरिवार के साथ भीख माँगने की आदत हो गई है।

मनुष्य कभी आंखों से भीख मांगता है, कभी मन से, कभी शरीर से.....।

बाहर की कितनी भी चीजें मनुष्य के पास आ जाएं परंतु वह संतुष्ट नहीं है। भिखारी वृत्ति जोर पकड़ लेती है। अभ्यास दृढ़ हो गया है माँगने का। मरते दम तक मांगता रहता है मनुष्य, भीख।

एक या दूसरे ढंग से कुछ साधु संत भी बाकी नहीं हैं इन बातों से। वे भी भिन्न भिन्न ढंग से भीख मांगते हैं। फिर भले उस नट की भांति भीख के पैसे समाजसेवा में लगाकर दुनियां की वाह वाह को प्राप्त कर लें। परंतु भीख जरूर माँगेंगे।

आप देखते हो टी.वी. की धार्मिक चैनलों को ? भिन्न भिन्न सत्संग के और सेवा के लाईव टेलीकास्टिंग के नाम पर तथाकथित धार्मिक आध्यात्मिक संत कोई न कोई सुंदर बहाने तले धर्म, गाय, मंदिर, या समाजसेवा के नाम पर भीड़ के पास भीख मांगते ही रहते हैं।

सत्संग साईड में रह जाता है और फंड, फाला, चंदा, दान, पूजा, चढ़ावा, यजमान पद शुल्क चलता ही रहता है।

यह सब क्या है ? मैं कहती हूँ कि कान पकड़ने हैं तो सीधा ही पकड़ लो ना। हाथ को सर के पीछे से घुमाकर कान पकड़ना क्या जरूरी है ! आपकी आवश्यकता है और भक्तों की क्षमता है तो सीधा ही सहयोग माँग लो। अगर आपकी पात्रता होगी तो लोग अवश्य सहयोग करेंगे। बीच में धर्म को क्यों लाते हो ? परंतु इन सब प्रवृत्तियों के पीछे मनुष्य की भिखारी वृत्ति काम करती है।

जब मैं छोटी थी तब मेरी समझ में ये सारी बातें नहीं आती थीं। परंतु आज एक बात स्पष्ट हो गई है कि भीख में से भीख देने से अच्छा है कि भीख भी मत मांगो और दान भी मत करो। यदि दान करना ही है तो अपनी क्षमता के आधार पर धन को अर्जित करो। भीख मांगकर दान करना केवल मूढ़ता है।

ऐसी सेवा वृत्ति भी साधना मार्ग में बाधक है। आपकी क्षमता के द्वारा सहजता से जो प्राप्त हो उनमें से जितना हो सकता है उतना करो। अन्यथा साधुता, भेख, सन्यास, संतत्व सब निरर्थक है।

भेख और भीख में केवल उच्चारण का भेद है, मात्राओं का नहीं।

ध्यान आपको इन वृत्तियों से बचा सकता है। ध्यान आपको वृत्ति मुक्त कर सकता है। ध्यान आपको बदल सकता है।

दुनियां में पैदा होने के साथ ही मनुष्य की माँग शुरू हो जाती है। वह माँग है रोटी, कपड़े और मकान की। अर्थात् अपना अस्तित्व टिकाए रखने की।

धरती पर आते ही, बच्चे के रोने का प्रारंभ यह माँग का प्रारंभ है। माँ के गर्भ में उसे खाने-पीने की या सुरक्षा की चिंता नहीं थी। बाहर आते ही उसे असुरक्षित माहौल महसूस होता है। एक बड़े शरीर से एक छोटा शरीर कट कर अलग हो गया। अब श्वास लेना, भोजन लेना और भोजन पचाना ये सारी जिम्मेदारी उसपर आ गई।

आप पृथ्वी पर जन्म के साथ ही कुछ दायित्व लेकर आते हैं। अस्तित्व आपको कहता है कि नौ महीना बहुत आराम कर लिया। अब खुद की रोटी खुद कमाओ। और बच्चे की सबसे पहली भाषा है रुदन।

वह रोने की भाषा में भोजन माँग रहा है। माँ के गर्भाशय की सुरक्षा में से बाहर आते ही वह सुरक्षा माँग रहा है रोने की भाषा में। शरीर को ठंड लग रही है बच्चा रुदन की भाषा में कपड़े माँग रहा है। उसका रुदन कह रहा है कि मुझे बचाओ, मेरी ओर ध्यान दो, मेरी मदद करो।

माँ की गोद, पल्लू और स्तन मिलते ही उन्हें सुरक्षा का अनुभव होने लगता है। उससे उसे विश्वास बैठता है मनुष्यता में। कि यहाँ कोई मेरी मदद कर सकता है। सहयोग प्रेम और भलाई के संस्कार सर्वप्रथम उसे नर्स, दाई या माता की ओर से मिलते हैं।

परंतु धीरे धीरे आत्मनिर्भर बनने के स्थान पर माँगने का स्वाभाव बन जाता है। आदत बन जाती है कुछ लोगों की। जिसकी यात्रा सिर्फ बाहर की ही है वे लोग ज्यादा लालची हो जाते हैं।

उसे पता तक नहीं है कि कुदरत ने मुझे भीतर भी कुछ शक्ति केन्द्र दिए हैं। उन केन्द्रों को सक्रिय रखने से बहुत कुछ बिना मांगे मिल जाता है। वह ऐसा अदभुत है कि जिसे दुनियां कभी भी नहीं दे पाती।

उन केन्द्रों से संपर्क होते ही बहुत सारी मांगें मिट जाती हैं। याद रहे, कोई चतुर आदमी आपको ऐसा समझाए कि ज्यादा धन आने के बाद तृप्ति आ जाती है और माँगना बंद हो जाता है, तो यह गलत है। इसका संबंध वृत्ति के साथ है। केन्द्रों से परिचय होने के बाद वृत्तियाँ रूपांतरित हो जाती हैं। कबीर के पास कहाँ धन था ? रईदास के पास क्या था ? महम्मद साहब का तो कानून था कि जो कुछ घर में आए



सोने से पहले उसका खर्चा हो जाना चाहिए।

एक बार मोहम्मद साहब बीमार थे। उसकी पत्नी ने दो दिरहाम छिपा कर रख दिये और सोचा कि साहब ज्यादा बीमार पड़ गए और दवाई में जरूरत पड़ी तो ? उस रात मोहम्मद को नींद नहीं आ रही थी, बड़े बेचैन थे, घर में कहीं से अश्रद्धा की बू आ रही थी। उसने अपनी पत्नी से पूछा – आज तूने मुझसे कुछ छिपाया तो नहीं ? मेरा दिल इतना बेचैन क्यों है ? पत्नी ने सबकुछ सच सच बता दिया। मोहम्मद ने कहा – अभी के अभी वे दो दिराम किसी को देकर आजा। आज की रात अगर वे पैसे घर में रहे तो मैं चैन से जी तो नहीं पाऊंगा परंतु मर भी नहीं पाऊंगा। क्योंकि मृत्यु की क्षण यदि अल्लाह ने मुझसे पूछ लिया कि क्या मुझ पे भरोसा नहीं थी कि धन बचा कर रख लिया ? तो क्या जवाब दूंगा मैं अपने अल्लाह को ?

प्रिय साधको !

बात अमीरी या गरीबी की नहीं है। बात वृत्तियों की है, बात आध्यात्मिक परिपक्वता की है।

परंतु ज्यादातर लोग बचपने में ही जी रहे हैं। आध्यात्मिक परिपक्वता के बिना अन्य कोई परिपक्वता आपके आंतरिक उर्ध्वीकरण के लिए आपकी मदद नहीं कर सकती। केवल ज्ञान ही आपको भिखारी वृत्ति से मुक्त कर सकता है। ध्यान का सीधा संबंध ज्ञान जगत से है। हाँ, उसका असर आपके बाहरी जीवन पर पड़े, ज्ञान का प्रतिबिंब आपके व्यवहार में दिखाई दे यह बात अलग है और ऐसा होना स्वाभाविक है।

खुशबू और बदबू को कोई ज्यादा देर तक छिपा नहीं सकता। आध्यात्मिक चित्त की सुवास चंदन की भांति सहज ही फैल जाती है। परंतु इसके लिए आपको अपने विशेष शक्तिकेन्द्रों के परिचय में आना होगा। अंतरमुखी होकर सबसे पहले उन केन्द्रों के स्थानों को जान लो। इसमें ध्यान गुरु आपकी थोड़ी बहुत मदद कर सकते हैं।

फिर निकट आओ उन केन्द्रों के, धीरे धीरे प्रेम करना सीख लो उन केन्द्रों से। वे आपसे भिन्न नहीं, वे आपके ही अंश हैं। वहाँ जो सुषुप्त शक्तियाँ पड़ी हैं वह आपका ही खजाना हैं परंतु आपको पता नहीं होने की वजह से आप बाहर से कुछ न कुछ मांगते रहते हैं।

आप एक बार अपने खजाने को जान लेंगे और पा लेंगे फिर आपकी माँगें बंद हो जाएंगी। फिर तो लुटाना शुरू हो जाएगा। आप देना सीख लेंगे। इसे सीखना नहीं पड़ेगा। आपकी उपस्थिति मात्र से लोगों को बहुत कुछ मिलने लगेगा।

वही तो है तरंगों की दुनियाँ। इसे आपके सत्वगुण का पूर्ण विकास कहो तो भी चलेगा। अल्फा रेज कहो तो भी ठीक है, आशीर्वाद कहो तो भी ठीक है। और प्रेम और करुणा की अवस्था कहो तो भी ठीक है।

परंतु ये सारी बातें भीतर उतरने के बाद ही आप समझ पाएंगे।

प्रिय साधको !

मैं आपको जो ध्यान विधि बताने जा रही हूँ वह एक अनूठी विधि है। अत्यंत सरल और खेल खेल में सम्पन्न हो जाए ऐसी है। फिर भी गूढ़ है। पहले उसकी महिमा समझानी जरूरी थी इसलिए मुझे इतना बताना पड़ा। आपके शरीर के भीतर सूक्ष्म रूप से कार्यान्वित ऐसे प्रमुख बारह स्थान हैं। तंत्र अंतर्गत का ध्यान शास्त्र उन स्थानों को जन्माग्र, मूलाधार, कंद, नाभी, हृदय, कंठ, तालुमूल, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरंध्र, शक्ति और व्यापिनी नाम से जानता है।

प्रिय साधको !

एक बात खास याद रहे कि ध्यान में सबसे ज्यादा किसी की महिमा हो और सबसे सबल कोई आधार है तो वह है भाव। जिसे योग शास्त्र धारणा कहता है।

भाव की शक्ति अर्थात् धारणा शक्ति साधक के भाव जगत को अत्यंत तीव्रतम बनाकर सूक्ष्म जगत को पा लेती है। जिस साधक का धारणा पद्धति में भाव जगत कमजोर पड़ता है। जो विधि से जिस भाव की तीव्रता बढ़नी चाहिए उतनी नहीं बढ़ती है तो विधि पूर्ण रूप से सम्पन्न नहीं हो पाएगी। धारणा शक्ति की कमजोरी साधक को लम्बी यात्रा करने के लिए मजबूर कर देती है।

किसी भी वस्तु, व्यक्ति, विचार या परिस्थिति के प्रति तीव्र भावपूर्ण बनने का अर्थ है उसे अपना हृदय दे देना।

अगर पूर्ण हृदय के साथ विधि में उतरेंगे तभी आप को पूरी पूरी मदद मिल पाएगी अंतरजगत से।

थोड़ी देर पहले मैंने जो बारह स्थान बताए उन सभी में कुदरत की शक्ति सर्दतर स्पंदनशील है। वही दिव्य शक्ति है, वही परमात्मा की शक्ति है।

आप उन शक्ति केन्द्रों के प्रति सजग होकर उसे विशेष रूप से कार्यावित कर सकते हैं और अभीष्ट परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। परंतु वह कब होगा ? जब आप स्थूल के आधार से सूक्ष्म स्थान को पहले जान लें और फिर उसमें तल्लीन होकर उन्हें विशेष रूप से सक्रिय

करें।

शरीर के विविध अंगों के द्वारा उन शक्ति बिन्दुओं के स्थानों की ओर थोड़ा इशारा हो जाएगा। उन संकेतों के आधार पर आप अपना हृदय उन बिन्दुओं को अर्पण करके करो प्रारंभ ध्यान साधना का।

जिन बिन्दुओं को एक फिजीशियन, एक सर्जन अथवा एक वैज्ञानिक नहीं जान सकता अथवा शरीर के अंगों को खोलकर भी जिसे नहीं देख सकता उसे एक अनपढ़, सरल और ध्यान को समर्पित साधारण साधक साधना के माध्यम से सहज ही अनुभव करने लगेगा।

इस अनुभव के लिए ध्यान शास्त्रों ने बड़ी सरल विधि बताई है। जिसे आप हंसते खेलते उलपब्ध हो सकते हो।

गुरु गोरखनाथ कोई पागल नहीं थे कि जिन्होंने कहा – “हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्।” गोरख कहते हैं कि हंसते खेलते ध्यान को पा लो। ध्यान कोई चिंता या उदासीनता का विषय नहीं है। केवल प्रसन्नता से ही ध्यान को पाया जाता है और ध्यान में उतरा जाता है। तथा ध्यान का आत्यंतिक परिणाम भी शांति और प्रसन्नता ही है।

ध्यान भले रहस्यमय दिखाइ दे। ध्यान की अनुभूतियाँ रहस्यपूर्ण हैं भी परंतु इसके लिए चिंता लेने की जरूरत नहीं है। एक बात याद रखिए पूरा ब्रह्मांड ईश्वर का एक खेल है। आप भी ध्यान को एक खेल की तरह सहज, स्वाभाविक और सफल बना सकते हैं।

परंतु ध्यान में तर्कबुद्धि को, मन को विक्षेप नहीं करने देना।

कुछ लोग ध्यानियों को कभी कभी नोन्सेन्स कहते हैं। लोग क्या कहेंगे नोनसेन्स ? मैं कहती हूँ कि नोन-सेन्स स्टेट के बिना ध्यान में प्रवेश ही नहीं हो पाएगा। बन जाओ नोन-सेन्स। यहाँ सेन्स का अर्थ मैं करती हूँ बुद्धि। ध्यान में बुद्धि की जरूरत ही नहीं है। बुद्धि को हर बात में दखल देने की आदत होती है। ध्यान बुद्धि के उस पार की घटना है। परंतु पहले होने दो स्वयं को नोन-सेन्स। ताकि बुद्धि बीच में टांग अड़ाकर, न्यायधीश बनकर, आपके लिए कानून न बना दे। बुद्धि के कोई भी नियम ध्यान में काम के नहीं हैं। सेन्स की जरूरत दुनिया के चालाक लोगों के पल्ले पड़ने की वजह से होती है। परमात्मा को, प्रसन्नता को, शांति को, होश को, क्या करनी है आपकी सेन्स ! वे तो स्वयं निर्दोष और आनंदमयी हैं।

तो प्यारे साधको !

ध्यान के लिए स्वयं को होने दो नोन-सेन्स। फिर आप चले जाएंगे बीयोन्ड सेन्स। समाधि में उतरने के बाद तो फिजीकल सेन्स भी गिर जाएगी। मैं रही हूँ ऐसे ध्यान सिद्धों के सानिध्य में रही हूँ कि जिसके शरीर पर कीड़ी मकोड़े चढ़कर उन्हें काट रहे हों फिर भी वे स्थिर रहते थे अपनी समाधि में और निर्लेप दिखता था उनका चेहरा।

प्यारे साधको !

मैं कहती हूँ कि ध्यान से जीवन का माधुर्य बढ़ता है, चातुर्य नहीं। तो बुद्धि और चातुर्य की चिंता छोड़ो। अगर आप ध्यान में उतरना चाहते हो तो ज्यादा चतुर लोगों से दूर रहना।

अब जरा ध्यान से समझिए विधि को। इस विधि में शरीर के सूक्ष्म बारह शक्ति स्थान में अ से अः तक के वर्णों की भावना करनी है। यहाँ प्रथम स्थान अर्थात् जन्माग्रह से लेकर व्यापिनी तक क्रमशः अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः वर्णों के स्थान की भावना करनी है। केवल भावना ही नहीं परंतु उस अ से अः तक की आकृति के भाव के साथ उन स्वरों का उच्चारण भी करना है।

आपको प्रश्न उठेगा इससे क्या होगा ? मैं समझा रही हूँ ध्यान से सुनो।

मनुष्य देह में द्वादश स्थानों में कुदरती शक्ति विशेष रूप से स्पंदित हो रही है। स्पंदनकारिका नाम का ग्रंथ तो स्पंदन को ही ब्रह्मांड की शक्ति मानता है। जब आप वर्णोच्चार करते हैं तब उसके अनुसार कुछ खास बिंदुओं पर वर्ण स्पंदित होने की वजह से चोट पड़ती है। वह स्पंदन, वर्णोच्चार और चोट का पड़ना ये तीनों क्रियाएं ध्यान तंत्र मार्ग में परस्पर की पूरक बन जाती हैं। इन तीनों घटनाओं में से ही घटना घटती है।

वह चोट इतनी सूक्ष्म और सहज है कि आपको पता भी नहीं चलेगा कि वे शक्तिबिन्दु कब विशेषरूप से सक्रिय हो गए।

आपके पास केवल अनुभूति रहेगी। बस इतना ही काफी है। फिर मेरी जरूरत नहीं। मेरा काम है विधि तक ले जाना। विधि में प्रेरित करना, विधि के लिए मार्गदर्शन कर देना। आपका मन अगर मेरे लिए धन्यवाद से भर जाए, ध्यान में मिली हुई प्राप्ति की वजह से, तो ठीक है। शायद आप अपनी अवस्था में उस हद तक डूब जाएं कि धन्यवाद देने के लिए भी कोई न बचे। तो और अच्छा है।

मैं आपको एक ऐसी अवस्था तक पहुंचाना चाहती हूँ कि –

“यहाँ मैं नहीं, यहाँ तू नहीं

यहाँ सिर्फ चेतना बहती है।”

हाँ, लाखों में से कोई एक समझ पाएगा मेरी बात को। उन लाखों में से एक होने का सौभाग्य आपका भी हो सकता है। और उस अज्ञात संभावना को जन्म देने के लिए मैं बोल रही हूँ।

एक दूसरी बात का ध्यान रखें। आप जब इस विधि में उतर रहे हों तब कोई समानधर्मा पास बैठकर समान विधि में उतर रहा हो तो कोई हर्ज नहीं। परंतु अन्य किसीके सामने इस विधि में मत उतरना क्योंकि केवल आपको ऐसा करते हुए देखने वाले लोग आपको पागल समझेंगे। और विक्षिप्त होंगे।

आपके मन में भी प्रश्न उठ सकता है कि अ.. आ... इ... इससे क्या होगा ? ऐसा प्रश्न इसलिए उठ सकता है कि आप बोलते तो हो बचपन से परंतु स्वरों की सूक्ष्मता के प्रति कभी ध्यान नहीं दिया है।

ज्यादातर लोग वाणी के प्रति अजाग्रत हैं। वह केवल बातचीत करना जानते हैं। वर्णोच्चार की कला तो बहुत कम लोगों के पास होती है। बोलने की कला का अर्थ यह नहीं है कि अच्छे अच्छे शब्द बोलकर लोगों को प्रभावित करो। बोलने की कला का अर्थ है आपके शब्द भी दूसरे को समाधि तक पहुंचा दे।

बोलने की कला का अर्थ है, वाणी का सम्यक उपयोग। समय के अनुसार शब्द ध्वनियों पर योग्य वजन देने की कला आपको सफलता दिला सकती है। यह कला तभी आपको हस्तगत होगी जब आप पहले शब्द को शब्द नहीं परंतु शब्द ब्रह्म है ऐसा स्वीकार करना सीखें।

उस स्वीकार से आप उसके हो जाएंगे। उसकी आराधना करने लगेंगे। तब आपमें बोध जगेगा कि शब्द का क्या असर होता है ? आपकी भाषा को पहले एकांत में आपके ही साथ इस्तेमाल करो। इस ढंग से करो कि जैसे आप दूसरे के साथ कर रहे हो। इस प्रयोग से तुरंत ही आपको समझ आ जाएगा कि वाणी का असर कैसा होता है ?

एक दूसरी बात भी ध्यान में रहे। कि प्रत्येक शब्द वर्णों के जोड़ से बनता है। एक से ज्यादा अक्षर मिलकर शब्द और एक से ज्यादा शब्द ध्वनित होकर वाणी बनते हैं। वर्ण को अक्षर क्यों कहते हैं पता है ?

अ-क्षर अर्थात् जिसका कभी नाश नहीं होता। आप जो कुछ भी बोलते हैं वह ब्रह्मांड में तरंगों के रूप में घूमता रहता है। अगर ऐसी व्यवस्था नहीं होती तो टेलीग्राम की खोज ही नहीं होती। आप बोलते हो अमेरिका में, ब्रह्माण में फैली हुई उन ध्वनि तरंगों को एक सूक्ष्म यंत्र पकड़ लेता है और इतना शीघ्र पकड़ता है कि लगता है कि उसी क्षण भारत में सुनाई दे रहा है, फोन के द्वारा। वास्तव में बोलने वाले और सुनने वाले के बीच में कुछ क्षणों का अंतराल तो है। परंतु वह इतना सूक्ष्म है कि आपको महसूस नहीं होता। उसे आप क्षणांश कह सकते हैं। यह सिद्ध करता है कि सारे शब्द तरंग अस्तित्व में रहते हैं इस ब्रह्मांड में।

आधुनिक विज्ञान ने कुछ सूक्ष्म यंत्रों के द्वारा ब्रह्मांड में से काफी आवाजें पकड़ ली हैं। संभव है कि मनुष्य खोज करते करते राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर की वाणी को भी पकड़ने में सफल हो जाये।

हमारी समग्र शब्द ध्वनियाँ सूक्ष्म रूप से गूंज रही हैं अस्तित्व में। वह कभी नष्ट नहीं होतीं, वे अविनाशी हैं इसलिए तो उसे अक्षर कहा, इसलिए तो शब्द को ब्रह्म कहा। एक दिन वैज्ञानिकों की पकड़ में वे ध्वनियाँ भी आ सकती हैं जो कृष्ण ने अर्जुन को गीता के रूप में सुनाई थीं। ब्रह्म कभी मरता नहीं है।

इतना ही नहीं परंतु शब्द प्रभावक है ब्रह्म जितना ही। हाँ, सब निर्भर है कि आप कैसे शब्द बोलते हो ?

वर्णों के दो विभाग हैं, स्वर और व्यंजन और भाषा का कमाल यह है कि किसी भी व्यंजन को आप स्वर के बिना नहीं बोल सकते। स्वर के बिना व्यंजन पंगु है, अधूरा है, अपाहिज है। स्वर के आधार बिना व्यंजन खड़ा नहीं रह सकता।

क, ख, ग ... आदि व्यंजन हैं। अ, आ, इ ... आदि स्वर हैं। स्वर शाश्वत है और शब्द को शाश्वतता प्रदान करता है। स्वर की महिमा को सबसे ज्यादा योगी, फिर संगीतकार और फिर आध्यात्मिक वक्ता समझ सकता है।

भाषा विज्ञान को लेकर जितना शोधकार्य भारत में हुआ उतना अन्य राष्ट्रों में होना शायद असंभव है। आपको पता होगा कि संस्कृत भाषा कम्प्यूटर के लिए सर्वोत्तम और पूर्ण वैज्ञानिक भाषा के रूप में खरी उतरी है।

कम्प्यूटर की खोज अभी अभी .... हमारी नज़रों के सामने हुई। परंतु संस्कृत भाषा तो वेद से भी पुरानी है। वह देव भाषा है। कहा जाता है कि वह देवताओं की भाषा है। देवता का अर्थ है जो प्रथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बाहर निकल गया। जिसने नाश्वत को खो दिया और शाश्वत को पा लिया, असत्य से मुक्त हो गए और सत्य को पा लिया।

पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बाहर निकलने का अर्थ है कि उसके लिए कोई पार्थिव आकर्षण न बचा हो; ऐसे लोग बोला करते थे

देवभाषा। जो सर्वोत्तम है। आज वह इसलिए कठिन लगती है कि मनुष्य उस भाषा से दूर जाता जा रहा है। हमारा संपर्क टूट रहा है इस भाषा से।

संस्कृत भाषा भले कठिन है परंतु बड़ी ही क्षमतावान भाषा है। संस्कृत भाषा ज्यादा से ज्यादा चोट पहुंचा सकती है मनुष्य के सूक्ष्म शक्ति केन्द्रों पर।

संस्कृत का उच्चारण बाहर के माहौल को भी ऊर्जा से भर देता है। आपने शक्रादय स्तुति या गणपति अथर्वशीर्ष या महिम्न स्तोत्र पढ़ा है कभी? ब्राह्मणों को उच्च स्वर से चंडी पाठ करते हुए सुना है कभी?

संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसे सुनने-पढ़ने से किसी भी हृदयवान व्यक्ति, कोई भी प्राणवान व्यक्ति रोमांचित हो उठता है। उसकी ध्वनियों से रोम रोम ऊर्जान्वित हो जाता है।

मैं जब भी सुनती हूँ दुर्गा सप्तशती के श्लोकों को तो आंखों में से आंसु बहने लगते हैं। मैं कहती हूँ कि भले आप शब्दों के अर्थों को न समझते हो। फिर भी उन ध्वनियों को सुनते ही लगता है कि तेजी से बहने लगा। रोम रोम में शक्ति संचार का अनुभव होने लगता है।

ऐसा क्यों? ये भाषा का प्रभाव है। उसमें स्वर और व्यंजनों के तानेबाने ऐसे वैज्ञानिक ढंग से बुने गए हैं कि स्थूल से ज्यादा असर सूक्ष्म को पहुंचती है।

भारत के प्राचीन भाषाविद् ऋषि ही थे, योगी थे, ध्यानी थे, ज्ञानी थे, पूर्ण आध्यात्मिक थे वे लोग। उनकी परमचेतना से इस भाषा का आविष्कार हुआ है। इसलिए तो वेदों की अपार महिमा है। वेद इसलिए अपौरुषेय कहे गए हैं कि उसका आविष्कार बुद्धि या मन की बदौलत नहीं है। परंतु वे परम चेतना में से उतरा हुआ प्रसाद हैं।

मनुष्य की बुद्धि सीमित है परंतु चेतना असीम है। जरूरत है उस असीम चेतना को जगाने की, उसका अनुभव करने की। जिसने उस चेतना को पूरा पूरा जगा लिया। वह सिद्ध बन गया, ऋषि हो गया, अवतार बन गया, भगवान बन गया।

ऐसे प्रबुद्ध पुरुषों के द्वारा मनुष्य की पहुंच और सोच के पार की कुछ घटनाएं घटती हैं। जिसे साधारण जन चमत्कार कहते हैं। वेद एक ऐसा ही चमत्कार है। वह आयास प्रयास से नहीं लिखा गया। किसी की परम चेतना में से प्रगट हुए हैं इसीलिए अपौरुषेय हैं।

अ से अः तक के वर्ण (स्वर) मनुष्य के भीतर के शक्तिबिम्बों को जगाने के लिए उपयोगी हैं। योगियों और सिद्धों ने इसका अनुभव किया और मनुष्य के कल्याण के लिए उन स्वरों का ध्यान विधि में समावेश कर लिया।

ऐसे तो अनेक मंत्र और वर्णों पर ध्यान विधियाँ हैं परंतु यहाँ आपको सिर्फ अ से लेकर अः तक की बात ही समझनी है। प्रिय साधको!

यह भी इतना ही सत्य है कि जब मनुष्य ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है फिर भाषा गौण बन जाती है। परंतु वह भी उतना ही बड़ा सत्य है कि ज्ञान का प्यासा मनुष्य खास प्रकार की भाषा से मदद पा सकता है।

शब्दों की खास प्रकार की ध्वनियाँ उनमें से उत्पन्न होते हुए स्पंदन और स्पंदन के प्रभाव से शरीर के खास बिन्दुओं पर पड़ती चोट मनुष्य के रसायण को बदलने में मदद कर सकती है।

कभी कभी भाषा का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है और कभी कभी मनुष्य की प्रबुद्धता के प्रभाव से साधारण भाषा भी बड़ी अर्थ पूर्ण बन जाती है। कबीर, जायसी, तुलसी इत्यादी की वाणी आखिर क्या है?

खैर! मुझे बात करनी है ध्यान विधि की परंतु विधियों में उतरने के लिए आप तैयार है इसलिए मुझे इससे संलग्न और बातें भी करनी हैं। ताकि आप अ, आ, इ ... की महिमा समझ पाओ।

स्वरों की बात आएगी तो व्यंजन की और भाषा विज्ञान की बात भी जरूरी हो जाती है। कभी कभी तो अनिवार्य हो जाती हैं कुछ बातें इसलिए मुझे बोलना पड़ता है।

शरीर के सूक्ष्म द्वादश शक्ति स्थानों में से एक है तालूमूल अर्थात् सारे स्थान एक माला की भांति हैं। प्राण की एक ही डोर में ये सारे केन्द्र थोड़े थोड़े अंतरों में स्थित हैं। वेद इस शक्ति को द्वादशअंगुलभर कहते हैं। वेद का ऋषि परमात्मा का नाप बताता है। वैसे तो वह अपार है परंतु अनुभव से यह परम सत्य है। उन बारह अंगुल विस्तार में ही परमात्मा की प्राणशक्ति बहती है।

थोड़े थोड़े अंतरों में अथवा आप कह सकते हैं कि एक एक अंगुलि के अंतर से कुदरत के द्वारा बिठाए गए इन स्थानों में से किसी एक स्थान पर पड़ती हुई चोट अन्य को भी कुछ हद तक असर पहुंचाती है।

जैसे कि शरीर के किसी भी भाग में चोट लगती है अथवा शरीर के किसी भी भाग पर बिजली का झटका लगता है तो पूरे शरीर को झकझोर देता है। भाषा का भी ऐसा ही है।



एक शब्द पूरे मनुष्य को हिला सकता है। नकारात्मक शब्द मनुष्य को नकार से भर देता है। और हकारात्मक शब्द मनुष्य को विधायकता प्रदान करता है।

अब मूल बात की ओर आइए। भाषा विज्ञान कहता है कि चार प्रकार से शब्द का उच्चारण होता है। औष्ठ्य, दंतव्य, तालव्य और मूर्धन्य – इनमें से तालव्य शब्द के उच्चारण से तालुमूल पर प्रभाव पड़ता है। तालुमूल शरीर के बारह स्थानों में से एक है। स्वर कंठ स्थान से निकलते हैं। स्वरोच्चार के द्वारा कंठ स्थान प्रभावित होने के साथ साथ सूक्ष्म रूप से कुछ असर तालुमूल पर भी पड़ता है। इस तरह से एक स्थान पर पहुंची हुई चोट शक्ति केन्द्रों की पूरी चेनल को प्रभावित करती है। इस तरह से हर शब्द का भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है। परंतु अभी तो मुझे केवल स्वरों की बात ही करनी है।

एक विशेष धारणा और विशेष ढंग से उच्चारित संस्कृत भाषा के बारह स्वर मनुष्य के बारह शक्ति केन्द्रों को विशेष रूप से सक्रिय कर सकते हैं। इन बारह स्वरों का मनुष्य पर आध्यात्मिक प्रभाव पड़ता है, ऐसा तंत्र शास्त्र का स्पष्ट मत है। स्वयं शिव इस विधि को बता रहे हैं शक्ति को।

प्रिय साधको!

द्वादश शक्ति केन्द्रों को सम्यक रूप से सक्रिय करने के लिए यहाँ आपको अ उच्चारण के साथ जन्माग्र स्थान पर आपकी शक्ति केन्द्रित हो रही है और उस स्थान पर अ की आकृति है ऐसे तीव्र भाव के साथ आगे बढ़ते हुए अन्य केन्द्रों में क्रमानुसार आ, इ, ई... आदि स्वरों के उच्चारण और आकृति दर्शन के साथ एक के बाद एक शक्ति केन्द्र की ओर उर्ध्वीकरण करना है।

कुछ शक्ति स्थानों का कुछ स्थूल परिचय तो आपको मिल जाता है। जैसे कि नाभि, कंठ, तालुमूल... तो स्वाभाविक है कि उन बिन्दुओं पर चित्त को एकाग्र करना आपके लिए कठिन नहीं होगा। परंतु कुछ बिन्दु जैसे कि कंद, ब्रह्मरंध्र, शक्ति, व्यापिनी आदि से यदि आप अपरिचित हैं तो कैसे धारणा लगाएंगे उन बिन्दुओं पर?

प्यारे साधको!

पहले बारह स्थानों को जान लीजिए ध्यान सिद्ध गुरु के सानिध्य में बैठकर। या फिर प्रबुद्ध पुरुषों की वाणी के द्वारा।

वैसे तो सब बिन्दु क्रमानुसार हैं। फिर भी शास्त्र और गुरु भी केवल इशारा ही कर पाएंगे उन केन्द्रों की ओर क्योंकि उन स्थानों को इन्द्रियों से छूकर नहीं बताया जा सकता।

उन बारह स्थानों में से प्रथम स्थान है जन्माग्र। जन्माग्र का अर्थ मैं करती हूँ, जो स्थान मनुष्य को जन्म देने के लिए अग्रिम है और आवागमन के लिए भी। उस बिंदु से आरंभ करके ध्यान को एक के बाद एक बारह स्वरों के उच्चारण के बाद स्थिर करते जाओ।

वैसे भी उन स्थानों के प्रति इशारा ही हो सकता है। स्थूल आँख से उसे देखना संभव नहीं है। साधक को साधना करते करते ही उन बिन्दुओं का परिचय होने लगता है।

ध्यान संगीत जैसा है। संगीत में जितने डूबते जाओगे उतने ही स्वर और धुन आपके करीब आते जाएंगे। एक हद तक संगीत को साद लेने के बाद मेरा अनुभव है कि कंपोजिशन बनाने के लिए ज्यादा आयास प्रयास कराना नहीं पड़ता है। शब्दों के अनुसार धुनें अपनेआप बनने लगती हैं।

आनंद बढ़ने लगता है। इस ध्यान विधि में और संगीत में फर्क इतना है कि वाज्यंत्र और गीत का संगीत बाहर सुनाई देता है और चमत्कार भीतर घटता है। जबकि ध्यान का संगीत भीतर घटता है और भीतर ही सुनाई देता है। आनंद भीतर फैलता है और उसकी खुशबू बाहर फैलती है भिन्न भिन्न रूप से।

अब ध्यान से सुनिए। इस विधि में एक साथ तीन घटनाएं घटेंगी। एक – आपका चित्त भटकना बंद करके अंतरमुखी होकर देखने लगेगा भीतर के शक्तिकेन्द्रों के बिन्दुओं पर वर्ण की आकृति। समग्र चेतना जब एक खास स्थान पर केन्द्रित होगी तो स्वाभाविक है कि उस स्थान को जाग्रत होने में, सक्रिय होने में मदद मिल जाएगी। अपनी ऊर्जा के द्वारा ही आप अपने केन्द्रों को पुनः प्राणवान बना पाएंगे।

दूसरी ओर वाणी से उच्चारण होगा स्वर का। तो बची खुची ऊर्जा उच्चारण में लग जाएगी और मन विलीन हो जाएगा उच्चारण की प्रक्रिया के साथ। वे क्षण जैसे जैसे लंबे होते जाएंगे, वैसे वैसे तीसरी ओर स्वरोच्चार ज्यादा सुरीला, गहन और स्थिर होते होते आपके भीतर के उन स्वरों से संलग्न केन्द्र को जगाने वाले रसायण उत्पन्न करने लगेंगे।

भले धीरे धीरे परंतु एक साथ घटित होती इन तीनों प्रक्रियाओं से स्थूल और बाहरी, जो कुछ भी है, वह छूटता जाएगा और प्रमाणिक अभ्यास के बाद साधक को अचानक पता चलेगा कि मेरे भीतर शक्तिरूप और वाणीरूप जो कुछ भी स्पंदित हो रहा है वह परमात्मा की शक्ति ही है।

इस प्रकार अ से अः के उच्चार के साथ केन्द्रों में से क्रमशः गुजरने के बाद और प्रक्रिया ध्यान के रूप में विकसित होने के साथ साधक स्वयं उस स्पंदन शक्ति के परिणाम स्वरूप शिवरूप बन जाएगा।

साधक जब पूर्ण धैर्य और समग्रता के साथ निरंतर एक एक करके सारे केन्द्रों को सक्रिय कर लेता है और उसके आध्यात्मिक विकास में जब सभी केन्द्रों के सुप्रवृत्त होने के कारण साधक को अपनी ओर से ही महान सहायता मिलने लगती है। साधक सत्यज्ञान के तेज से भर जाता है। जिसे कोई आत्मसाक्षात्कार, कोई महामुक्ति या कोई समाधि के क्षण कहते हैं।

परंतु याद रहे विशुद्ध आसन पर बैठकर एक एक स्वर की सहायता से एक एक केन्द्र पर पूरा पूरा ध्यान दो, पूरा पूरा समय दो प्रत्येक केन्द्र को। सुरीलेपन से उच्चारण करने का प्रयास करो। सुरीलेपन और बेसुरेपन को समझो कोई संगीतज्ञ ध्यानगुरु के चरण में बैठकर।

इस विधि में दीर्घ स्वरोच्चारों के कारण सहजता से ही कुम्भक हो जाएगा। बिना आयास प्रयास से ही प्राणायाम सम्पन्न होगा।

इस विधि से कम से कम छत्तीस बार और ज्यादा से ज्यादा एकसौ चुम्बालीस बार गुजरो।

जन्माग्रह से लेकर व्यापिनी शक्ति तक अ से अः तक की भावना और उच्चारण एकाग्र चित्त से करो। चौबीस दिन में आपको पता चल जाएगा कि आपके भीतर बहुत कुछ बदल रहा है। कुछ पुराना खत्म हो रहा है और नया जन्म ले रहा है।

विधि की चरम सीमा में संभव है कि साधारण साधक घबरा जाए क्योंकि जन्म-मृत्यु की प्रक्रिया साथ साथ घट रही होती है। खुद में जो पुराना है वह खत्म होगा तो बाहर का भी बहुत कुछ छूटने लगेगा। सांसारिक तदात्म्य कम होने की वजह से कभी कभी साधक डर जाता है।

साधक अगर नाहिम्मत है तो विधि छोड़ भी देता है क्योंकि नवसर्जन के पहले के प्रलय से, विसर्जन से वह घबराता है।

परंतु मैं कहती हूँ कि होने दो जो होता है। जो भी निरर्थक है वह भले भस्मीभूत हो जाए। आओ नए प्रकाश में। उतरो अपने भीतर, कर लो विराट का दर्शन। कृष्ण के विराट रूप का दर्शन करके एक बार अर्जुन भी घबरा गया था जो कृष्ण के सतत् सानिध्य में रहने वाला था। हो सकता है कि आप भी घबरा जाओ, परंतु डरो नहीं वह घबराहट ही आपको निर्भय बनाएगी। वह साधारण घबराहट नहीं है। वो चैतन्य के आवरण में से बाहर आने का क्षण है। डूबे रहो उस महासिद्धि के महासागर में।

## धरणा - ३०

# भ्रूमध्य बिन्दु भेदन ध्यान

प्रिय साधको!

ध्यान मार्ग में एक ही केन्द्र को जाग्रत करने के लिए भिन्न भिन्न विधियाँ बताई गई हैं। शरीर के वे महत्वपूर्ण केन्द्र जीवनरक्षा का काम तो कर ही रहे हैं परंतु उनकी अपार शक्ति से अज्ञात मनुष्य, गंगा के तट पर बैठा हुआ भी प्यासा रह जाता है।

संसार सागर में डुबकियां लेते लेते मनुष्य ज्यादातर तो केवल खारे स्वाद से ही परिचित हुआ है। केवल खारेपन को जानने वाले मनुष्य को पता नहीं है कि भीतर कितनी मिठास, कितना आनंद, कितनी प्रसन्नता, कितनी शांति और कितना ज्ञान भरा है।

बेचारा अंधे के भांति जीए जाता है। सूर्य तो है परंतु आँख नहीं है। मुझे फिर से एक बार काम करना है दृष्टिहीन को दृष्टि देने का। जिससे वह भीतर के प्रकाश को पा ले।

ध्यान मनुष्य को एक दिव्य दृष्टि देता है भीतर के प्रकाश का दर्शन करने की, जिसे मैं ज्ञानोदय कहती हूँ। सूर्योदय बाहर होता है ज्ञानोदय भीतर। उसे हम परम भाग्योदय भी कह सकते हैं। मैं कहूँगी कि मनुष्य के जीवन में जिस क्षण ज्ञान का सूरज उग निकले वही क्षण भाग्योदय का क्षण है। ज्ञानोदय बिना का भाग्योदय धन, संपत्ति, प्रतिष्ठा आदि होने पर भी अधूरा है, इस बात को याद रखना। ध्यान पथ में और योग शास्त्र में भ्रूमध्य बिन्दु पर बहुत जोर दिया गया है। उस बिन्दु को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। जिसे आज्ञा चक्र भी कहते हैं। वह शिव का अर्थात् कल्याणकारी पुरुष का तीसरा नेत्र है।

उस नेत्र को अग्निनेत्र भी कहते हैं क्योंकि वह नेत्र खुलते ही मनुष्य के जीवन में जो कुछ भी अर्थहीन है वह ज्ञानाग्नि में जल कर भस्म हो जाता है।

परंतु जन्म के बाद केवल बहिर्मुखी यात्रा से अभ्यस्त होकर मनुष्य बिसर गया है अपने तीसरे नेत्र की शक्ति को। उस प्रकाश को, उस आग को, उस ज्ञान को, शिवत्व के उस द्वार को।

शिव की मूर्ति या चित्र आपने अवश्य देखा होगा। उसमें तीसरा नेत्र दिखाया जाता है। परंतु मनुष्य की किसी फोटो में ऐसा क्यों

नहीं ? क्योंकि मनुष्य ने सदियों से इस नेत्र से काम लेना बंद कर दिया है।

वह नेत्र भीतर कार्यान्वित होता है। बाहर केवल उसका परिणाम दिखाई देता है। वह एक गुप्त नेत्र है। परंतु फिर वह गुप्त ही रह गया हमेशा हमेशा के लिए। इतना ही नहीं परंतु अपने ही खजाने को अपने ही घर की भूमि में गाड़ देने के बाद मनुष्य उस स्थान को भूल जाए, इसी तरह से इस नेत्र का विस्मरण हो गया। कोई बुद्ध, कोई महावीर ने खोल लिया उस नेत्र को। परंतु समग्र मनुष्य जाति सजग नहीं हुई है इस नेत्र के लिए।

हजारों हजारों साल तक मनुष्य ने उसे भुला दिया। इसकी वजह से फिर उस नेत्र को जगाने की वृत्ति भी धीरे धीरे रंग सूत्रों में से लुप्त होती गई। लाखों में से एकाद अपवाद रूप उस नेत्र को खोल लेता है और भेद जान लेता है। वह चुप हो जाता है, संसार से मुक्त हो जाता है, संन्यास ग्रहण कर लेता है। तो जीन्स में कैसे बढ़ेगा यह भाव ? कुछ बच गए इस सत्य का अनुभव लेने वाले वे कुछ संकेत और प्रेरणा देकर चले गए।

उनकी प्रेरणा की वजह से ध्यान के कुछ शास्त्र बच गए। कुछ विधियाँ बच गईं। मेरे जैसे कोई ध्यान में प्रवृत्त और समर्पित हो गए उस मार्ग को और ध्यान परंपरा को कायम रखने के लिए पुरुषार्थ करते रहे। उस पुरुषार्थ की वजह से लोग आज्ञा चक्र का शारीरिक पता-ठिकाना जानते हैं। उसकी संभावनाएं जानते हैं। परंतु केवल आज्ञा चक्र के बारे में बातें करने से स्वयं को ज्ञानी नहीं समझना चाहिए। साधना में उतर जाओ।

संसार में रहते हुए, संसार को भुगतते हुए, संसार के पार हो जाओ। कुछ तथाकथित साधुओं को मेरी यह बात गले में अटक जाएगी। परंतु मैं सत्य कह रही हूँ। संसारी लोग जब साधना में उतरकर जब ध्यानी संतान समाज को देंगे तभी फिर से आज्ञा चक्र के प्रति जाग्रति बहने लगेगी मनुष्य के रक्त में।

शिव की कथा कौन नहीं जानता है ? शिव ने तीसरा नेत्र खोलकर कामनाओं को भस्म भी किया और बाद में संसार में उतरकर कार्तिकेय और गणेश जैसे तांत्रिक और सिद्ध संतान भी जगत को दी। ये कथा क्या प्रेरणा देती है समाज को ? जरा सोचना। आज्ञा चक्र सक्रिय होने से मनुष्य का काम, क्रोध, लोभ विसर्जित होने लगता है। परंतु पहले इस विधि को समझना पड़ेगा। उसमें से गुजरना पड़ेगा।

रोटी रोटी रटने से भूखा पेट कभी नहीं भरता। क्षुधा की तृप्ति के लिए रोटी पकानी पड़ती है, खानी पड़ती है, और पचानी पड़ती है। वैसे ही आज्ञा चक्र की बातें करने से कुछ नहीं होगा।

शारीरिक रूप से उसका स्थान जान लेने से ज्ञानोपलब्धि नहीं हो जाती। उसे कार्यान्वित करने के लिए साधना करनी पड़ती है। विधि को समर्पित होना पड़ता है। अपार धैर्य और अविरत अभ्यास एकमात्र विकल्प है।

प्रिय साधको !

तीसरे नेत्र को सक्रिय करने के लिए ध्यान शास्त्र में अनेक विधियाँ हैं। उनमें से एक विधि है प्राणशक्ति का उर्ध्वीकरण करके उस प्राणशक्ति के द्वारा एक के बाद एक चक्रों का भेदन करते हुए तीसरे नेत्र पर सूक्ष्म चोट पहुंचाकर उसे सक्रिय करना। करीब करीब सभी ध्यान शाखाएं आज्ञा चक्र को जगाने पर जोर देती हैं। ऐसा क्यों ? क्योंकि यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण केन्द्र है। यह केन्द्र सक्रिय हो जाए तो मनुष्य के मस्तिष्क का सम्यक नियमन होने लगता है। मन की कई गलत और निरर्थक गतिविधियों को यह चक्र रोक सकता है। उचित निर्णय लेने में सहायता करता है। कल्याणकारी भावों को कार्यरत होने के लिए आदेश देता है और अकल्याणकारी मनोवृत्तियों को नष्ट कर देता है। जिसका आज्ञा चक्र जाग्रत हो गया हो ऐसे साधक के सहज विचार भी सफल बन जाते हैं। संकल्प सिद्धि उसके लिए स्वाभाविक होती है। किसी विशेष आयास प्रयास बिना उसके कार्य सरल होने लगते हैं। ऐसे ध्यानी का लोग अनुशीलन करने लगते हैं। सुख दुख में स्थिरत्व यह उसका गुण होता है और वाणी आदेशात्मक होती है।

साधना मार्ग में शास्त्रीय भाषा में ऐसा कहा जाता है कि जो साधक आज्ञा चक्र को भेद देता है वह शिवरूप बन जाता है। परंतु ज्यादातर लोग तो इस नेत्र को रेल्वे की सीट की तरह शिव के लिए ही आरक्षित रखते हैं।

मनुष्य को जितना रस बाहर की दुनिया में है इससे हजारवें भाग का रस भी स्वयं में नहीं है। समझ में नहीं आता है कि यह कैसी मूढ़ता है। मनुष्य जितना दूसरे के बारे में सोचता है उससे दसवें भाग का भी अपने बारे में नहीं सोचता।

अपने बारे में अर्थात् अपने स्वार्थ के संदर्भ में। स्वार्थ के संदर्भ में तो गधा भी सोच सकता है। सुखा और हरा घास पड़ा होगा तो गधा हरा ही खाएगा। स्वार्थ कोई विशेष गुण नहीं है। विशेष गुण है परमार्थ।

अपने बारे में सोचने का अर्थ है आध्यात्मिक कल्याण का विचार करना। आत्मचिंतन करना, सत्यान्वेशी बनना, सही बातों का मनन और चिंतन करना। सुख दुख में स्थिरत्व को विकसित करना।

परंतु मूर्ख लोग दूसरों का ध्यान ज्यादा रखते हैं। स्वयं के बारे में ज़िन्दगी भर बेध्यान रह जाते हैं। यह बेध्यान अवस्था उसे बार बार संसार चक्र में भटकाती है।

मैं कहती हूँ कि दुनियादारी में रस लेने की जगह स्वयं में रस लेना सीखो। दुन्यवी रसों में तो कड़वा स्वाद भी चखना पड़ेगा परंतु आत्मरस अमृत से भी मीठा है। मैं मेरे अनुभव की बात कर रही हूँ। मैं चाहती हूँ कि मेरा अनुभव आपका अनुभव बने। जब ऐसा होगा तब मेरा बोलना और शास्त्र रचना करना दोनों सार्थक हो जाएगा।

क्योंकि यह सब बोलकर और ध्यान और योग के शास्त्र रचकर मुझे कोई भगवान को खुश नहीं करना है। ना ही कोई नियम थोपने हैं आपके ऊपर। नहीं कोई नया संप्रदाय चलाना है। नहीं धर्म के नाम पर मनुष्यता को टुकड़े में बांटना है।

मेरे भगवान तो रचना करते करते ही परम प्रसन्न हो गए। मैं जो कुछ भी कर रही हूँ यह करते वक्त, लिखते वक्त, चिंतन करते वक्त और बोलते वक्त भी भगवान प्रसन्न हो रहे हैं। परंतु मैं चाहती हूँ कि मेरे शब्द के माध्यम से मेरे साथ साथ आपके परमात्मा भी प्रसन्न हो उठें। तब तो मेरा आध्यात्मिक पुरुषार्थ सार्थक होगा।

हाँ, एक बात और याद रखिए। आज्ञा चक्र की बातें करना और भूमध्य बिन्दु में अंगुली रखकर उसका स्थान बताना जितना आसान है, उतना ही उसको जाग्रत करना कठिन है। अच्छे अच्छे लोग अटक जाते हैं यहाँ आकर। जुनागढ में हमारी ध्यानपीठ है। आज से तीस साल पहले वहाँ स्थापना हुई ध्यानपीठ की। वह हमारा सर्वप्रथम साधना तीर्थ है। वहाँ बहुत सारे यात्री गिरनार पर्वत चढ़ने के लिए आते हैं। उनमें से ज्यादातर लोग अंबाजी की टूक तक तो पहुंच जाते हैं परंतु दत्तात्रेय की टूक जो गिरनार का सबसे ऊंचा शिखर है वहाँ तक नहीं पहुंच पाते। क्योंकि वह चढ़ान थोड़ा अजीब है। वहाँ ऊपर चढ़ने के लिए जितनी सीढ़ियाँ ऊपर चढ़नी हैं उतनी सीढ़ियाँ पहले नीचे उतरनी पड़ती हैं और फिर ऊपर चढ़नी पड़ती हैं। रास्ता ही ऐसा है। तो यात्री को दुगुना श्रम पड़ता है।

आज्ञा चक्र की यात्रा भी कुछ ऐसी ही है। कोई सीधा आज्ञा चक्र का भेदन नहीं कर सकता। अपवाद रूप किसीसे हो जाए तो वह सिद्धांत नहीं बन सकता। इसीलिए तंत्र शास्त्र ने एक ही बिन्दु भेदन के लिए भिन्न भिन्न विधियाँ बताई हैं। जो एक दूसरे से बहुत करीब लगती हैं फिर भी अलग हैं।

आज्ञा चक्र के भेदन के लिए जुनागढ के दत्त की टूक की तरह पहले घाटी में उतरना पड़ता है अर्थात् पहले मूलाधार चक्र तक साधक को उतरना पड़ता है अर्थात् प्राणशक्ति को अंतरमुखी करके निम्नतम चक्र तक उतरकर वहाँ से यात्रा का प्रारंभ करना पड़ता है। फिर लंबी निरंतर तथा दृढ़ साधना और संकल्प के द्वारा एक एक चक्र को प्राणशक्ति के द्वारा भेदते भेदते आज्ञा चक्र तक पहुंचा जा सकता है। अंत में उस तीसरे नेत्र को खोलने में साधक सफल रहता है।

ज्यादातर लोग इतनी लंबी यात्रा से थक ही जाते हैं, विचलित हो जाते हैं, अधूरी छोड़ देते हैं यात्रा। कुछ विरल अभ्यासू साधक अंत तक अडिग रहते हैं। हाँ, लाखों में कोई एक साधक कोई प्रबुद्ध और सिद्ध गुरु की कृपा से, आत्मबल से, और पूर्व के प्रभाव से कभी कभी सीधा ज्ञान चक्षु खोलने में सफल हो जाते हैं। परंतु ऐसा बार बार नहीं होता। तो हरेक के साथ तो कैसे होगा ?  
प्रिय साधको !

मनुष्य शरीर के बारह सूक्ष्म बिन्दुओं में से छः बिन्दु चक्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। जो मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र के नाम से जाने जाते हैं।

मूलाधार चक्र वास्तव में संसार चक्र का मूल आधार है। छः चक्रों में से मनुष्य का यह एक ही चक्र सक्रिय है, वह भी केवल संसार कार्य के लिए, सृष्टि कार्य आगे बढ़ाने के लिए, विषय वासना संतुष्ट करने के लिए।

मूलाधार केन्द्र की पूर्ण शक्ति का तो मनुष्य ने कभी उपयोग ही नहीं किया। योग शास्त्र ने उसी केन्द्र में कुण्डलिनी शक्ति का आधार बताया है। वह कुण्डलिनी शक्ति का जागरण ही है, आत्मसाक्षात्कार और साक्षीभाव की परमावस्था। परंतु विषय वासना में डूबा हुआ मनुष्य और संतति और संपत्ति के भूखे आदमी के लिए कुण्डलीनि एक शब्द मात्र बनकर रह जाता है जीवनभर।

मनुष्य एक महत्वपूर्ण बात को भूल ही गया है कि परमात्मा जब स्थूल में उतरते हैं तभी मूलाधार चक्र का क्षेत्र सफल होता है। परम चैतन्य के बिना तो सबकुछ निरर्थक है। चेतना के बिना तो शरीर में जो कुछ है स्थूल या सूक्ष्म वह केवल पदार्थ मात्र है।

जैसे जैसे मनुष्य मूलाधार से प्राणशक्ति को ऊपर उठाता हुआ अन्य केन्द्रों में प्रवेश करता है तभी उसे इस सत्य की प्रतीति होती है। साधक आंतरिक रूप से विकसित होने के बाद ही समझ सकता है कि शारीरिक आनंद, प्रजोत्पत्ति और वासना तुष्टी के उपरांत भी कोई आनंद है। उस आनंद का केन्द्र बिन्दु हमारे भीतर ही है कहीं बाहर नहीं। और वह भी एकाद नहीं छः छः केन्द्र हैं।

जैसे जैसे प्राणशक्ति संसार से ऊपर उठती जाएगी वैसे वैसे उस ब्रह्मानंद का अनुभव होता जाएगा। और इस अनुभव के बाद



साधक का संसार सुख भी सार्थक हो जाएगा।

परंतु बेचारा मनुष्य हाथ पग होते हुए भी अपाहिज की तरह पड़ा है एक ही स्थान पर। वह अपनी अति मानवी शक्तियों को जगा सकता है परंतु कोशिश नहीं करता।

मैंने लोगों को देखा है। लड़कियों के पीछे भागने में थकते नहीं, धन के लिए थकते नहीं, राजनेता सभा एवं आंदोलनों से थकते नहीं परंतु साधना से दूर भागते हैं। ऐसे लोगो को मैं आध्यात्मिक आलसी कहूंगी।

डरपोक हैं वे लोग जो ध्यान से भागते हैं। अपराध भाव से भरे हुए हैं ऐसे लोग जो साधना से भागते हैं। आधी रात को निडरता से भटकते हैं कुछ लोग, फिर भी मैं कहती हूँ उन्हें कायर और डरपोक। जो आँख मूंदकर, ध्यान में बैठकर खुद के अंधेरे का मुकाबला नहीं कर पाते हैं।

मनुष्य का ध्यान स्त्री, धन, सौन्दर्य, पद, प्रतिष्ठा सबके पीछे है, केवल आत्मगति के लिए वह बेध्यान हैं।

वे लोग हकीकत में मूलाधार की शारीरिक क्रिया के उपरांत ऊपर उठना ही नहीं चाहते हैं। उसका रस केवल पार्थिवता में ही है। उन्हें केवल मृत्यु लोक का ही आकर्षण है। वे पंख खोलना ही नहीं चाहते। पिंजरे में ही उन्हें सुरक्षा लगती है। उसके सामने खुला आसमान होने के बावजूद भी वे उड़ना नहीं चाहते हैं। किसी ने नहीं बांधा है उन लोगों को। अपनेआप बंधे हैं। बंधे हुए भी नहीं हैं, केवल बंधन का भ्रम है। क्या करें ऐसे लोगों का ?

केवल शरीर तक ही अटके रहने का अर्थ है आप घर के बाहर ही खड़े हैं। द्वार होते हुए भी आप भीतर जाना नहीं चाहते हैं। घर के बाहर की दरो दीवारों को देखकर ही खुश रहते हो। भीतर की शांति से बाहर का कोलाहल आपको ज्यादा रास आ गया है। ऐसे लोगों के साथ कुछ नहीं हो सकता।

प्रिय साधको !

आज्ञा चक्र के भेदन के लिए गहन साधना अनिवार्य है। लाखों में से एकाध उसे सीधा जगा पाता है। बाकी अन्य को तो क्रम के अनुसार ही विकसित होना पड़ेगा। अ-क्रम विज्ञान के लिए हर कोई नहीं है। ऐसी ध्यान विधियाँ जल्दबाजी से संपन्न नहीं होती। चंचल और धैर्यहीन मनुष्य के लिए ये विधि नहीं है। जल्दबाजी की वजह से साधक भ्रमित भी हो सकता है।

मेरे पास ध्यान शिबिर में आने वाले लोगों को देखकर कभी कभी तो मुझे हंसी आती है। कभी कभी धंधादारी लोग भी आ जाते हैं। वे अपने धंधे को बढ़ावा देने के लिए कुछ बड़ी बड़ी अच्छी अच्छी बातें जानना चाहते हैं। भारी भरकम शब्दों से वे लोग उनके पास आने वाले लोगों को प्रभावित करना चाहते हैं। उन्हें अध्ययन तो करना नहीं है। मेरी शिबिर में से यौगिक और ध्यान संबंधी शब्दावली नोट कर लेते हैं। उन्हें अपनी क्लास चलानी है। उनको आत्मरूपांतरण से कुछ लेना देना नहीं है। ना ही ध्यान में उनका कोई रस। ना ही विधियों के साथ सहृदयता। ना ही चित्त में स्थिरता।

उनमें से कुछ लोग योग ( आसन-कसरत ) के क्लास चलाते हैं, कुछ लोग माइन्ड पावर के। वे लोग ये सब कर रहे हैं मनी पावर के लिए।

खैर ! पैसे जरूरी हैं। मेरा धन से विरोध नहीं है परंतु केवल निजि स्वार्थ के लिए जो मेरे पास आते हैं वे क्लास चलाने की चिंता में या धंधा ढूँढने में और कुछ बहुत मूल्यवान चीजों को खो देते हैं।

क्योंकि उनकी सोच वहाँ तक ही सीमित रहती है कि उनका फायदा कहाँ तक है ? इस विचार के कारण वे प्रवचन के दौरान कुछ न कुछ लिख लेने की चिंता में रहते हैं। मटिरियलिस्टिक माइन्ड मटीरियल इकट्ठा करने में व्यस्त रहते हैं और अमूल्य को खो देते हैं। नोट्स तैयार करने की चिंता में सत्संग का आनंद नहीं ले पाते।

ऐसे लोगों का सुनना श्रवण-भक्ति की गरिमा कभी नहीं प्राप्त कर सकता। और ध्यान विधि के आरंभ के बाद भी उनकी सोच बंद नहीं होती। ऐसे लोग केवल एक ही प्रतीक्षा में रहते हैं कि आंखे कब खोलनी हैं ? कैसे पहुंचेंगे ऐसे लोग निर्विचार अवस्था में ?

बड़े शहरों में जोर शोर से आज माइन्ड पावर के क्लास चल पड़े। बहुत से संप्रदाय तनाव मुक्ति अभियान चलाते हैं। ऐसे क्लास और संप्रदाय चालु रहने के लिए कमजोर मन के लोग और तनावग्रस्त लोग अनिवार्य हैं। समाज में कमजोर मन के लोग और तनावग्रस्त लोग नहीं होंगे तो उन क्लासों का और संप्रदायों का अस्तित्व मिट जाएगा।

मेरी सोच दुनिया के लोगों से जरा हटकर है। लोग कहते हैं माइन्ड पावर बढ़ाओ मैं कहती हूँ आत्मबल बढ़ाओ। आत्मबल के द्वारा मन को अनुशासित करो। माइन्ड पावर को बढ़ाने की बात में मत पड़ना। मन तो पहले से ही बहुत पावरफुल है क्योंकि आपका मन हजारों हजारों वर्ष पुराना है। इस जन्म में भी आपने अपने मन को इतने सारे विषयों की खुराक दी है कि वह इतना पावरफुल हो गया कि आपका भी

उसपर कोई बस नहीं रहा।

मन कमजोर पड़ता ही नहीं है। आप कमजोर हो गए हैं। परंतु मैं कमजोर हूँ ऐसा कोई स्वीकार नहीं करता। अपनी कमजोरियाँ मनुष्य मन पर थोपता है। यह अहंकार की भाषा है। रस्सी जल जाने पर भी पैच नहीं छोड़ती।

याद रहे! आपने मन को अपना मान लिया है। यह सबसे बड़ी गलती है। और शरीर को आपका अस्तित्व और पहचान मान रहे हो। यह दूसरी गलती है। देह और मन तो केवल अति वाहक हैं। एक उपकरण हैं। आप कौन हो? इसकी आपको समझ नहीं है।

आप तो चैतन्य, शुद्ध, बुद्ध, शाश्वत और चिरंतन हो। मन के पावर को बढ़ाने की जरूरत ही नहीं है। आपको स्वयं की सही सही पहचान ही जरूरी है।

तनाव ने आपको नहीं पकड़ा है। आपको तनाव ने पकड़ लिया है। आपका दृष्टाभाव विकसित करो। सुख दुख की परिस्थिति में भीतर के केन्द्रों का सीधा संपर्क करो। मन की ठेकेदारी को हटा दो।

एक बात हमेशा स्मरण रखो कि विश्व में कोई भी व्यक्ति वस्तु और परिस्थिति कायम रहने वाली नहीं है। सुख में आनंदित हो लो। दुख में क्रोधित या निराश मत हो। सुख मिले तो उसे भोग लो परंतु हमेशा सुख ही मिलना चाहिए, ऐसी धारणा या आग्रह को छोड़ दो; हर परिस्थिति के लिए स्वयं को तैयार रखो।

चिंतन जगत को खुला रखो प्रत्येक परिस्थिति में स्थिर रहने के लिए। दुःख का सहज स्वीकार कर लो, वह भी कायम रहने वाला नहीं है।

बदलती परिस्थितियों में अगर आपने स्थिर रहना सीख लिया तो तनाव अदृश्य हो जाएगा। आप मानसिक कमजोरी का अनुभव नहीं करेंगे। जिसे आप मानसिक कमजोरी समझ रहे हो, वह आत्मशक्ति और समझ का अभाव है तथा आसक्ति का प्रभाव। इच्छाओं के द्वारा मन इतना बलवान हो गया है कि उन इच्छाओं को पूरी करने के लिए आप कमजोर पड़ रहे हो। अज्ञान और असहिष्णुता की वजह से बाहर के माहौल के साथ तालमेल मिलाने में आप कमजोर पड़ गए, मन की इच्छा के अनुसार धन प्राप्त करने में आप कमजोर पड़ गए; ये सब बातें मिलकर बन गई तनाव।

मन की गुलामी से मुक्त हो जाओ। आप पर कोई आसमान नहीं टूट पड़ा है। बदलती हुई परिस्थितियों को हम सुख-दुःख नाम देते हैं। जो कुछ भी अनुकूल है उसे मनुष्य सुख कहता है। जो प्रतिकूल है उसे दुःख। दोनों मन की दी हुई व्याख्या हैं। दोनों से मुक्त हो जाओ। सबकुछ सहज स्वीकार करना सीखो।

परिस्थितियाँ भले आपके काबू में ना हों। परंतु आप खुद पर संयम रखना सीख लो। सुख दुख में दृष्टा बने रहना, यह आत्मसंयमी मनुष्य का प्रमाण है। सुख में मदोन्मत्त हो जाना और दुख में टूट जाना यह असंयमी मनुष्य की निशानी है। मैं यह सब शास्त्रों के शब्दों को नहीं बोल रही हूँ; बरसों के अभ्यास के बाद बोल रही हूँ।

हर परिस्थितियों में सहज स्वीकार भाव और दृष्टाभाव जन्म लेगा तब कोई तनाव नहीं बचेगा और यह अवस्था ध्यान से शीघ्र ही प्राप्त होगी।

आप जब अपनी इच्छाओं को संयमित करना सीख लेंगे। अपने मन पर सम्यक अनुशासन करना सीख लेंगे तब मन की इच्छाओं को पूरा करने के लिए मस्तिष्क को निरर्थक आयोजन में नहीं उतरना पड़ेगा और ना ही शरीर को भागना पड़ेगा मन के साथ। मन की गति के सामने तो शरीर बेचारा है। तो स्वाभाविक है तनाव पैदा होना। मन के पावर को मत बढ़ाओ। उसकी गतिविधियों को देखते जाओ ध्यान के द्वारा।

आपकी ऊर्जा और शांति को ध्यान के द्वारा बचा और बढ़ाकर मस्तिष्क को थोड़ा आराम देना सीखो। फिर कोई कमजोरी महसूस नहीं होगी।

एक बार ऐसा करने में जब आप सफल हो जाएंगे तब आत्म विजयी होने का उत्सव मना पाएंगे। तब माइन्ड पावर के क्लास ज्वाइन्ट करने के या तनाव मुक्ति के अभियान में जुड़ने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

प्रिय साधको!

यह कैसा न्याय है? कि पहले तनाव खड़ा करो और फिर तनावमुक्ति अभियान में जुड़ो। फिर तनाव खड़ा करो और फिर तनावमुक्ति....। यह विष चक्र तो आपको खत्म कर देगा।

अगर आप जागे नहीं तो मन हो जाएगा रीढ़े गुनेगार की तरह।। कुछ अपराधी मानस ऐसे होते हैं कि अपराध करते हैं, जेल में जाते हैं, कुछ दिनों के बाद छूट जाते हैं, फिर गुनाह करते हैं, फिर जेल में, फिर छूटना...।

इस संसार जेल में मनुष्य भी ऐसा ही हो गया है। मैं कहती हूँ कि अपराध वृत्ति, अपराध और अपराध भाव सबसे मुक्त होकर जाग जाओ; तब कोई तनाव नहीं रहेगा।

कभी कभी सत्कर्म करने की इच्छा में से भी तनाव बढ़ता है। अपनी सात्विक इच्छाओं पर भी संयम रखो।

मैंने कई लोगो को देखा है। सुबह चार बजे उठकर पूजा पाठ में लग जाते हैं। चार पाँच घंटे तक उसका नित्यक्रम चलता है। कुछ वर्ष बाद बेटा बड़ा होता है घर में बहु आती है। पोते-पोती... संसार की झंझट बढ़ती है, घर का काम भी बढ़ता है, बहु बेटे के जीने का ढंग अलग है, माता पिता का अलग। घर में मनोव्यवस्था बिगड़ जाती है। हाथ पूजा पाठ करते रहते हैं, मन बहु-बेटे और घर में भटकता है, आग्रह पैदा होते हैं कि वे लोग जवान हैं, शक्तिशाली हैं फिर भी समय पर उठते नहीं हैं, घर की व्यवस्थाओं में ध्यान नहीं देते हैं....।

मूल में शरीर थका है, पूजा पाठ से भी थकान लगती है। घर को भी मेन्टेन करना है। आदत और स्वभाव बदल नहीं सकते। शरीर जवाब दे रहा है। चार घंटा तो पूजा करनी ही चाहिए...। पाठ पूजा से पैदा हो गया तनाव !

कुछ कथाकार मेरे पास आकर कहते हैं कि हमें मानसिक तनाव है। दुनियाँ को उपदेश देने के लिए शरीर को इतना दौड़ाया, भगाया, इतना गला खींचा कि थक गए। पैसा और नाम तो मिलता है परंतु खुद पागल जैसे हो जाते हैं। कथा में उठकर नाच नाच कर धुन गाने वाले बेचारे भक्तों को पता भी नहीं कि एक तनावग्रस्त और अर्धपागल उन्हें उपदेश कर रहा है। एक अशांत और थका हुआ मन शांति और ज्ञान की बातें कर रहा है उनके सामने।

खैर! ये सब कहने के पीछे मेरा एक ही हेतु है कि जब तक मनुष्य ध्यान में नहीं उतरेगा। तब तक स्वयं को अर्थात् अपने मन, मस्तिष्क, शरीर और ऊर्जा को सही ढंग से इस्तेमाल नहीं कर पाएगा। उसका असंयमित मन, शरीर और ऊर्जा कभी भी सम्यक कार्य नहीं कर पाएंगे और असम्यक अर्थात् अयोग्य मार्ग, अयोग्य पद्धति और अयोग्य विचार कभी योग्य सृजन या जन्म नहीं दे पाता।

याद रखो ! गलत मार्ग से सही मंजिल तक कैसे पहुंचोगे ?

ये सब विस्तार मैं क्यों कर रही हूँ ? जरा समझने की कोशिश करना ! प्रत्येक ध्यान विधि एक नई समझ और दृष्टि मांगती है। उस समझ और दृष्टि के बिना आप ध्यान विधि में उतरेंगे तो भी विधि आपकी ज्यादा मदद नहीं कर पाएगी। आप भटक जाएंगे। ध्यान फलित नहीं होगा।

योग्य दृष्टि और समझ से आप विधि में उतरने के लिए केवल उत्सुक ही नहीं होंगे परंतु विधि के लिए प्राण फूंक देंगे। आपका हृदय जब विधियों को अर्पण कर देंगे तो बहुत सारी असंभव बातें संभव हो जाएंगी।

अगर आप ध्यान में उतरकर आज्ञाचक्र को सम्यक रूप से जगा लेंगे तो उसकी अपार शक्ति आपको मदद करने लगेगी। आज्ञा चक्र जागने से आपकी बहुत सारी ऊर्जा बच सकती है। बहुत विशेष ऊर्जा उत्पन्न हो सकती है। और अनेक उलझनें अपने आप सुलझने लगेगी।

प्रिय साधको !

आपकी ऊर्जाशक्ति बहुत सारी निरर्थक बातों में व्यर्थ ही खर्च हो रही है, उसे बचाना सीखो। निरर्थक शब्द, दृश्य, क्रिया और वातावरण से उसे बचाओ। बैठ जाओ पवित्र स्थान में। प्राणशक्ति को भीतर घनीभूत करके, आँख मूंद कर तीव्र भाव करो कि आपकी प्राणशक्ति का उर्ध्वगमन हो रहा है। उस प्राणशक्ति को लगा दो पूर्ण रूप से एक के बाद एक बिन्दुओं पर (चक्रों पर) और केन्द्रित करते जाओ प्राणशक्ति को।

“ज्योति से ज्योति जले” यह सूत्र यहाँ संपूर्ण रूप से लागू होता है। आपकी ही प्राणशक्ति द्वारा आप सुषुप्त या अर्धसुषुप्त चक्रों को जाग्रत करेंगे। भीतरी शक्ति और प्रकाश बढ़ता जाएगा। विवेक का उदय होता जाएगा।

ध्यान संघर्ष नहीं है, वह तो विवेक का द्वार है। ध्यान में मन के साथ लड़ना नहीं है, सिर्फ आत्म चेतना को पूर्ण रूप से जगाना है। घर का मालिक जाग रहा है तो फिर चोर की चिंता कैसी ?

अपनी प्राणशक्ति का उर्ध्वीकरण करके, समग्रता से विधि में दत्त चित्त रहकर, निष्ठा और निरंतर अभ्यास के द्वारा बाहर फैंकी जा रही शक्ति को भीतर की ओर घनीभूत करके गहन मौन में उतरकर जगाते जाओ अनुक्रम से एक एक केन्द्र को। उस हद तक साधना पहुंचनी चाहिए कि एक के बाद एक सभी केन्द्र विशेष रूप से सक्रिय हो जाएं।

एक के बाद एक मोक्ष द्वारों को खुलने दो। आधे रास्ते से मत लौटना। पहुंच जाओ आज्ञा चक्र तक। उसकी शक्ति को पूर्ण रूप से जाग्रत होने दो आपकी अविचल साधना के द्वारा। प्राणशक्ति से भर जाने दो सहस्रार बिन्दु तक के भीतरी विस्तार को।

आज्ञा चक्र शरीर और मस्तिष्क के बीच की, प्राणी और परमात्मा के बीच की, ज्ञान और अज्ञान के बीच की, मुक्ति और वासना के

बीच की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

अगर आप वहाँ तक पहुँच गए अर्थात् आपकी चेतना और ऊर्जा अंतरमुखी और उर्ध्वगामी बन गई तथा तीसरा नेत्र खुल गया, खुल गई विवेक की आँख तो फिर जो कुछ भी होगा वह सहज होगा। फिर सबकुछ परमात्मा के द्वारा होगा। आप सबकुछ करते हुए भी कुछ नहीं करेंगे।

आपके द्वारा जो भी कर्म होंगे वह सहज बंधन मुक्त और प्रेरक होंगे। पूरा अस्तित्व आपका सहयोग करने लगेगा। सबकुछ होते हुए भी आपका साक्षी जागता रहेगा। यह अवस्था सहज वितराग की है।

तीसरे नेत्र की विवेकाग्नि निरर्थक बातों को भस्म कर देगी। फिर आप व्यक्ति होते हुए भी व्यक्ति नहीं रहेंगे। आपके द्वारा अज्ञात की शक्ति ही सक्रिय रहेगी। आपको अनुभव होगा कि मैं यत्र-तत्र-सवत्र हूँ।

यह सर्वव्यापकता का भाव ही वामन में से विराट में समा जाने का प्रमाण है। वही भगवद्ता है, वही महाधर्म है और वही है परम सत्य।

**धरणा - ३९**

## **कृपाव बिन्दु प्रवेश भाव ध्यान**

प्रिय साधको !

मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य क्या होना चाहिए ? मनुष्य का अंतिम उद्देश्य क्या होना चाहिए ? आप लोगों को मंदिर मस्जिद गुरुद्वारों में आते जाते देखते होंगे, आप भी शायद जाते होंगे। पता है क्यों ? ध्यान विधि के पहले चलो इसे जरा समझ लें।

मनुष्य को अपने मूल स्रोत का हमेशा आकर्षण रहता है। मनुष्य का मूल स्रोत उसके माता-पिता, दादा या परदादा नहीं हैं। उसका मूल स्रोत परमात्मा है, विराट है, महाचैतन्य है।

यहाँ स्थूल स्रोत की बात ही नहीं है। सूक्ष्म स्रोत की बात है। दुनियां में ऐसा इन्सान ढूँढना मुश्किल है कि जो किसी न किसी धर्मस्थान या भगवान के साथ न जुड़ा हो।

भोले भाले लोग तो सीधा स्वीकार कर लेते हैं कि उन्हें मंदिर में जाना अच्छा लगता है, मन को शांति मिलती है इसलिए जाते हैं। परंतु कुछ लोग ज्यादा चतुर होते हैं। वे जाहेर में भगवान का बहिष्कार करते हैं। दिखाते हैं खुद को बड़ा क्रांतिकारी या रेस्नालिस्ट परंतु वह भी गुप्त रूप से तो कही न कहीं जुड़े हैं भगवान के साथ।

दुःख में, डिप्रेशन में, धंधे के घाटे में अच्छे अच्छे रेस्नालिस्टों को भी मैंने कुलदेव या कुलदेवी की मन्नत मानते देखे हैं। हाँ, उसका अहंकार खुले में से स्वीकार नहीं कर सकता है भगवान का। दुनियां में तो कहते रहते हैं कि भगवान जैसा तो कुछ भी नहीं। हम कोई भगवान वगवान में नहीं मानते हैं। परंतु ये उनका सत्य नहीं है।

ऐसा सत्य कभी सम्भव ही नहीं है। पुष्प अपने बाग से कैसे बगावत करेगा ? बूंद सागर का विरोध करेगी तो कैसा बेहुदा लगेगा ? दिया सूर्य के विपक्ष में खड़ा रह जाएगा तो कितना हास्यास्पद होगा ? ईश्वरीय आकर्षण से मानव जाति का मुक्त होना असंभव है। क्योंकि कदम कदम पर मनुष्य कहता है कि उसकी शक्ति सीमित है। कोई अज्ञात और असीम शक्ति उसकी रक्षा करती है, उसकी मदद करती है और उसके बाहर और भीतर दोनों रूप से जुड़ी हुई है। यह कोई कल्पना या भ्रम नहीं है। यह एक वास्तविकता है। इस शक्ति को कोई शिव-शक्ति के नाम से, कोई कुदरत, अल्लाह या अहुर्मजदा के संबोधन से या कोई अन्य देव देवी के रूप में मानते हैं और इस दिव्य शक्ति का सबसे ज्यादा अनुभव मनुष्य को ध्यान के द्वारा होता है।

एक बात तो सत्य है कि कोई गुप्त और विराट शक्ति प्रतिपल मनुष्य की सहायता और रक्षा करती है। उसे ही मैं परम स्रोत कहती हूँ। उस स्रोत से ही हम आए हैं। प्रत्येक मनुष्य का अंतिम लक्ष्य उस परम स्रोत में विलीन हो जाने का है। उसके पास शब्द भले न हों अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए। परंतु मनुष्य करोड़ों करोड़ों वर्षों से इसी कारण से ही उसकी आराधना कर रहा है, एक या दूसरी पद्धति से।

माया की प्रबलता के कारण अर्थात् दुन्यवी आकर्षणों के कारण उसका विशेष लक्ष्य भले संसार, सत्ता और धन के प्रति हो परंतु घूम फिर कर वह कभी न कभी भगवान के पास पहुँच जाता है। अपने मन के सुकून के लिए।

जिन्हें मूर्तियाँ मदद नहीं करतीं वह चला जाता है किसी संत के पास, सूफी के पास, कोई ज्ञानी के पास, कोई भगवद् कथा कहने वाले के पास या शास्त्र के पास, ऐसा क्यों ?

मनुष्य केवल दुःखी या स्वार्थी है सिर्फ ऐसा नहीं है। उसका पुराना संबंध है परमात्मा के साथ। वह आतुर और व्याकुल है उस



प्रियतम को मिलने के लिए। परंतु कुछ समझ में नहीं आ रहा है उसकी। पुराना रिश्ता उसे पूरा पूरा याद नहीं आ रहा है। इसलिए परमात्मा को वह दूसरे स्थान पर रखता है।

पुराण की एक कथा है। कण्व के आश्रम में महाराज दुष्यंत को शकुंतला से प्रेम हो जाता है। दोनों गहन प्रेम में उतर जाते हैं। दुष्यंत विदा लेने से पहले शकुंतला को प्रेम स्मृति में एक अंगूठी दे जाता है। बाद में किसी शाप की वजह से वह शकुंतला को भूल जाता है फिर हर तरह से उसके प्रेम संबंध का स्मरण कराने के लिए प्रयास किया जाता है परंतु जब तक शकुंतला को विरह का दुख भोगना ही था तब तक दुष्यंत को कुछ भी याद नहीं आता है.....।

छोड़ो, इस पुराण कथा के द्वारा मैं कहना यह चाहती हूँ कि मनुष्य भी किसी शाप की वजह से अपने परम प्रीतम से बिछुड़ गया है। वह बहुत कोशिश करता है उसके निकट जाने की, उसकी आत्मा तो पुकार रही है उस रिश्ते को परंतु पता ठिकाना, रंग, रूप, अनुभव कुछ भी याद नहीं आ रहा है।

वह मंदिर मस्जिद में जाता है। माला तस्बी लेकर बैठता है, कुरान और पुराण पढ़ता है, कथा कीर्तन सुनता है, जप तप करता है परंतु सब अधूरा अधूरा।

साक्षात्कार की कोई झलक नहीं मिल रही है। अब क्या करें? ऐसे प्यासे मनुष्य के लिए हमारे ऋषिओं ने ध्यान मार्ग के द्वारा सर्वप्रथम तो उसे शांत करने का प्रयत्न किया और एक राज खोल दिया कि तेरा प्रियतम तेरे भीतर ही बैठा है। उसे तू अपने भीतर उतरकर ही जान ले।

कुछ ध्यानी सिद्धों ने उस अज्ञात का ठिकाना बताकर मनुष्य को कहा कि उस परमात्मा का अनुभव तुझे शरीर के भीतर सिर्फ एक स्थान में नहीं परंतु अनेकों स्थानों में होगा। तू अंतरमुखी होकर यात्रा का आरंभ कर दे।

जो सच्चे प्यासे, सच्चे प्रेमी और सच्चे खोजी थे उन लोगों ने अपने लक्ष्य को पाने के लिए ध्यान में उतना प्रारम्भ कर दिया। और जो ध्यान में पूरी तरह से उतर पाए उन लोगों ने उस करुणा सिंधु को अपने भीतर ही पा लिया। प्रिय साधको!

उस करुणासिंधु, विश्वरक्षक, विराट का अनुभव तंत्र शास्त्र के अनुसार कपाल के मध्यबिन्दु में विशेष रूप से हो सकता है। ध्यान सूत्र जिसे कपाल कहते हैं, उसे भाल अथवा ललाट भी कहा जाता है। उसके मध्यभाग को शिव और शक्ति दोनों का निवास माना है। शिव का अर्थ है कल्याणकारी।

विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो कपाल बिन्दु स्थान में योजनाएं आकार लेती हैं। वहाँ शब्द का अर्थघटन होता है। बनी हुई योजनाओं के अनुसार मनुष्य प्रवृत्त होता है क्रियाओं में।

जो मनुष्य ध्यान में उतरता है उसके विचार, योजनाएं, विषय वस्तु का अर्थघटन एवं क्रियाकलाप कल्याणमय होने लगते हैं, वह शिवभाव है। इसलिए उस कपालबिन्दु को शिव का स्थान कहा।

एकाग्र चित्त से मौन और शांति में उतरने वाला अभ्यासू साधक कभी अशिव विचार या अशिव कर्म नहीं कर सकता। उससे होता ही नहीं ऐसा। आध्यात्मिक व्यक्ति कभी सही बात का अर्थघटन नहीं करता। कभी किसी सही बात को विकृत नहीं बनाता। नहीं अनर्थ पैदा करता। क्योंकि उसकी ध्यान साधना कपाल के केन्द्र को विशुद्ध करती है।

कपाल बिन्दु जाग्रत हो जाते ही सारी अशुद्धियाँ अर्थात् मानसिक और क्रियात्मक अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं इसीलिए तो उसे शिवस्थान कहा है। उस बिन्दु के जाग्रत होने से नई नई कल्याणकारी प्रेरणाएं उतरती हैं, उत्साह और शांति बढ़ती है। अंतरजगत विशेष रूप से बढ़ जाता है। क्षमा, दया, करुणा जैसे गुण साधक में सहज ही खिल उठते हैं। इसलिए उसे शक्ति स्थान भी कहा है। दुर्गासप्तशती में शक्ति के जितने भी स्वरूपों को नमस्कार किया है, वे सारी शक्तियाँ कमल बिन्दु के जागरण से सहज प्राप्य हो जाती हैं।

हमारे पुराण के ऋषियों ने अनेक आध्यात्मिक सत्यों को पौराणिक भाषा में स्पष्ट करके रख दिया है। जरूरत है उसे ढंग से समझने की, ऋषि तो कहता है – “सर्वभूतेषु”। वह शक्ति तो सर्व जीवों में बस रही है। उसकी प्रतीति प्रति जीव को नहीं हो रही है, वह उनका दुर्भाग्य है।

ध्यान आपको उन सारी शक्तियों की प्रतीति कराएगा, अनुभूति कराएगा। उन प्रत्येक अनुभूतियों के लिए शरीर में विविध शक्ति बिन्दु को जगाने के लिए ऋषियों ने विविध ध्यान विधियाँ दी हैं।

कपाल बिन्दु प्रवेशभाव ध्यान में आपको शांत, एकांत और स्वच्छ स्थान में अनुकूल आसन में आँख बंद करके कपाल के मध्यबिन्दु पर ध्यान लगाना है। जिसे विज्ञान भैरव तंत्र शिव-शक्ति का स्थान मानता है।

प्रारंभ में तो मन भटकेंगा। मन आपको ध्यान से दूर ले जाने की कोशिश भी करेगा। बार बार विक्षिप्त भी करेगा आपको।

ऐसा क्यों होता है? आपको पता है! जब तक आप ध्यान के लिए जाग्रत नहीं थे। तब तक मन का अंधा अनुसरण ही किया। हिन्दी में एक अच्छा शब्द है, मनमानी। मनमानी का अर्थ किसी की स्वतंत्रता से बरत रहा है ऐसा नहीं परंतु मन का मानकर भागता है। आज तक जिंदगीभर मन को बहुत महत्व दे दिया। अब ध्यान के कारण एक ऐसा मोड़ आया कि मन उपेक्षित होने लगा आपके द्वारा। जिस घर में जिंदगीभर नौकर की महिमा रही हो, नौकर की मर्जी से घर चला हो; उस घर का मालिक अचानक सावधान होकर अपना अनुशासन चलाने लगेगा, तो नौकर को तकलीफ होगी। कुछ दिन नौकर टेढ़ा चलेगा, मुंह फुलाएगा और जब पता चलेगा कि अब मेरा कुछ चलने वाला नहीं है तब भाग जाएगा। मन का भी ऐसा ही है।

ध्यान के प्रारंभ में आपका मन उपेक्षित होता है। मन की ओर से ध्यान खींचकर स्वयं की ओर जुड़ना, यह ध्यान का प्रारंभ है। तब एक प्रकार का मनोभंग होता है। यह आध्यात्मिक मनोभंग है। टूटा हुआ मन आपको विक्षिप्त करने लगेगा। परंतु उसके प्रति आपको ध्यान नहीं देना है।

प्रिय साधको!

आपका ध्यान भंग कराने के लिए बाहर से कोई मेनका नहीं आएगी। आपके मन की मेनका आपको स्थिर नहीं होने देती है। वह मन दूसरी अनेक मेनकाओं को खींचकर लाता है। परंतु आपको मन के साथ भागना भी नहीं है और मन पर क्रोधित भी नहीं होना है। दुर्बल व्यक्ति जल्दी क्रोध करता है।

अपने मन पर क्रोध करके आप ही टूटेंगे और मन के गुलाम बनकर तो बिल्कुल खत्म हो जाएंगे। मन के साथ भाग भाग कर बिल्कुल बिखर जाएंगे। ऐसी स्थिति में आपको बड़े धैर्य और स्थिरता के साथ मन की सारी गतिविधियों को केन्द्रित करना है कपालबिन्दु पर।

ध्यान में आपका मन जो इधर उधर भागे तो फिर फिर से सजगता से उसे बिन्दु पर स्थिर करना है। उसे खुराक मत दो, ऊर्जा मत दो। मन की खुराक है मन के प्रति लक्ष्य। खुराक न मिलने से वह कमजोर पड़ जाएगा। आप मन का संग मत करो, मन को आपका संग दो, सत्संग दो, आपका रंग दो। धीरे धीरे मन ध्यान के रंग में विलीन होता जाएगा।

मेरे पास लोग एक ही फरियाद लेकर आते हैं कि मन शांत नहीं हो रहा है। सबके साथ यही स्थिति है। इस संदर्भ में सबलोग एक जैसे हैं। जैसे सभी बंदर एक जैसे दिखते हैं। वैसे सबका मन एकसा है। इसीलिए तो मन को मर्कट कहा होगा। सबके पास एक मर्कट है और मर्कट अक्सर चंचल ही होते हैं।

मन कभी भी शांत नहीं होगा। मन का काम ही है अशांति को उत्पन्न करना। वह तो उसका काम कर रहा है। परंतु आपका काम क्या है? कभी सोचा है। आप मतलब कौन? शरीर आपके वस्त्र हैं। मन आप पर पड़ी पुरानी और इस जन्म की माया के संस्कारों की छाप है। जो भीतर कार्यान्वित रहती है और परिणाम बाहर भुगतते हो।

आप हैं शुद्ध चैतन्य परंतु वह चैतन्य ढंक गया है आवरणों से। एक सुंदर आइने पर बहुत सारी अशुद्धियाँ चिपक गई हैं।

मनुष्य दूसरे को भूल जाए यह बात तो समझ में आती है परंतु स्वयं को भूल जो यह तो गलत है। जैसे कोई आदमी पागल हो जाता है तो अपने निकट के रिस्तेदारों को भी भूल जाता है। वह खुद का नाम तक भूल जाता है।

ऐसा ही मनुष्य का हुआ है। कभी कभी लगता है कि दुनियाँ एक बहुत बड़ा पागलखाना है क्योंकि यहाँ के अधिकतर लोग स्वयं को भूल गए हैं। और जो वास्तविक नहीं हैं उसको पकड़कर हंसते हैं, रोते हैं। उन लोगों का एक ही इलाज है, ध्यान।

मन की चिन्ता ही न करो। मन का काम ही अशांति और विक्षेप पैदा करना है। आपका कार्य है स्वयं की शक्ति पहचानकर शांति के विश्व का निर्माण करना।

आप जब शांति को जन्म दे पाएंगे तब मन बेचारा छोटा हो जाएगा। अशांति, उपद्रव, अव्यवस्था – सब अद्रश्य हो जाएंगे। परंतु इसके लिए आपको ध्यान में उतरना पड़ेगा। लक्ष्य देना पड़ेगा अपनी ओर। दूसरों के प्रति बहुत ध्यान दे लिया, अब दिशा बदलो।

मन के बहकावे में आकर निरर्थक बातों में ध्यान देते देते आप इतने बेध्यान हो गए हैं कि जीने लायक ही नहीं रहे। जिन्दगी बोझ लगने लगी। मनुष्य इतना मूढ़ हो गया कि सारी अंतर कलाओं को भूल गया। जीवन अपना है परंतु कैसे जिआ जाए? यह सीखने के लिए बेचारे को बाहर भटकना पड़ता है। आर्ट और लिविंग के क्लास जोइन्ट करने पड़ते हैं! कैसी दयनीय हो गई है मनुष्य की स्थिति।

परंतु याद रखें ये कला बाहर से कभी भी नहीं आएगी। सत्य सिखाया नहीं जाता। वह तो भीतर से ही प्रगट होता है और उसके लिए ध्यान है सही और एक मात्र मार्ग। कुछ अन्य कला बाहर से सिखाई जाती हैं। परंतु सत्य, शांति और सृजन तो भीतर से ही उभरते हैं। और

उसका परम स्रोत है, ध्यान।

मनुष्य अपने जीवन में विविध लक्ष्य लेकर आगे बढ़ता है। कुछ लोग दुन्यवी लक्ष्यों को सिद्ध भी कर लेते हैं। परंतु उत्तम लक्ष्य किसे कहेंगे? कभी सोचा है! वैष्णव संप्रदाय के लोग सर्वोत्तम स्तोत्र पढ़ते हैं परंतु स्तोत्र पढ़ने से क्या? आचार्य वल्लभ ने तो अपनी सर्वोत्तमता सिद्ध की परंतु आपने क्या किया?

मैं कहती हूँ कि आज सर्वोत्तम स्तोत्र से ज्यादा सर्वोत्तम लक्ष्य की आवश्यकता है। खुद को पहचानना, खुद को पा लेना अत्यंत जरूरी है। खुद को पा लेंगे तो फिर खुदा दूर नहीं है। मैं अनेक बार कह चुकी हूँ कि स्वयं की पहचान ही परमात्मा की पहचान है। एक बार शाश्वत को पा लेंगे फिर नाश्वंत में आपका कोई ज्यादा रस नहीं रहेगा। मन अदृश्य होता जाएगा। इतना प्रकाश होगा आपके भीतर कि फिर अंधेरे के लिए कोई स्थान ही नहीं बचेगा।

एक बात याद रखें, प्रकाश कभी अंधेरे से लड़ता नहीं है। वह केवल प्रगट हो जाता है। प्रकाश की उपस्थिति मात्र से अंधकार का अस्तित्व मिट जाता है। मैं कहती हूँ कि आप आत्मप्रकाश प्रगट करने के कुछ बिन्दुओं को जान लो। वे बिजली के स्विच की तरह एक प्रकार के स्विचिस हैं। उन स्विचों को जानने का मार्ग है, ध्यान। एक बार उसका ज्ञान हो गया तो फिर आसान हो जाएगा प्रकाशित होना।

फिर मन से लड़ना नहीं पड़ेगा। मन का गहरा अंधकार अपनेआप मिट जाएगा। इन अंधेरों का मिटाना ही मन का शुद्धिकरण है।

मैले वस्त्र को अच्छी तरह से धोएंगे तो क्या होगा? धुलाई से मैल अदृश्य हो जाएगा। फिर आप वस्त्र में मैल को ढूंढने बैठेंगे तो वह कहीं नहीं मिलेगा। वह तो धुल गया। अब केवल विशुद्धि बची।

इसी तरह से ध्यान में मन का मैल धुल जाने से केवल विशुद्धि बचेगी। वह विशुद्धि परमात्मा है। फिर मन की चिंता मत करना। मन को ढूंढने की कोशिश में नया मन पैदा मत कर लेना। होने दो मन को अदृश्य, मिटने दो मन को।

ये इसलिए कहना पड़ा कि साधना में कभी कभी मन का विशुद्धिकरण हो जाता है। परंतु कभी कभी साधक इस घटना से अपरिचित सा रह जाता है, उसने अमनी स्थिति का कभी अनुभव नहीं किया था और ध्यान से अचानक अ-मन हो गया तब भीतर शून्य तो घटा परंतु ज्ञान नहीं घटा, मन के साथ जीने की आदत की वजह से। उसे समझ में नहीं आता है कि क्या हो रहा है मेरे साथ? तब फिर से मन को ढूंढने लगता है, घबरा जाता है। लेकिन घबराना नहीं है। ऐसी स्थिति में सद्गुरु की आवश्यकता होती है।

ध्यान विधियों में बार बार आता है कि मन को स्थिर करो, मन को स्थिर करो। मैं कहती हूँ, ध्यान में उतरो। मन को स्थिर करने का अर्थ ही है, ध्यान में उतरना। ध्यान में उतरे बिना मन स्थिर नहीं होगा।

लिफ्ट में बैठकर लिफ्ट का बटन ऊपर की ओर दबते ही जैसे लिफ्ट ऊपर उठने लगती है, आप ऊंचाइयों पर पहुंचने लगते हैं, नीचे की दुनियाँ छूटने लगती है। वैसे ही ध्यान में बैठते ही, मन से फासला शुरू हो जाता है।

फर्क इतना है कि लिफ्ट में नीचे की ओर आने का रास्ता भी खुला है परंतु ध्यान आपको केवल उर्ध्वगति ही देता है। सच्चे ध्यानी की कभी अधोगति नहीं होती।

ध्यान में स्थिर होना ही मन का स्थिर होना है। मन से लड़ना नहीं है, उसे ईधन भी नहीं देना है। आप जैसे ही ध्यान में उतरते हो कि तुरंत मन को नए नए विषय मिलने बंद हो जाते हैं, जो मन का भोजन है। क्षण क्षण में नए विषय और विचार तरंगों से पुष्ट होता मन ध्यानावस्था में उपेक्षित होकर दुर्बल हो जाता है। ध्यान में मन को न ऊर्जा मिलती है आपकी ओर से, न लक्ष्य, न समय, न सहयोग। योगी पुरुष इसी ढंग से मन को क्षीण करते हैं और धीरे धीरे उससे बिलकुल मुक्त हो जाते हैं।

विषय, वस्तु, विचार, व्यक्ति और वातावरण से ऊपर उठने की प्रक्रिया है ध्यान। ध्यान विधियों में इन सबसे ऊपर उठने की कुंजियाँ बताई हैं हमारे ध्यान ऋषियों ने।

ध्यान की प्रत्येक विधि मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति की ओर ले जाती है। परंतु कुछ लोगों की आदत होती है, ऊपर नीचे होते रहने की। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उसे आकाश का भी आकर्षण है और धरती छोड़ना भी अच्छा नहीं लगता है।

आपके भीतर के ऊर्जा केन्द्रों को स्वीच ओन करने से आप अवश्य ऊपर उठ पाएंगे। यह मैं मेरे अनुभव की बात कर रही हूँ। कोई रटी हुई बात नहीं है। ऐसी बातें रटी नहीं जा सकतीं। थोड़ी देर पहले मैंने कहा था कि लिफ्ट का यह भी एक सत्य है कि नीचे की ओर आने के रास्ते और बटन भी है। ऊपर और नीचे आने जाने का मार्ग एक ही है, स्वर्ग और नर्क का द्वार एक ही है। दिशा अलग अलग है। ऊपर की ओर परमात्मा है, नीचे की ओर माया है। ध्यान की गति स्वर्ग की गति है और मन की गति नर्क की।

मनुष्य देह के ऊपर की ओर जाते हुए चक्र परमात्मा की ओर ले जाते हैं। ये कुदरती व्यवस्था है। कुदरत ने पैरों की ओर जाते हुए चक्र नहीं दिये हैं मनुष्य को। चक्र की गति एक के बाद एक ऊपर की ओर है। इसका अर्थ आपको समझ लेना चाहिए। ध्यान ऊपर के चक्रों

की ओर जाता है। मन हमेशा चक्रों के नीचे की ओर जाना चाहता है। इन दोनों के बीच में पूरी दुनियाँ है।

अब तय आपको करना है कि आपको मन के संग रहना है कि ध्यान के संग। मन के संग में हर्ष-शोक, राग-द्वेष, सुख-दुःख, मेरा-तेरा सारे द्वंद्व मिलेंगे और आप पिसते जाएंगे द्वंद्वों की बीच। ध्यान आपको सारे द्वंद्वों से मुक्त कर देगा। वह आपको साहस देगा निरद्वंद्व परिस्थिति का निर्माण करने का।

ध्यान के विकसित होते ही सारा विरोधाभास मिट जाएगा। ध्यान मनुष्य को अपार आनंद, प्रतिपल उत्सव, और आत्मदर्शन देगा।

मैं कहती हूँ कि मनुष्य जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है साक्षात्कार। यह साक्षात्कार किसी बाहर के भगवान या नाम रूप धारी, अतीत या भविष्य के भगवान नहीं समझना। मैं जिस साक्षात्कार की बात करती हूँ यह है आत्मसाक्षात्कार। स्वयं से साक्षात्कार, स्व की पहचान, आत्मस्वरूप का परिचय। एक ऐसा सत्य, एक ऐसी संपत्ति जो आपकी है, आपके भीतर है। जिसको आप भूल गए हैं और कंगाल की भांति जी रहे हैं। ध्यान के द्वारा सर्वोत्तम लक्ष्य को प्राप्त करके आप शाहों के शाह बन जाएंगे। आपके पास बाहरी विश्व का कुछ भी न होने पर भी आप परम समृद्ध होंगे। कोई धीर-वीर ही इस समृद्धि को प्राप्त कर सकते हैं। आत्म समृद्धि से बड़ी कोई समृद्धि नहीं और मोक्ष साम्राज्य से बड़ा कोई साम्राज्य नहीं।

प्यारे साधको!

अब प्रारंभ करो ध्यान में उतरना। शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद स्थान पर आसन जमाकर, नेत्र को मूंदकर ललाट के मध्यबिन्दु पर ध्यानस्थ हो जाओ। मन को उस बिंदु पर स्थिर करो। कम से कम रोज चौबीस मिनट तक अभ्यास करो। छयानवे दिन तक अभ्यास के बाद अनुभव होगा कि मन शांत है। अब आप निरर्थक विचारों के शिकार नहीं बन रहे हैं। आपकी बागडोर आपके हाथ में है मन के हाथ में नहीं। पहले आप गुलाम थे, अब महाराजा हैं। विषय, वस्तु, विचारों का विक्षेप मिट रहा है। आत्मस्थ होने से प्रसन्नता बढ़ रही है।

क्षमा, करुणा, शांति, धृति, सम्यक स्मृति, सम्यक क्रिया करने की क्षमता आदि शक्तियाँ विकसित हो रही हैं। और ध्यान की चरम सीमा में समाधिस्थ बनना सहज हो जाएगा। आपको अचानक समझ में आ जाएगा कि सर्वोत्तम लक्ष्य प्राप्त हो गया। इससे ज्यादा सुंदर, उत्तम, सत्य, कल्याणकारी और आनंदप्रद और क्या हो सकता है।

## धरणा - ३२

# छादशांत बिन्दु प्रवेश भाव ध्यान

प्रिय साधको!

मनुष्य शरीर के भीतर बारह सूक्ष्म स्थान विशेष शक्तिपूर्ण हैं। ये मैंने कई बार बताया है। कुछ शारीरिक क्रियाओं के संदर्भ में वे स्थान सक्रिय हैं। वह एक कुदरती और स्वाभाविक व्यवस्था है। जो अपने आप कुछ वर्षों तक चलती रहती है। जीवन समाप्त होते ही ये सारे शक्तिबिन्दु समाप्त हो जाते हैं।

कुदरत ने मनुष्य को शरीर के साथ साथ सत्य को जानने की एक वृत्ति भी दी है। जिसे योग शास्त्र प्रमाण वृत्ति कहता है। यह वृत्ति सभी मनुष्यों में न्यूनाधिक अंश से सक्रिय है। संत समागम के द्वारा जो थोड़ा भी जाग जाता है। वह ज्यादा सजग हो जाता है। और कुछ गहन सत्यों को एवं भीतर के रहस्यों को जानने में प्रवृत्त हो जाता है। ऐसी वृत्ति और प्रवृत्ति को हम आध्यात्मिक वृत्ति प्रवृत्त कह सकते हैं।

कुदरत के द्वारा शरीर के बारह बिन्दु भौतिक जीवन के लिये उपयोगी हो रहे हैं, उनमें से कोई बिन्दु प्रजोत्पत्ति कार्य और विषय वासना की शांति के लिए कार्यरत है तो कोई बिन्दु भोजन पचाने के लिए। कोई श्वसन कार्य के लिए तो कोई वाणी के लिए सक्रिय है। कोई देखने के लिए तो कोई सोचने के लिए कार्यावित है। वैसे ये शरीर के सारे सूक्ष्म स्थान जिसे मैं बिन्दु कहती हूँ, वे आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी उपयोगी हैं। परंतु उसका आध्यात्मिक विकास में उपयोग कैसे किया जाए? यह मनुष्य जानता नहीं है। ये जानने की वृत्ति को सत्यान्वेशी वृत्ति कहते हैं। शरीर के इन सूक्ष्म बिन्दुओं का सजग संपर्क होने से घटनाएं घटने लगती हैं। अर्थात् भौतिक कार्य कलापों में वे बिन्दु स्थान जितनी सहजता से सक्रिय है उतने ही सक्रिय आध्यात्मिक विकास के लिए भी हो सकते हैं। उन बिन्दुओं को तंत्र शास्त्र द्वादशांत नाम से जानते हैं।

उन बिन्दुओं द्वारा आध्यात्मिक शक्ति को विकसित करने की कला का नाम है, ध्यान। कुदरत ने मनुष्य शरीर में जो कुछ भी दिया है वह मनुष्य की मदद करने के लिए ही दिया है। मनुष्य की सर्वप्रकार से सुखाकारी के लिए तो परमात्मा ने यह सब रचना की है परंतु मनुष्य खुद ही जाग्रत नहीं है, उन केन्द्रों से विशेष शक्ति प्राप्त करने के लिए।

जो आपके अधिकार में है उसका उपयोग आप नहीं कर रहे हैं तो आप ही जिम्मेदार हैं। मूल में बात रस की है। मनुष्य का रस



जितना विषय वासना में है, जितना पहनने ओढ़ने में है, जितना खाने पीने में है, जितना घूमने फिरने में है, जितना कुथली निंदा में है, जितना सोने में और नाटक सिनेमा देखने में उतना अध्यात्म में नहीं है।

आपको मिले हुए सूक्ष्म केन्द्र तो जादुई चिराग जैसे हैं। उनसे जो चाहेंगे वो मिलेगा। आप जैसे चाहेंगे वैसे वे आपकी मदद करेंगे। वे तो कुदरती और दैवी शक्ति हैं। वे बिलकुल साक्षी हैं, आप उसका उपयोग कैसे भी कर लो ? या ना करो; वह तो दृष्टा की भांति हैं, वे कभी दखल नहीं देते हैं आपके काम में।

वे केन्द्र बहुत मूल्यवान हैं परंतु मूर्ख मनुष्य उसका दुरुपयोग करके उसका अवमूल्यन भी कर सकता है। उन केन्द्रों की अपार शक्ति को गलत रास्ते पर जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल करके उसे क्षीण भी कर सकते हैं और आध्यात्मिक रूप से सजग रहकर उनसे अपार शक्ति प्राप्त करने के बावजूद भी उन्हें विशेष शक्ति सम्पन्न भी कर सकते हैं।

जैसे केमरे की बैटरी रीचार्ज भी होती रहती है और उसी बैटरी से केमेरा अच्छा काम भी देता रहता है। उन आंतरिक केन्द्रों को रीचार्ज करने वाला माध्यम है, ध्यान। तब आपको करना है कि कैसे उपयोग में लेना है उन शक्ति केन्द्रों को।

मैंने बचपन में एक कहानी सुनी थी; एक संत एक चरवाहे पर प्रसन्न हुए। संत के पास एक बहुमूल्य हीरा था। वह दे दिया चरवाहे को। मैं कहती हूँ कि सच्चे संत के पास से जो कुछ भी मिलता है वह सच्चे हीरे जैसा मूल्यवान ही होता है, बात पहचान की है, समझ की है।

वह हीरा इतना मूल्यवान था कि अगर चरवाहा उसे बेचे तो सात पीढ़ी तक सुखी संपन्न रहे। भेड़ बकरियाँ चराने के लिए भटकना न पड़े। परंतु याद रहे, मूल्यवान चीज़ पा लेना एक बात है और उसके मूल्य को समझना दूसरी बात।

चरवाहे ने कुछ उपाय करके हीरे में छेद करवाया और एक बकरी के गले में बांध दिया। दृष्टांत आपकी समझ में आ गया होगा। प्रिय साधको !

कुदरत की ओर से मनुष्य को मिले हुए प्रत्येक शक्ति बिन्दु कीमती हीरों से भी अनेक गुने मूल्यवान हैं। परंतु ज्यादातर लोग उसका उपयोग मन की बकरी के गले में बांधने में ही करते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि लोग मन के अनुसार जीते हैं। जैसे चरवाहे का निर्वाह भेड़ बकरियों से होता है। ऐसे ज्यादातर लोग अपना निर्वाह मन के जरिए करते हैं।

आत्मा के अनुसार जीने की समझ ही नहीं है उन लोगों के पास। मन का स्वभाव है भटकना और भटकाना। एक अर्थ में मन भेड़ बकरियाँ जैसा भी है और एक अर्थ में चरवाहे जैसा भी है। उसे भटके बिना चैन नहीं मिलता। ज्यादातर लोग भेड़ चाल चलने वाले ही हैं। उन लोगों के पास आत्मानुशासन जैसा कुछ भी नहीं है।

ध्यान आपकी स्वानुशासन की क्षमता बढ़ाएगा। एक एक शक्ति केन्द्रों से परिचय कराएगा आपका।

एक बात खास याद रहे, भेड़ बकरियों में और मनुष्य में रंग रूप, आकार, प्रकार उपरांत का एक बड़ा फर्क है। भेड़ बकरियों के मन में सत्य को पाने की वृत्ति कभी नहीं उठती। उसके पास अध्यात्म जैसा कोई शब्द या समझ नहीं है। उनमें अध्यात्म की कभी प्यास नहीं जगती। उनमें न ब्रह्म जिज्ञासा जगती है, न मोक्ष को पाने की इच्छा।

परंतु मनुष्य में यह वृत्ति अल्पमहत रूप से कहीं न कहीं अवश्य देखने को मिलती है। पहले या बाद में परंतु बचपन से लेकर वृद्धत्व तक इंसान कभी न कभी तो भगवान से जुड़ने का भाव करता ही है। फिर भले उसका भगवान मूर्ति तक सीमित हो या मंत्र तक। परंतु उसमें बीज पड़े हैं अध्यात्म के।

मैं उन बीजों को खाद, पानी और माहौल देने का काम कर रही हूँ। ताकि भगवान को ढूंढने के लिए उसे भटकना न पड़े। ध्यान के द्वारा वो एक ऐसे परम सत्य को जान ले कि भगवान उसके भीतर ही है। उस परमात्मा से वह एक भी क्षण दूर नहीं है। उस परमात्मा से दूर होने का मार्ग भी नहीं है।

उस परमात्मा से दूर रहना मृत्यु है और उसके संग रहना जीवन है। यही है वास्तविक मुक्ति।

मनुष्य जब तक बहिरमुखी रहता है अर्थात् दुनियादारी में डूबा रहता है तब तक ऊर्जा का खर्च कर रहा है और जब भीतर उतरता है, अंतरमुखी बन जाता है, गहन मौन में उतर जाता है तब ऊर्जा बचती है। बची हुई ऊर्जा का उर्ध्वीकरण होता है।

बाहर की परिस्थितियाँ एक या दूसरे नाम-रूप से आपके लिए कैद खड़ी करती जाती हैं। आपको पता भी नहीं और आप बंधते जाते हैं। परंतु अंतरमुखी होकर दूर हटके जगत की लीला को साक्षी भाव से देखते रहते हैं तब वे बन जाते हैं मुक्ति के क्षण। वही सही मुक्ति है।

मरने के बाद जो मुक्ति मिलती है उसकी प्रतीक्षा में मत रहो। वह मुक्ति केवल ओन पेपर है। वह वास्तविक नहीं बनेगी आध्यात्मिक जाग्रति के बिना। जो जीतेजी मुक्त नहीं हो पाया वो मरकर कैसे हो पाएगा ?

जिसके पास मानव देह रूपी सुंदर साधन था तो भी जो मुक्त नहीं हो पाया तो मरने के बाद कैसे मुक्त हो पाएगा ?

और मैं तो यह कहूंगी कि जो मुक्ति आपके पास से जीवन जैसा जीवन छीन ले उस मुक्ति को क्या करना है ? मानव जीवन सबसे मूल्यवान है, इस बात को कुछ भक्तिमार्गी (प्रेममार्गी) अच्छी तरह समझ गए थे। इसलिए उन्होंने कभी मुक्ति की चाह नहीं की।

जीवन के आनंद को दाव पर लगाकर जो जिंदगी के बदले में मोक्ष मिले वह तो बड़ा महंगा पड़ेगा। यह तो घाटे का सौदा है।

खा पीकर सुख से जीने वाले किसी भी आदमी को कहेंगे कि मोक्ष मिलेगा लेकिन अभी के अभी मरना पड़ेगा। तो कोई भी तैयार नहीं होगा क्योंकि मनुष्य मोक्ष से अपरिचित हैं, जीवन से परिचित है। परिचित वर्तमान को खोकर अपरिचित भविष्य के लिए कौन भागेगा ? मैं कहती हूँ कि ध्यान मोक्ष का परिचय कराता है।

मैं मोक्ष की कला सिखा रही हूँ। अगर भरोसा है तो मेरी बात पर विश्वास करके ध्यान में उतर जाओ।

प्रिय साधको !

आप जब जीते जी मुक्ति पा लो तब तो मजा है मुक्ति का। आप जीते जी सबकुछ भुगत लेना चाहते हो तो मुक्ति की चाह क्यों नहीं ? वह चाह भी भले हो जाए। यह चाह एक ऐसी चाह है कि अन्य सारी चाहों से मुक्त हो जाएंगे आप। सारी चिंताएं मिट जाएंगी। सर्व इच्छाएं और मनोभार के मिट जाने की अवस्था है मुक्ति।

मुक्ति की चाह करने का अर्थ ही इतना है कि अन्य सारी इच्छाओं से छूटने की आशा का जगना। अन्य आकांक्षाएं लोभ हैं, मुक्ति की आकांक्षा ज्ञान का प्रारंभ है।

एक जीवन मुक्त मनुष्य के सामने राजा महाराज फीके पड़ जाते हैं। देवता तरसते हैं उनकी चरणरज लेने को। ऐसे मुक्त पुरुषों की तरंग मात्र के स्पर्श से भोगी लोग भी वितराग की कामना करने लगते हैं।

एक ऐसी अवस्था प्राप्त करने के लिए भारतीय योग शास्त्र ने आठ सोपान बताए हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। और तंत्र शास्त्र ने द्वादस स्थान पर अर्थात् जन्माग्र, मूलाधार, कंद, नाभि, हृदय, कंठ, तालूमूल, भ्रूमध्य, ललाट, सहस्रार, शक्ति और व्यापिनी कुछ ध्यान विधियाँ बताई हैं। उनमें से एक विधि के विषय पर हम चर्चा कर रहे हैं। उस ध्यान विधि को धारणा कहते हैं। धारणा फलीभूत होकर ध्यान बन जाती है।

सम्यक धारणा के सहयोग से ध्यान में उतरकर आप सहज ही समाधिस्त बन सकते हैं। अनेकानेक ध्यानविधियों में से एक विधि है – द्वादशांत स्थान पर चित्त को एकाग्र करना। उन स्थानों द्वारा साधारण जीवन के लिए बहती हुई ऊर्जा का उर्ध्वीकरण करके असाधारण जीवन को पाना। ये केवल बातें नहीं हैं, अनुभव हैं। परंतु मेरा अनुभव आपका अनुभव बने यह बहुत जरूरी है। इसीलिए तो मैंने ध्यान को एक आध्यात्मिक अभियान की तरह लिया है। मेरा अनुभव जब आपका अनुभव बनेगा तब मेरा पुरुषार्थ सार्थक हो जाएगा। इस पुरुषार्थ को मैं आध्यात्मिक पुरुषार्थ कहती हूँ।

आदि अनादि से प्रत्येक सदी में प्रबुद्धात्मा धरती पर ऐसा आध्यात्मिक पुरुषार्थ करके लोगों को जगा जाते हैं। आप विश्व के इतिहास को देखना मुझे केवल भारत या हिन्दू अवतारों की बात नहीं करनी है। विश्व के इतिहास को देखेंगे तो हर सौ साल के बाद धर्मक्रांति होती है। कुछ पुराना विदा लेता है, नया आता है। हर सदी में मनुष्य के आध्यात्मिक जागरण का काम होता रहा है।

हमारे वेद सौ साल तक जीने की अभिलाषा क्यों करते हैं ? क्यों आशीर्वाद दिए जाते हैं सौ शरद तक जीने के ? क्या आप यह समझते हैं कि वेद के ऋषि ने केवल भोग के लिए इतना लंबा आयु मांगा ? बिलकुल नहीं। सौ साल की अपेक्षा और आशीर्वाद के पीछे एक आशा है। वह एक आध्यात्मिक आशा है। ऋषि जानता है कि हर सदी में पृथ्वी पर एक प्रबुद्ध चेतना उतरती है। वे चाहते हैं कि सौ साल के दौरान अगर मनुष्य की आध्यात्मिक खोज है तो स्वस्थ शरीर और मन के द्वारा वह ढूँढ लेगा उस प्रबुद्ध चेतना को।

मुझसे पहले अनेक ध्यानी और ज्ञानी आ चुके हैं इस पृथ्वी पर मेरे बाद भी अनेक आएंगे। प्रत्येक मनुष्य के आत्यंतिक कल्याण के लिए कुछ न कुछ देते रहेंगे।

कुछ सुपात्र जिज्ञासु पी सकते हैं उस प्रसाद को, कुछ प्रचार कर सकते हैं उसका, कुछ सेवा कर लेते हैं ऐसे ज्ञानी आत्माओं की। इस तरह से ध्यान परंपरा और ज्ञान परंपरा जिन्दा रही है इस धरती पर।

अब ध्यान दीजिए विधि की ओर। मैं आपको द्वादशांत बिन्दु के स्थान और उनका कार्य समझाना चाहती हूँ। परंतु उस संदर्भ की खास समझ के बिना आपके लिए विधि शुष्क हो जाएगी। मैं चाहती हूँ कि आप दुनियादारी की मौज मजा जितनी मस्ती से लेते हो। उतनी ही मस्ती से ध्यान का मजा भी लो और यह तब संभव होगा जब आप बाहर की तरह भीतर के विश्व को भी कुछ हद तक समझ लें।

आपका मन और मस्तिष्क आपकी सौ प्रतिशत ऊर्जा ले लेता है। आपको प्रश्न उठ सकता है कि शरीर ऊर्जा नहीं लेता ? – समझा

रही हूँ। थोड़ा ध्यान दीजिए। मैंने जान बूझकर शरीर का जिक्र नहीं किया क्योंकि मन नई नई इच्छाएं पैदा करके शरीर को प्रवृत्त करता है इच्छा पूर्ति के लिए। इसलिए शरीर के पीछे जो ऊर्जा व्यय हो रहा है इसके लिए मन ज्यादा जिम्मेदार है। और शरीर के पास से कार्य लेने के लिए मस्तिष्क योजनाएं बनाता है एवं चिंताएं करता है। उसमें तीन भाग की ऊर्जा चली जाती है।

विज्ञान भी कहता है कि तीन भाग की ऊर्जा मनुष्य का दिमाग ले लेता है।

आपने उस अंधे का दृष्टांत सुना होगा। एक अंधा सेव बेल रहा था। देख तो सकता नहीं था। बेचारा बड़ी मेहनत कर रहा था सेव बेलने में, उसे था कि सेव बेलकर सुखाकर उसमें से थोड़ी खाऊंगा थोड़ी बेचूंगा। दो पैसे मिल जाएंगे तो बुढ़ापे में काम आ जाएंगे। परंतु सेव बेलते वक्त उसे पता नहीं था कि उसके पास में एक गाय का बछड़ा खड़ा था जैसे ही सेव बनती जाती थी। सारे सेव बछड़ा खा जाता था।

मनुष्य की हालात भी कुछ ऐसी ही है। वह मेहनत तो करता है परंतु दृष्टहीन है। मन और मस्तिष्क रूपी बछड़े उसकी सारी ऊर्जा खा जाते हैं। और बेचारा मनुष्य पैदा होने से बड़ा होने तक और मरने तक मेहनत करता रहता है। और अंत में एक ऐसी निराशा के साथ मरता है कि मैंने जिन्दगी में बहुत कुछ किया लेकिन कुछ भी नहीं पाया। राजा महाराजाओं की भी ऐसी मनोदशा हुई है। ऐसा क्यों होता है? – एक ही कारण है दृष्टि और दिशा का अभाव।

ध्यान मनुष्य को नई दृष्टि भी देता है और नई दिशा भी। गुर्जीएफ का शिष्य यूस्पेन्स्की फोर्थ डायमेशन की बात करता है। मैं यहाँ इलेक्थ डायरेक्शन की बात कहती हूँ। मुझे यहाँ गणितीय, भौमितिक या भौगोलिक बातों के साथ कोई संबंध नहीं है। मेरा संबंध यहाँ सिर्फ आध्यात्मिकता से है।

वह एक आंतरिक दिशा है। मैं मनुष्य को उस ग्यारहवीं दिशा का दर्शन कराने के लिए बोल रही हूँ, लिख रही हूँ, आपको ध्यान में ले जा रही हूँ, गा रही हूँ, नाच रही हूँ, सूफी संगीत की भांति भांति की धुन बना रही हूँ, भजन और गज़लें लिख रही हूँ...। कहीं न कहीं से तो आप आ ही जाएंगे सत्य के करीब। शब्द, संगीत, वायब्रेशन, मेरा शास्त्र, कुछ न कुछ तो आपको छू ही लेगा।

यह स्पर्श सेहरा की गर्मी में सर्द हवा जैसा सुखद होगा, गहरी प्यास में मीठे जल जैसा होगा। पुष्पों के संग जैसा होगा। एक बार उसकी अनुभूति करने के बाद कोई भी समझदार आदमी ध्यान में उतर जाएगा।

प्रिय साधको!

तंत्र शास्त्र में शरीर के भीतर के बारह सूक्ष्म स्थानों की ओर इशारा किया है। वे स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उन बारह स्थानों के मध्य से ही पूरा जीवन प्रवाह बहता है। ये द्वादश स्थान प्राण के प्रमुख स्थान हैं। उनमें विशेष रूप से जैविक ऊर्जा बहती है।

वे सब एक अर्थ में जीवन के लिए अनिवार्य ऊर्जा पूर्ण नाड़ीगुच्छ हैं। उन बारह स्थानों में ही षट्चक्रों का समावेश हो जाता है। परंतु चक्रों की बात बाद में करेंगे। यहाँ सिर्फ भैरव तंत्र के अनुसार बारह स्थानों का उल्लेख है, उसके संदर्भ में ही कुछ समझाने का मैं प्रयास करूंगी।

उन बारह स्थानों में से सर्वप्रथम स्थान है जन्माग्र। शब्द से ही प्रतीत होता है उसका कार्यक्षेत्र। वह स्थान जन्म लेने या देने के लिए ही मुख्य है।

यह केन्द्र अत्यंत शक्तिशाली है। समग्र सृष्टि कार्य इस केन्द्र पर खड़ा है। इस स्थान की वजह से ही एक से अनेक अथवा परमात्मा के “एकोहम बहुष्याम” का संकल्प सिद्ध हो सकता है।

परंतु इसके आगे भी बहुत सारे महत्वपूर्ण केन्द्र हैं। औसत आदमी का चित्त प्रथम केन्द्र के इर्द गिर्द में ही घूमता है। और अबोध मनुष्य अपनी बहुत सारी ऊर्जा इस स्थान के द्वारा व्यय करता रहता है। उसे समझ ही नहीं कि इस ऊर्जा को ऊपर उठाकर प्रजोत्पत्ति और संभोग के आनंद के उपरान्त अन्य भी अद्भुत और सौन्दर्यपूर्ण सर्जन हो सकता है।

जन्माग्र के बाद का स्थान है मूलाधार। वाकई में वह विश्व का मूल आधार है। क्योंकि इस मूलाधार चक्र में रहस्यमयी क्रिया हो रही है। वह स्त्री बीज और पुरुषबीज बनने का राज है। उसकी वजह से तो जन्माग्र स्थान की महिमा है।

योग शास्त्र कहता है कि मूलाधार चक्र के बिल्कुल निकट जैविक ऊर्जा का धोधा ऐसी कुंडलिनी शक्ति सुषुप्त रूप में पड़ी है। अगर मनुष्य इसे जगा ले तो वह असाधारण बन जाता है। सिद्ध बन जाता है। परम तृप्ति का अनुभव करता है। दुनियाँ में रहकर भी ऊपर उठ जाता है दुनिया से।

बुद्ध और महावीर जैसे महापुरुषों के साथ यही घटा था। भले शब्द अलग थे उन लोगों के।

किसी के साथ कुंडलिनी जागरण की घटना सहज घट जाती है। किसी को अनंत ध्यान विधियों से गुजरना पड़ता है।

मूलाधार को योग शास्त्र गणेश स्थान भी कहता है। एक अर्थ में इस स्थान के कारण ही सृष्टि का श्रीगणेश हो पाया। जिस मनुष्य का यह चक्र बिलकुल निष्क्रिय होता है वह प्रजोत्पत्ति के लिए सक्षम नहीं रहता।

शिवपुराण में एक प्यारी कथा है। ब्रह्मा ने अनेक प्रकार की सृष्टियाँ रचीं परंतु उसे संतोष नहीं हुआ। फिर शिव को बिनती की और शिव ने योग बल से अपने शरीर के दो भाग में से नर और नारी प्रगट करके उन दोनों को मैथुन सृष्टि आगे बढ़ाने का आदेश दिया। आज भी प्रत्येक मनुष्य अर्धनारेश्वर है। कुछ अंश उन्हें माँ के शरीर से मिलते हैं तो कुछ पिता की ओर से। मूल में ये मूलाधार चक्र नर-नारी के जन्म के लिए निर्णायक है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मैथुन क्रिया तो मनोभावानुसार दैहिक क्रिया है। कभी कभी तो केवल शारीरिक क्रिया ही बन जाती है। परंतु मनुष्य का आत्मांतिक लक्ष्य संसार नहीं होना चाहिए। उसका परम लक्ष्य तो मुक्ति ही है; शिव से उत्पन्न हुए हैं शिव में समा जाना है।

बूंद का जीवन तभी सार्थक होगा जब वह सागर रूप बन जाए। कहने का हेतु यह है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य केवल शारीरिक वासना की तृप्ति और मन की इच्छाओं की पूर्ति या प्रजोत्पत्ति नहीं होना चाहिए। यह सब तो पशु-पक्षी, जीव-जन्तु भी कर लेते हैं।

मनुष्य का अंतिम लक्ष्य होना चाहिए आत्मस्वरूप को जानना। उसे जानकर और समझकर वह अगर विषय वासना में उतरकर प्रजोत्पत्ति भी करेगा तो उसकी संतान ओजस्वी, तेजस्वी, पराक्रमी और महान होगी।

परंतु याद रहे, मूलाधार चक्र की शक्ति का उपयोग केवल शरीर सुख के लिए ही किया जाएगा, बिना किसी जाग्रति के ऊर्जा सिर्फ बाहर की ओर फैली जाएगी तो केवल जनसंख्या बढ़ेगी, व्यभिचार फैलेगा, मनुष्य जाति निस्तेज, नीर्वीर्य और ऐड्स जैसे रोगों का शिकार बन जाएगी।

मेरा कहना यह है कि जन्माग्र और मूलाधार की ऊर्जा केवल बाहर फैलने के लिए नहीं है। उसका अन्य सृजनात्मक उपयोग करके सृष्टि कार्य और शारीरिक माँग की पूर्ति के उपरांत उसका उर्ध्वीकरण करके एक के बाद एक केन्द्रों को जगाकर आपका और समाज का आध्यात्मिक उत्थान हो सकता है।

परंतु इसके लिए कुछ ध्यान विधियाँ अनिवार्य हैं। इनमें से एक विधि है द्वादशांत प्रवेश भाव ध्यान। मनुष्य का कंद स्थान यानि तीसरा केन्द्र। मनुष्य के बाहर की ओर भीतर की दुनियाँ को जोड़ता है। वह एक ओर जन्माग्र और मूलाधार की सहायता करता है तो दूसरी ओर नाभीस्थान को पुष्ट करता है, दो ऊर्जावाहक के मध्य के रजिस्टेन्स कोर्ड की तरह। ताकि दो छोर पर बहती ऊर्जा का सम्यक नियमन हो।

इलेक्ट्रीकल क्षेत्र में रजिस्टेन्स का बहुत बड़ा महत्व है। माईक से केमेरे में जाती आवाज जब स्पष्ट नहीं लगती है अथवा स्पीकरों से केमेरे में आती आवाज में अन्य तरंगें जब खलल पहुंचाती हैं तब अराजकता पैदा होती है। परंतु छोटा से एक रजिस्टेन्स उपकरण परिणाम को सुधार देता है।

वह दोनों स्थानों के बीच की कड़ी रूप बनकर परिणाम को सुलझा देता है। ऐसी ही भूमिका है कंद स्थान की। वह स्थान बहुत शक्तिशाली है। उसपर चित्त को स्थिर किया जाए तो दोनों ओर से लाभ होता है।

एक बात ध्यान से सुनें। नाभि स्थान मनुष्य का मन का स्थान है। इस बिन्दु पर लगाया हुआ ध्यान मन को शांत करता है। दूसरी ओर शरीर की मांग का सम्यक नियमन करता है।

उस नियमन के कारण बाहर की ओर निरर्थक फैली जा रही ऊर्जा बचकर, उर्ध्वमुखी होकर अनेक सुंदर कार्यों को करने लगती है, यह मेरा अनुभव है। आपके साथ जब ऐसा घटेगा तब आपको भी आश्चर्य होगा कि आपके द्वारा इतना अद्भुत घटित हो रहा है। यह क्या हो रहा है?

नाभि स्थान चतुर्थ स्थान है। इतना ही नहीं परंतु वह मन का जन्म स्थान है। कुछ लोगों को आश्चर्य हो सकता है और प्रश्न भी उठ सकता है कि क्या मनुष्य के मन का स्थान पेट में है? तो कैसे?

प्रिय साधको!

भारतीय मनीषियों ने कहा कि जैसा अन्न वैसा मन। याद रहे, ये कोई रूढ़ कहावत की मान्यता नहीं है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है। भारतीय ज्ञान शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य जो भोजन लेता है उसके सूक्ष्म भाग में से मन बनता है, मध्य भाग में से मांस बनता है और स्थूल भाग विष्टा बनकर शरीर के द्वारा बाहर फेंका जाता है।

अब जरा ध्यान दीजिए। मनुष्य के पास दो मुख हैं। यह सुनकर भी आपको आश्चर्य होगा। आश्चर्य इसलिए होगा कि अब आप आपके दूसरे मुख का विस्मरण कर गए हैं। यह विस्मरण इसलिए हो गया कि वह मुख बरसों से बंद बड़ा है। चलो उसका जरा पुनरस्मरण



कर लें।

बच्चा जब माँ के गर्भ में होता है तब वह अपनी नाभि के द्वारा भोजन लेता है माँ के शरीर में से। नौ महीने तक माता को जो भोजन मिलता है और इससे जो रक्त बनता है वह प्राणवायु युक्त रक्त नाभि के साथ जुड़ी हुई नाल द्वारा सीधा बच्चे को प्राप्त होता है। वही है बच्चे का भोजन, वही है बच्चे का जीवन।

वह नाल माध्यम है खुराक लेने का। जिससे बच्चा विकसित होता है, तृप्त होता है और उसका हृदय धबकता रहता है।

उस भोजन से ही नौ महीने के दौरान बच्चे में एक मन भी पैदा हो जाता है। कुछ भलाईयाँ, कुछ बुराईयाँ, कुछ आदतें बच्चे को सूक्ष्म रूप से मिल जाती हैं रक्त के द्वारा, वही मन है।

इसलिए तो हम कहते हैं कि कुछ बातें हमारे खून में हैं, जीन्स में हैं, इसे मिटाना करीब करीब असंभव है। परंतु ध्यान के द्वारा मनुष्य रूपांतरित होकर रक्त के संस्कारों को भी मिटा सकता है।

नाभि केन्द्र पर ध्यान करने से धीरे धीरे मन शांत हो जाता है। फिर बदलता जाता है और अदृश्य हो जाता है।

यात्रा लंबी है अगर छूटना है गलत संस्कारों से तो इस ध्यान यात्रा को करना ही पड़ेगी। धैर्य रखना पड़ेगा, कम से कम छयानवे दिन तक, ज्यादा से ज्यादा आवश्यकता के अनुसार।

जरूरत लगे कि संस्कार बहुत गहन रूप से चिटके हैं तो जीवन भर इस विधि में से गुजरो तो भी ज्यादा नहीं। आपको सहयोग मिलता रहेगा आपके आध्यात्मिक उत्थान में, अ-मन होने में।

अन्न से मन बनता है और मन की ग्रंथि इतनी सूक्ष्म है कि शरीर की काटपीट करके भी कोई उसे नहीं पकड़ पाएगा। फिर भी उसका सीधा संबंध है नाभि स्थान के साथ। अब तो विज्ञान ने भी इस बात का स्वीकार कर लिया है। नाभि स्थान मन का जन्म स्थान है, ऐसा भी कह सकते हो। इसलिए इस केन्द्र पर ध्यान करना अति आवश्यक है। मन को शांत करने के लिए और हकारात्मक रूप से विशेष सक्रिय करने के लिए ऋषि कहते हैं कि नाभि स्थान को ॐकार आदि दिव्य स्वरों के उच्चारण में व्यस्त रखो। इससे केन्द्र का शुद्धिकरण भी हो जाएगा, केन्द्र विशेषरूप से सक्रिय भी होगा और मन विसर्जित भी होगा।

प्रिय साधको!

पांचवां केन्द्र है हृदय। जो भावनाएं और भय का केन्द्र है। हर प्रकार के भाव मनुष्य के हृदय में उठते हैं। और भय का असर ज्यादा से ज्यादा पेट और हृदय पर आता है। जब मनुष्य क्रोध में होता है। तब उसका रक्त प्रवाह ज्यादा वेग से बहने लगता है। हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं। उसके शरीर में जब काम भड़क उठता है तब भी हृदय की गति बढ़ जाती है और श्वास जल्दी चलने लगती है। मन में कोई अपराधभाव होता है तब भी घबराहट की वजह से उसका दिल और तेजी से धबकने लगता है। ये सारी बातें सिद्ध करती हैं कि हृदय भावनाओं का स्थान है। भाव हजार हजार प्रकार के हो सकते हैं।

अगर ध्यान के द्वारा नाभि केन्द्र का अर्थात् मन का शुद्धिकरण हो गया तो हृदय का शुद्धिकरण आसानी से हो जाएगा। नाभि केन्द्र जब शुद्ध हो गया तब समझ लो कि आधा काम तो पूरा हो गया।

आपको पता है, कुछ लोगों को जब ज्यादा भय लगता है या चिंताएं हो जाती हैं तब उसका पेट काबू में नहीं रहता। उन्हें बार बार दस्त होने लगते हैं। यह सबूत है मन केन्द्र के भयभीत होने का।

मन शुभाशुभ विचारों को पैदा करता है और दृष्टिहीन हृदय में उसके अनुसार भाव पैदा होने लगता है। गुजराती में एक कहावत है – “हय्ये होय ए होठे आवे।” यह केवल किंवदंती नहीं है। यह हृदय का सूक्ष्म विज्ञान है। गलत भावों से मनुष्य के हृदय में जहर उत्पन्न होने लगता है।

आधुनिक विज्ञान ने भी साबित कर दिया है कि प्रसन्नता, आनंद, उत्साह, सम्यक श्रम इत्यादि से फायदाकारक कोलेस्ट्रॉल बढ़ता है और इर्षा, घृणा, निंदा, उपेक्षा, चिंता, क्रोध, तथा भय आदि भावों से नुकसान कारक कोलेस्ट्रॉल बढ़ता है। जिसे पैथोलोजिस्ट एच.डी.एल. और एल.डी.एल. कहते हैं।

प्रिय साधको!

मैं आपसे कहती हूँ कि मन के विचारों को अपना भाव न दो। उसके साथ हृदय को न जाने दो। परंतु यह सहजता से संभव नहीं हो सकता है। ध्यान शास्त्र कहता है कि ध्यान के द्वारा एक एक केन्द्र को विशुद्ध और सक्षम बनाते जाओ आध्यात्मिक रूप से। ताकि दो केन्द्रों के बीच में विरोधाभास का प्रश्न ही न उठे।

अपने भाव केन्द्र और विशेष अर्थ में प्रेम केन्द्र को भ्रष्ट मत होने दो। वैसे भी हृदय बहुत नाजुक है और बड़ी जिम्मेदारी है उसपर।

पूरे शरीर में वह रक्त पहुंचाता है। उसका भार मत बढ़ाओ। संभाल लो अपने दिल को।

कभी कभी दूसरों को प्रेम करने के लिए मनुष्य अपने दिल को बहुत दुख देता है, बहुत तकलीफ देता है। मैं कहती हूँ कि संयम रखो अपने भावों पर। पहले अपने दिल को प्रेम करो बाद में दूसरे को। ये स्वार्थ नहीं हैं। मेरी बात को समझना। हृदय तो परमार्थ का केन्द्र है। प्रेम, दया, करुणा, सेवा आदि भाव हृदय में से ही बहते हैं। ये सब परमार्थ भाव हैं, संभाल लो हृदय को। ध्यान आपको बल देगा इसके लिए।

उतरो ध्यान में अपने हृदय स्थान पर ध्यान लगाओ। धीरे धीरे आप भावों की शुद्धि का अनुभव करेंगे। आपको लगेगा कि आप बदल रहे हैं। भय, घृणा, नफरत, तिरस्करा, पीड़ा, ईर्ष्या, राग-द्वेष सबकुछ तिरोहित हो जाएगा। और ये सब अवरण गिरते ही भीतर ही दर्शन हो जाएंगे उस परम प्रियतम के। फिर वहाँ आप नहीं रहेंगे। आपके रूप में केवल वही रहेगा।

छठा केन्द्र है कंठ। जहाँ वाणी की उत्पत्ति का सीधा संबंध है, सूक्ष्म उच्चारण की प्रक्रिया जीव्हा करती है, परंतु स्वर और शब्द प्रगट होते हैं कंठ स्थान के सहयोग से। वह ध्वनियों को उत्पन्न करता है। हृदय की भांति यह भी प्राण का एक विशेष स्थान है। वहाँ से प्रवाहित होते होते प्राण अवरुद्ध होने से या उस स्थान पर चोट पड़ने से मनुष्य मर सकता है।

प्रिय साधको!

जैसे नाभि स्थान से सीधा संबंध हृदय स्थान के साथ हैं वैसे ही हृदय स्थान का सीधा संबंध कंठ स्थान से है। मनुष्य के शब्द से ही उसके हृदय का पता चल जाता है। जिसका हृदय केन्द्र जागरूक है उसकी वाणी शुद्ध, सत्य, स्पष्ट, ओजस्वी, प्रेरणादायक, उत्साहपूर्ण, आध्यात्मिक और शांति देने वाली होगी।

अशुद्ध मन वाले मनुष्य का वाणी अस्पष्ट, द्विअर्थी, उलझन पैदा करने वाली, भटकाने वाली, आग्रहयुक्त, अहंकारयुक्त, दुरुक्तियुक्त (गाली), असत्ययुक्त और चुभने वाली होती है।

हजारों हजारों मनुष्य के मन का अभ्यास करने के बाद मैं यह कह रही हूँ। ये मेरा अनुभव है। अगर आप साधना में थोड़े भी उतरे हैं तो आपको भी मनुष्य की वाणी से पता चल जाएगा कि सामने वाला क्या है? कैसा है? और उसकी आंतरिक गुणवत्ता कितनी है?

प्रिय साधको!

वाणी और नेत्र दो सीधे और प्रमुख आधार हैं मनुष्य के मन को पढ़ने का।

द्वादश स्थान में से कंठ स्थान पर ध्यान करने से वाणी विशेष रूप से ओजस्वी होती है। वाणी के दोष से साधक मुक्त हो जाता है। आंतरिक जाग्रति के परिणाम स्वरूप वाणी से होते हुए कर्म के बंधन छूट जाएंगे।

बहुत सारे सिद्धों ने इस ध्यान के माध्यम से सहज ही वचन सिद्धि प्राप्त कर ली है। उनकी वाणी में ही शास्त्र उतरने लगे थे। स्वयं सरस्वती प्रवाहित होने लगती थी उनकी वाणी से।

प्रिय साधको!

विश्व की कोई यूनिवर्सिटी जो कार्य नहीं कर सकती है। वह करिश्मा हो जाता है ध्यान के विद्यालय में।

जिसके कंठ स्थान तक के केन्द्र ध्यान के द्वारा विशुद्ध हो चुके हैं उसके तालुमूल से अमृत झरने लगेगा। ऐसा योग शास्त्र का मत है। योगी जन तालुमूल में से अमृत पाने की विधि को खेचरी मुद्रा कहते हैं। परंतु यहाँ मुझे मुद्राओं की बात नहीं करनी है।

मैं आपको मात्र ध्यान में ही ले जाना चाहती हूँ। ध्यान एक ऐसी विधि है कि एक बार इसे आप जो ठंग से समझ लें तो फिर दूसरों पर ज्यादा निर्भर नहीं रहना पड़ता है। मैं चाहती हूँ कि आप दूसरों पर कम से कम निर्भर रहो। परम स्वतंत्रता में जिओ और जान लो भीतर के स्वतंत्र परमात्मा को।

हृदय स्थान और कंठ स्थान की शुद्धि के कारण तालुमूल से कुछ रस झरने लगते हैं। जो मनुष्य की आयुष्य और तेज को बढ़ाकर चित्त को शुद्ध रखता है। पाचन शक्ति को सतेज करता है और मन तिरोहित हो जाता है।

सातवे स्थान के बाद आप विधि को आगे बढ़ाते हुए आपकी समग्र ऊर्जा जिस स्थान को देते हो उसे भ्रूमध्य स्थान कहा है। वह ज्ञान चक्षु है।

प्रिय साधको!

ज्ञान चक्षु पर बहुत सत्संग हो चुका फिर भी जितनी बार समझो, जितना स्मरण करो उतना ही हितकर है। ध्यान की बहुत सारी विधियाँ ऐसी हैं कि जो एक दूसरे से बहुत करीब हैं। फिर भी थोड़ा थोड़ा फर्क है। उस फर्क के प्रति ही ध्यान देना है।

ज्ञान चक्षु तक मन और इन्द्रिय जगत की सत्ता होती है। ज्ञान चक्षु से लेकर सहस्रार तक के विस्तार को ज्ञान क्षेत्र या ज्ञान केन्द्र कह

सकते हैं।

ज्ञान चक्षु केन्द्र में परम ज्ञान का उद्घाटन होता है। सात स्थान के शुद्धिकरण से लगभग सारे शरीर की सूक्ष्म शुद्धि हो जाती है। और वह शुद्ध विशुद्ध ज्ञान के जागरण में मदद करने लगती है।

भ्रूमध्य स्थान को लेकर ध्यान शास्त्र में और योग मार्ग में कई विधियाँ हैं। वह एक दूसरे से अनुसांगिक लगती हैं। फिर भी थोड़ा थोड़ा भेद है। उनमें से जो विधि अनुकूल हो उसे अपनाईए और आरंभ कीजिए आपकी ध्यान साधना का।

द्वादशांत प्रवेश ध्यान एक अद्वितीय विधि है असाधारण विधि है। बहुत शक्तिशाली है। इस विधि में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और शरीर सबका शुद्धिकरण एक साथ हो जाता है। विधि लंबी है, समय भी ज्यादा लेगी। एक एक स्थान के लिए कम से कम छयानवे छयानवे दिन देने पड़ेंगे। परंतु आपमें अगर धैर्य है और समर्पण के साथ निरंतर अभ्यास करने की क्षमता है, तो एक असाधारण परिणाम आ सकता है। साधक इस ध्यान विधि से पूर्णता का अनुभव कर पाएगा। इशावास्य का साक्षात्कार हो जाएगा।

एक के बाद एक स्थानों में चित्त को ध्यान के द्वारा केन्द्रित करके स्वयं में घटित होते हुए प्रतिपल बदलाव को देखना अत्यंत रोमांचक और आनंदप्रद होता है।

मैंने ऐसे आनंद का अनुभव खूब लिया है। इस सत्संग के द्वारा मेरे उस आनंद को बांट रही हूँ आपके साथ और आपको प्रेरित कर रही हूँ ध्यान के लिए।

भ्रूमध्य स्थान जाग जाने के बाद जीवन में शिव दृष्टि कार्य करने लगेगी। फिर सारे निर्णय परमात्मा लेंगे। आपकी सारी चिंता मिट जाएगी। एक बार अनुभव करके तो देखो।

परंतु यहाँ रुक नहीं जाना है। यहाँ से भी आगे बढ़ना है। योगियों ने देखा होगा कि परमात्मा के निर्णय में भी बुद्धि अज्ञानवश दखल देती है। इसलिए बुद्धिस्थान पर ध्यान करके उसे भी विशुद्ध करना पड़ता है ताकि आपकी बुद्धि सत्य में दखल न दे। ज्यादा चतुराई न करे।

वह स्वयं रूपांतरित होकर प्रज्ञा का दर्जा प्राप्त करे। जिसे ऋषि पतंजलि ऋतंभरा प्रज्ञा कहते हैं। अर्थात् सत्य ही जिसका अंबर है (वस्त्र और सिंगार)। सत्य ही जिसकी शोभा है, और सत्य ही जिसकी मर्यादा है।

ऐसी अनूठी अवस्था जब आपकी बुद्धि प्राप्त कर लेगी तब सारा अहंकार गिर जाएगा। क्योंकि शरीर, मन, बुद्धि, हृदय और मस्तिष्क सबकुछ परिशुद्ध हो गए। अहंकार की कहीं जगह ही न बचे। अहंकार रहेगा कहाँ? फिर गिर जाएगा सारा अहंकार। शिव कहते हैं कि अभी भी कुछ स्थान बाकी हैं। दसवां स्थान है सहस्रार बिन्दु। जहाँ सूक्ष्म रूप से सब नाड़ियाँ मिलती हैं। उसे योग शास्त्र सहस्र दल कमल भी कहते हैं।

उस केन्द्र पर ध्यान करने से शरीर की हजारों हजार नाड़ियाँ, मन के हजारों हजार विचार और इच्छाएं, हृदय के असंख्य भाव और बुद्धि का अनंत व्यापार शांत हो जाएंगे। वही है समाधि।

जहाँ होनेपन का बोध भले रहे अर्थात् अस्तित्व बोध भले रहे परंतु कर्ता भाव बिलकुल अदृश्य हो जाता है।

ध्यान विज्ञान कहता है कि अभी भी ध्यान जारी रखो। आपको होगा कि अब क्या बचा? अब क्यों?

द्वादश स्थान में से और दो स्थान अभी बाकी हैं। शक्ति और व्यापिनी।

योगीजन कहते हैं कि मनुष्य की शिखा के अंत भाग तक अर्थात् केश के अंतिम बिन्दु तक शक्ति केन्द्र सक्रिय है उस पर भी ध्यान करो। केवल ध्यान का आनंद मत लो। ध्यान को बांटो भी।

शक्ति बिन्दु पर ध्यान करने से आपमें से ध्यान प्रवाहित होने लगेगा, बहने लगेगा, ये ग्यारहवां स्थान है। ये परम परमार्थ का बिन्दु है।

और अंत में बारहवां स्थान, व्यापिनी। व्यापिनी स्थान को ध्यान शास्त्र मनुष्य का बारहवां शक्ति केन्द्र मानता है।

व्यापिनी स्थान मनुष्य के इर्द गिर्द की छः फिट की जगह तक को माना गया है। जहाँ मनुष्य के स्वभाव की तरंगें बहती रहती हैं।

शिव कहते हैं कि ध्यान को इतना विकसित करो कि शरीर में से बहते बहते आपका ध्यान आपके चारों ओर फैलने लगे। आपके इर्द गिर्द या आपकी परिधि में जो कोई भी आए आपका ध्यान, आपकी शांति, आपका अध्यात्म उसे घेर ले। उसको आकर्षित करे ध्यान के प्रति। उसे बदलने लगे।

यही सही बदलाव और प्रभाव है। ऊपर से थोपी हुई चीजें ज्यादा असर नहीं करती हैं। धर्म गुरुओं के द्वारा थोपे हुए नियम कभी कभी मनुष्य को ज्यादा विकृत और नकारात्मक कर देते हैं। ध्यान कहता है कि आपके भीतर एक कुदरती व्यवस्था है उस व्यवस्था में उतरो। अगर उस व्यवस्था का अनुभव आपको हो गया तो सहजता से बाहर की अव्यवस्था व्यवस्थित होने लगेगी। परंतु किसी भी

व्यवस्था को ऊपर से थोपने का प्रयास एक अपराध या मूढ़ता है। मनुष्य को ध्यान में ले जाओ। सब ठीक होने लगेगा।  
प्रिय साधको!

आपके ध्यान को इतना घनीभूत करो, इतना गहन बनाओ कि वह ध्यान चक्र आपको पूर्ण रूप से सुरक्षित कर दे। और अन्य को सुव्यवस्थित करने में चुपचाप मदद कर दे।

ध्यान शास्त्र कहता है कि कोई सद्बुद्धिवान मनुष्य ही इस विधि से चित्त को एकाग्र कर सकता है। साधारण जन तो पलायन कर जाएगा धैर्य के अभाव के कारण। परंतु मुझे सुनने वाले में असाधारण शक्ति पड़ी है। ऐसे भरोसे के साथ ही मैं कार्य कर रही हूँ।  
प्रिय साधको!

इस विधि से शरीर, मन और बुद्धि की चंचलता अदृश्य हो जाती है। मन अदृश्य हो जाता है। साधक शिवरूप बन जाता है और ज्वलंत शक्ति का अनुभव करने लगता है।

इस साधना से साधक निर्विकल्प समाधि में पहुंचकर परम विराम को प्राप्त करता है। विश्व में इससे बड़ी सिद्धि या आनंद कौन सा हो सकता है? तो अब उतरो विधि में।

## धरणा - ३३

### हृदयाकाश भाव ध्यान

प्रिय साधको!

वैसे तो शरीर में सूक्ष्म रूप से काम करने वाले बारह केन्द्र हैं। जिसकी कई बार बात हो गई है। वह एक कुदरती, आंतरिक, जैविक और आध्यात्मिक व्यवस्था है। विश्व की सारी व्यवस्थाओं का आधार है। उन बारह केन्द्रों में से छः केन्द्र प्रमुख हैं। जिसे हम षड्चक्र के नाम से जानते हैं। और उन छः केन्द्रों में से भी तीन अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। जिन्हें हम काम केन्द्र, प्रेम केन्द्र, और ज्ञान केन्द्र कह सकते हैं।

प्रेम केन्द्र को हम भावना केन्द्र भी कह सकते हैं। सुख-दुख, भय-ग्लानी आदि भावों का भंडार है मनुष्य का हृदय। ध्यान शास्त्र कहता है कि हृदयाकाश पर ध्यान करो।

मैंने आकाश जैसा साक्षीभाव कहीं भी नहीं देखा है। वह है भी और नहीं भी है। वह शून्य होते हुए भी चीजों को सक्रिय रहने के लिए अवकाश देता है। पंचतत्त्वों में से आकाश तत्व अदृश्य फिर भी दृश्य ऐसी एक अद्भुत व्यवस्था है।

इस ध्यान में साधक को एक खास ध्यान यह रखना है कि हृदय अर्थात् जो शरीर का एक अव्यव है जो कुछ यांत्रिक प्रक्रिया कर रहा है उस स्थूल आकार पर ध्यान नहीं करना है। परंतु उसके भीतर के आकाश पर ध्यान करना है।

प्रिय साधको!

इस विधि में उतरने से पहले एक विशेष बात भी समझ लें। अपने शरीर और मन को जानो। उपरांत एक बात का हमेशा स्मरण रखो कि शरीर और मन आपके स्थूल और सूक्ष्म अंग हैं परंतु आप न मन हैं न शरीर। हाँ, शरीर और मन के बिना आपका स्थूल अस्तित्व असंभव है। फिर भी मैं कहूंगी कि अध्यात्म के मार्ग में उसे सर्वस्व मानकर नहीं चलना।

एक बात और समझ लें आपका शरीर पंचमहाभूत का बना है जिसे पंचतत्त्व और पंचीकरण क्रिया भी कहते हैं। वे पंचकरण हैं – अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश।

ये सभी तत्व मनुष्य के अस्तित्व के लिए अनिवार्य हैं। परंतु जहाँ से आध्यात्मिक विश्व का प्रारंभ होता है वहाँ आकाश तत्व सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है।

हाँ, शरीर की आंतरिक क्रियाएं, जैसे वायु और रक्त का शरीर में घूमना, भोजन अन्नाशय तक पहुंचना और संग्रहीत होना, आंखों में दृश्य का खींचना इत्यादि के लिए भी आकाश तत्व अनिवार्य है।

प्रिय साधको!

आकाश कोई चीज नहीं है। इसे आप पकड़ नहीं पाओगे, ना ही छू पाओगे, ना ही मुट्ठी में भर पाओगे फिर भी उसका अस्तित्व है।

आकाश का अर्थ है खाली जगह, शून्यता। आकाश नहीं होता तो पृथ्वी और ब्रह्मांड के अस्तित्व की संभावना ही मिट जाती। आकाश की वजह से विश्व अर्थपूर्ण है। विश्व में आकाश होने के कारण अर्थात् खुलापन, जगह या शून्यता होने के कारण जगत विकसित हो पाया।

हकीकत में विश्व में आकाश है ही नहीं। आकाश में विश्व है। जरा सोचो दुनियाँ में आकाश नहीं होता तो क्या होता? दुनियाँ में



जगह नहीं होती तो क्या होता मनुष्य का ? मनुष्य कैसे पैदा होता ? कैसे श्वास लेता ? कैसे घूमता ? कैसे फिरता ? कैसे करता अपनी सारी क्रियाएं ? कुदरत के इन रहस्यों के संदर्भ में मनुष्य अगर सोचेगा ध्यान से तो भी घड़ीभर के लिए ध्यान लग जाएगा ।

परंतु मनुष्य ऐसा नहीं करता है । मशीनों के करीब आया हुआ मनुष्य कुदरत से दूर चला गया । परिणाम यह आया कि आज उसे ध्यान में ले जाने के लिए अनेक अनेक प्रकार से प्रेरित करना पड़ता है । निःशब्द में ले जाने के लिए असंख्य शब्द बोलने पड़ते हैं । कैसी है यह विडम्बना ?

मनुष्य के बाहरी अस्तित्व के लिए तो स्पेस की जरूरत है परंतु परमात्मा ने मनुष्य के भीतर भी अनेक स्थानों और अव्यवस्थाओं में स्पेस रखा है । ताकि उन अव्यवस्थाओं में जीवनदायक महत्वपूर्ण क्रियाएं घटित हो सकें ।

प्रिय साधको !

अब आइए विधि की ओर । साधक को चित्त स्थिर करना है हृदय के भीतर के स्पेस पर, हृदय के भीतर की खाली जगह पर तीव्र भाव के साथ ।

एक विशुद्ध स्थान में शुद्ध आसन लगाकर अनुकूल वस्त्र धारण करके बैठ जाओ ध्यान के लिए । आंखें बंद करके मन को लगाओ हृदय स्थान पर । विचारों को स्थिर करो उस भीतरी आकाश पर ।

तीव्र भाव करो कि हृदयाकाश में सबकुछ लीन हो रहा है । हो सकता है पूर्व धारणा की वजह से प्रारंभ में स्थूल हृदय दृष्टिगोचर हो । परंतु धीरे धीरे उस छोटे से दिल में विराटता का अनुभव होने लगेगा । हृदय की गति सहज और स्वाभाविक हो जाएगी । सारे दृश्य और विचार अदृश्य हो जाएंगे ।

ध्यान में एकाग्रता आते ही सब इन्द्रियाँ हृदयाकाश में लीन हो जाएंगी । अर्थात् इन्द्रियों की शक्ति अंतरमुखी होकर चंचलता की जगह शांति का अनुभव करने लगेगी । उनका बाहर भटकना बंद हो जाएगा ।

प्रिय साधको !

मनुष्य का पूरा जीवन शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के भोग में ही गुजर जाता है । उन तन्मात्राओं की वजह से और उपभोग की वृत्ति में प्रवृत्त होकर शरीर क्षीण होता जाता है ।

और ध्येयहीन एवं दिशाहीन अवस्था में ही जीवन बीत जाने का अफसोस भी रह जाता है ।

प्रिय साधको !

मैं बार बार कहती हूँ कि आपने शरीर और इन्द्रियों को मात्र ओढ़ा है, यह एक व्यवस्था है । जैसे आप घर में रहते हैं वैसे शरीर आपकी दिव्य चेतना का निवास स्थान है । परंतु मनुष्य विस्मरण कर गया है अपने मूल स्वरूप का । कुछ समय के लिए खड़ी की गई बाहरी व्यवस्था को शाश्वत समझकर आंतरिक व्यवस्था को भूल गया है । जिसकी वजह से बहुत सारी अव्यवस्थाएं पैदा होती हैं ।

एक और बात भी याद रहे कि मन को इन्द्रियाँ खुराक देती रहती हैं । और इन्द्रियों को मन । राजकीय पार्टियों के गठबंधन की तरह मन और इन्द्रियाँ परस्पर पुष्ट होती रहती हैं ।

परंतु जब ध्यान के द्वारा मन किसी विशेष स्थान में विलीन हो जाता है । तब मन और इन्द्रियों को विषय और सहयोग मिलना बंद हो जाता है तब वे भी स्थिर होने लगते हैं ।

प्रिय साधको !

मैंने अनेक बार कहा है कि मनुष्य की इन्द्रियाँ असंख्य चीजें ग्रहण करती रहती हैं और बहुत सारी चीजें बाहर फेंकती रहती हैं, दोनों प्रक्रिया में ऊर्जा का क्षय तो होता ही है ।

पलकें झपकने के लिए भी ऊर्जा चाहिए, श्वास लेने के लिए भी ऊर्जा चाहिए और मन के पैदा किए हुए विषयों पर सोचने के लिए भी ऊर्जा चाहिए ।

हाँ, भोजन के द्वारा मनुष्य ऊर्जा प्राप्त करता है । परंतु भोजन उपरांत भी कुछ ऊर्जा चाहिए मनुष्य को । आज के माहोल में वह ऊर्जा उसे नहीं मिल रही है पर्याप्त रूप से ।

जैसे कि शुद्ध जलवायु की ऊर्जा, सूर्य प्रकाश की ऊर्जा, शांति और स्नेह की ऊर्जा, सत्संग और ध्यान की ऊर्जा ।

ये सब ऊर्जाएं सूक्ष्म स्रोत से आती हुई ऊर्जाएं हैं । उनका नाप-तोल नहीं हो सकता । सबकुछ कैलरी की भाषा में नहीं समझा जाता । डायटिस्ट खुराक के छः घटकों को ही जानता है ।

जिसमें अध्यात्मिक समझ नहीं है ऐसा अच्छे से अच्छा डॉक्टर और डायटिस्ट भी शायद मेरी बात को नहीं समझ पाएगा ।

मैं कहती हूँ कि सूक्ष्म ऊर्जा स्रोतों से आपकी इम्यून सिस्टम को बल मिलता है, चित्त प्रसन्न रहता है, रोग प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है, शरीर की अंतःस्त्रावी ग्रंथियाँ सुचारू रूप से काम करने लगती हैं।

सामान्य मनुष्य को इस बात की सीधी समझ नहीं है। परंतु सत्संग, कथा और धर्म स्थानों में, बाग-बगीचे में या समंदर तट पर जो भीड़ दिखाई देती है वह सबसे बड़ा सबूत है कि मनुष्य को भोजन के उपरांत भी कुछ सूक्ष्म ऊर्जा की जरूरत पड़ती है।  
प्यारे साधको!

ध्यान के द्वारा भीतर के विश्व में उतरकर आप अपार ऊर्जापूर्ण माहौल प्राप्त कर सकते हैं। ध्यान मनुष्य के मन को शांत, स्थिर और प्रसन्न होने का मौका देता है। ध्यान में एकांत और शांति के कारण तथा साधक के दृढ़ संकल्प की वजह से मन की गतिविधियाँ कमजोर पड़ने लगती हैं। मन तिरोहित हो जाता है ध्यान में। और मन से मुक्त होने की वजह से मनुष्य आनंद का अनुभव करता है, हल्केपन का अनुभव करता है।

आपकी अजाग्रत अवस्था में मन आप पर हावी रहता है। ध्यान के कारण सजग अवस्था का निर्माण होता है जिससे मन की सत्ता क्षीण हो जाती है और शुद्ध चैतन्य की सत्ता का बोध जगता है।

शरीर के कुछ केन्द्र ऐसे हैं कि जहाँ चित्त तुरंत स्थिर हो जाता है। ऐसे केन्द्रों में से एक केन्द्र है हृदय स्थान। हृदय की धड़कनों का हमें कई बार अनुभव होता है। अर्थात् हम उस केन्द्र के परिचय में ज्यादा हैं। जिसे अनाहत चक्र भी कहते हैं। ज्यादा परिचय होने के लिए उसके साथ तदात्म्य होना आसान बन जाता है।

हृदयाकाश पर चित्त को एकाग्र करते करते जब विचार और शरीर अदृश्य हो जाते हैं और केवल शुद्ध चेतना ही बह रही होती है तब हृदयाकाश में समग्र प्राणऊर्जा प्रविष्ट होकर विराटता का अनुभव करने लगती है।

समग्र इन्द्रिय जगत भी अंतरमुखी होकर हृदयाकाश में विलीन हो जाता है। तब साधक अनन्य चेता बन जाता है।

हृदयाकाश में स्थिर होने के बाद ध्यानी एक साधारण जीव न रहकर असाधारण अथवा अनन्य अर्थात् उसके जैसी कोई अन्य चेतना नहीं है – ऐसा परमशक्तिपूर्ण बन जाता है।

प्रिय साधको!

बड़ा प्यारा ध्यान है यह। उतरो विधि में। लगाते रहो इस ध्यान को छयानवे दिन तक। जब आप हृदयाकाश में ही अपने परमात्मा को पा लेते हो तब मन अदृश्य हो जाएगा। फिर बार बार उसे स्थिर करने के आयास प्रयास से आप हमेशा हमेशा के लिए मुक्त हो जाएंगे। जब मन है तो मन के प्रश्न हैं, मन तिरोहित ही हो गया है तो किसके साथ करेंगे आयास प्रयास ?

आपको प्रश्न उठ सकता है कि फिर शारीरिक क्रियाएं और दुन्यवी व्यवहार नहीं रहेंगे ? तो अब ध्यान से सुनिए। उसका आधार आपके स्वभाव के ऊपर है। आपके आंतरिक ढांचे के ऊपर है। आपकी प्रकृति के ऊपर है।

बहुत सारे अंतरमुखी साधक हृदयाकाश में आत्मदर्शन करके चुप हो गए हैं और खुद को छोड़ दिया है अस्तित्व के भरोसे। मैंने देखा है ऐसे ध्यानीयों का क्षेम कुशल भी अस्तित्व बहुत अच्छे ढंग से चलाता है।

अगर साधक बहिरमुखी है तो हृदयाकाश में आत्मदर्शन कर लेने के बाद भी दुनियादारी एक खेल की तरह जारी रहती है। वे व्यवहार और संसार से दूर जाने की कोई चेष्टा नहीं करते हैं। फिर भी उनका ध्यान, उनकी साधना उनके कार्यों में दिखाई देता है।

ऐसी आत्माओं का व्यवहार चलता है पूर्ण जाग्रति की छाया में। उसके भीतर के परमात्मा बाहर के परमात्मा के साथ ताल मिला लेते हैं। तुलाधर वैश्य की भांति।

हृदयाकाश में जिसकी वृत्तियाँ विलीन हो गई हैं। वह आत्म में से महात्मा बन जाता है। फिर वह मन का गुलाम नहीं रहता परंतु उसका परिशुद्ध मन उसकी मदद करने लगता है।

राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, जैसी विभूतियों को अनन्य चेता कह सकते हैं। राम और कृष्ण अनन्य चेता होने के बाद भी संसार के नाटक में अपनी भूमिकाएं अदा करते रहे, कुशल अभिनेता की भांति। क्योंकि वह उसका स्वभाव था। उसकी भीतरी व्यवस्था ऐसी थी कि वे दुनियादारी से ताल मेल बिठा सकते थे। बुद्ध और महावीर से छूट गया संसार क्योंकि वे अंतरमुखी थे। उसकी भीतरी व्यवस्था को बाहर के नाटक का स्वीकार करना आवश्यक नहीं लगा। त्याग और भोग अपनी अपनी स्वतंत्रता की बात है। परंतु केन्द्र में है, आत्मदर्शन।

ध्यान के द्वारा हृदय की विशालता में उतरना सीखो। उसमें निवासी प्राणशक्ति रूपी परमात्मा की विराटता का अनुभव करो। उसमें खो जाओ, उठने लगे ऊपर, उस आकाश में फैलाओ अपने पंखों को, ध्यान आपको पंख दे रहा है।

यह उड़ान भीतर की है। अपने भीतर के आकाश के मालिक केवल आप ही हैं। उस एयर-वे में किसीका प्रवेश नहीं है, उसके लिए

कोई चार्ज नहीं है। वहाँ किसी का प्रवेश नहीं है। वहाँ केवल आपकी चेतना को ही उड़ना है। तो उड़ो, स्वयं को ऊपर उठाओ और साधना करते करते बन जाओ अनन्य चेता। एक बार उस आकाश का दर्शन हो गया तो शाहों के शाह बन जाएंगे। यही हैं भगवदता के क्षण, यही है आत्मा का परमात्मा में रूपांतरित होने का क्षण, यही है प्रबद्धावस्था का भव्य आगमन, उसका स्वागत कर लो।

धरणा - ३४

## प्राणउर्ध्वगति भाव ध्यान

प्रिय साधको !

कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ जैसे सांसारिक और सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी हैं वैसे ही भीतर के बाहर स्थान जैसे कि जन्माग्र, मूलाधार, कंद, नाभि, हृदय, कंठ, तालुमूल, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरंध्र, शक्ति और व्यापिनी इत्यादि आध्यात्मिक जीवन के लिए उपयोगी हैं।

सांसारिक जीवन में भी उन स्थानों का अथवा सूक्ष्मांगों का महत्व है परंतु सम्यक समझ और जाग्रति के बिना, उनके कार्यक्षेत्र को जाने बिना, उनके प्रभाव का अनुभव लिए बिना आप आध्यात्मिक अनुभव नहीं कर सकते।

आंतरिक केन्द्र बाहर के जीवन में मदद कर सकते हैं परंतु बाहरी केन्द्र आंतरिक केन्द्रों के जागरण के बिना आपकी आंतरिक मदद नहीं कर सकते। इसीलिए शरीर के बाहरी अंगों को स्थूल कहा और भीतर के अंगों को सूक्ष्म।

स्थूल का अर्थ है जिसके पास अपनी कोई दृष्ट नहीं है। कोई स्वयं समझ नहीं है, अपनी कोई खास सत्ता नहीं है, फिर भी है, दिखाई देता है।

सूक्ष्म का अर्थ है जो दिखाई नहीं देते हैं परंतु वे स्वयं की भी मदद कर सकते हैं और दूसरों की भी मदद कर सकते हैं। उन की अपनी सत्ता है। उनकी अपनी दृष्टि है स्थूल दृष्टि से नहीं दिखाई देने पर भी वह सारा संचालन और अनुसाशन करता है।

प्रिय साधको !

यहाँ हम प्राण उर्ध्वगति ध्यान विधान की ओर जा रहे हैं। इस विधि के लिए तंत्र विज्ञान कहता है कि प्राणों को ऊपर उठाते जाओ और शरीर के भीतर के बारह सूक्ष्म स्थानों तक पहुंचाओ।

यह साधना करते करते साधक को अनुभव हो सकता है कि शरीर पर चीटियाँ रेंग रही हैं। द्वादशांत तक प्राणशक्ति विस्तृत होते होते और उर्ध्वगामी होते होते, मन निवृत्त हो जाएगा और साधक को परम सुख की अनुभूति होगी।

सूत्र साहित्य बड़ा प्यारा और अद्भुत है। भारत में एक समय ऐसा था कि लोग थोड़े में बहुत समझ जाते थे, समग्र भारत के पास एक आध्यात्मिक चित्त था, ध्यान विधियाँ भारत की देन हैं, भारत में से ही ये सूत्र गए हैं अन्य देशों में और नाम बदलकर वापस आए हैं।

प्राचीन काल में ज्ञानी, ध्यानी और पहुंचे हुए भक्तों के कुछ शब्दों के इशारों से ही लोग समझ जाते थे कि वे क्या कहना चाहते हैं? बात का हार्द या तत्व क्या है? इस समझ की वजह से ही तो भारत विश्व गुरु बना। परंतु अतीत की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। सैंकड़ों साल पहले मनुष्य का चित्त आध्यात्मिक, हृदय में ब्रह्म जिज्ञासा और विशुद्ध माहौल था। तब मनुष्य सरल था।

सरल मनुष्य के लिए सबकुछ सरल बन जाता है। कुटिल या चालाक आदमी सरल बात को भी टेढ़ी बना देता है। सरल काम को कठिन बना देता है। उस कठिन या टेढ़ा बनाने में उसका स्वार्थ और अहंकार दोनों पुष्ट होते हैं।

करुणा की बात यह है कि मनुष्य शैक्षणिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी आदि क्षेत्रों में विकसित होता गया परंतु समय के साथ आध्यात्मिक रूप से दलित होता गया, दरिद्र होता गया।

आधुनिकता के नाम पर मानव सरलता की जगह चालाक होता गया। परमार्थी की जगह स्वार्थी बनता गया। बौद्धिकता के भ्रम में आध्यात्मिक दृष्टि से मूढ़ बनता गया।

मनुष्य जैसे जैसे अध्यात्म से दूर गया। वैसे वैसे उसकी आंतरिक समझ कुंठित होने लगी।

प्रिय साधको !

जिस विषय का माहौल नहीं रहता है, वह विषय समाज में से धीरे धीरे अदृश्य हो जाएगा। बहुत सारी कलाएं, हस्तकलाएं एवं ज्ञान की धाराएं अदृश्य हो गई हैं भारत में से।

भारत में अंतिम पांच सौ वर्ष में मंदिर मस्जिद करीब करीब पचास गुने बढ़ गए हैं। परंतु आध्यात्मिक समझ मिटती गई। ऐसा क्यों हुआ ?

क्योंकि मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे तो स्थूल हैं, वे तो एक मूक संदेश देते रहते हैं मनुष्य को। परंतु मनुष्य के मन में इतना शोर-गुल मच रहा है कि वह सुन नहीं पाता है उस मूक संदेश को। वह नहीं समझ सकता है उन इशारों को। वह नहीं समझ पाता है उन मंदिर की प्रतिमाओं के प्रतीकों को। ये कैसी करुणा है कि धर्म और धर्मस्थान बंटते गए और मनुष्य के जीवन में से धार्मिकता अदृश्य होती गई ?

आरती और आजान की ध्वनी भी मनुष्य को दिन में अनेक बार जगाने की कोशिश करती रहती हैं। परंतु आदमी बहरा सा बन गया है। ज्यादातर लोग समझते रहते हैं कि आरती का टाईम है इसलिए आवाज आ रही है डंकों की और नगारों की। उन्हें यह बोध नहीं है कि वह घंटारोह उन्हें जगा रहा है कि अब परमात्मा के निकट जा। नाद केवल मंदिर में ही नहीं गूंज रहा है, तेरे भीतर भी है। उतर खुद के भीतर। आँख बंद कर और सुन ले उन अनाहत नादों को।

आरती पूजा आज के दौर में पुजारी के लिए नौकरी बन गए हैं। रोजी रोटी बन गए हैं और दर्शकों के लिए थोड़ा चेंज, थोड़ा सात्विक मनोरंजन, थोड़ा टाइम पासिंग।

मैं जब कभी भी दूर से देखती हूँ मंदिर में बढ़ती भीड़ को तो वहाँ हजारों में से एकाद भक्त मुश्किल से नजर आते हैं। ज्यादातर तो चलते फिरते पुतले एक दूसरों को देखते हैं, ताकते हैं, मेरी तेरी करते हैं।

धर्म स्थान में भी शेर बाजार, इन्शोरन्स और घोटालों की बातें चलती रहती हैं। स्त्रियाँ पापड़ और अचार की बात करती हैं, मंदिर की सीढ़ी पर बैठकर। वे कैसे ऊपर उठ पाएंगी ?

भगवान के सिंगार को ही देखा जाता है और भीड़ का बाहरी सिंगार आकर्षण का केन्द्र बनता है। भीतर के शुद्धिकरण के साथ तो किसी का लेना देना ही नहीं है। बाहर की चकाचौंध में भीतर का अंधेरा विस्मृत हो जाता है।

विकास और शिक्षा के नाम से मनुष्य अध्यात्म से दूर चला गया। धन की, रोटी की, चातुर्य की शिक्षा बढ़ती गई परंतु आंतरिक शिक्षा अदृश्य होती गई। दुखी लोगों के लिए धर्म स्थान केवल आश्वासन की जगह बन गया।

ऐसे माहोल में फिर से एक बार सही धर्म और अध्यात्म की समझ मनुष्य में विकसित हो इसलिए मैं उसे ध्यान में ले जाना चाहती हूँ उसे।

प्रिय साधको !

आंतरिक शिक्षा किसे कहेंगे ? – जो मनुष्य आंतरिक रूप से शिक्षित होगा उसका उठना, बैठना, बोलना, देखना, चलना सब अलग होगा। उसकी सोच स्पष्ट होगी। वाणी और व्यवहार में सरलता होगी। दृष्टि में निर्मलता होगी। निर्णय सही होंगे और कार्य में जाग्रति होगी।

मैंने जो कुछ भी वर्णन किया उसी बात को दर्शन शास्त्र विद्या कहते हैं। इससे विपरीत जो कुछ भी है यह है, अविद्या।

अब उस बात का निर्णय मैं विद्वानों पर छोड़ देती हूँ कि आपके विश्वविद्यालयों में से जो स्नातक और अनुस्नातक बनकर बाहर आते हैं वे विद्यावान हैं या अविद्यावान।

मैं कहती हूँ कि आज के इन नवयूवकों के लिए ध्यान अनिवार्य है। ध्यान मनुष्य के आध्यात्मिक चित्त को उघाड़ता है। ध्यान आंतरिक शिक्षा का परम श्रोत है। उस शिक्षा में कोई किसीको उपदेश नहीं देता है, न आपके ऊपर कोई कुछ थोपता है। जो कुछ भी घटता है वह ध्यान के माध्यम से स्वयं स्फूर्त होता है। इसलिए मैं उसे आंतरिक शिक्षा कहती हूँ। उसे कोई शिक्षक नहीं दे सकता है। वह शिक्षा केवल ध्यान की शाला में भीतर ही पनपती है।

हाँ, केवल आध्यात्मिक गुरु और आध्यात्मिक माहौल से ध्यान के लिए मदद मिल सकती है। मेरे अनुभव के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि ध्यान आंतरिक शिक्षा और आत्मजागरण की कुंजी है।

अन्य कलाएं और हुनर तथा पदवियाँ बाहर से अर्जित करने पड़ते हैं। परंतु ध्यान भीतर से अर्जित होता है।

ध्यान की वैसे तो अनेक विधियाँ हैं। हजारों हजारों चीजों को आप माध्यम बना सकते हैं। परंतु मनुष्य शरीर के कुछ भीतरी बिन्दु ऐसे हैं जिसपर ध्यान करने से त्वरित मदद मिल सकती है।

अपने शरीर के बिन्दुओं के आधार पर ध्यान करने का अर्थ है बाहर के आलंबनों से मुक्त हो जाना। ध्यान के लिए आत्मनिर्भर रहना। अपने ही अंतर में ध्यान करने से मनुष्य जल्दी ही आत्मकेन्द्री बन सकता है या अंतरमुखी बन सकता है।

मनुष्य सबसे ज्यादा किसीको प्रेम करता हो तो वह स्वयं को करता है और उसका सबसे ज्यादा संपर्क अपने शरीर के साथ होने की वजह से उसका उपयोग ध्यान में कैसे किया जाए ? वह जल्दी से सीख सकता है। अगर यह सीख लिए तो रूपांतरण शीघ्र ही घट पाएगा।

परंतु इसलिए आपको ध्यान संदर्भ की कई शास्त्रीय बातें सुननी पड़ेंगी, कई विधियाँ सीखनी पड़ेंगी, पहले समझने पड़ेंगी। तब



संभव होगा आपके लिए अपने शरीर के आंतरिक बिन्दुओं पर ध्यान करना।

अब आइए ध्यान विधि की ओर। विश्व में अनेक संप्रदायों ने ध्यान विधियों का स्वीकार किया है। अनेक धर्मों में परस्पर मतभेद होने के बावजूद भी सभी धर्मों में ध्यान सहज सामान्य है। कठिनाई सिर्फ इतनी है कि वेद, उपनिषद, गीता, शिव सूत्र, सूफी, संत, बुद्ध आदि ने काफी कम शब्दों में ध्यान विधियाँ बता दी हैं। परंतु उन संक्षिप्त अपितु अति गहन ऐसे ध्यान शास्त्र को समझना आज के मनुष्य के लिए अति कठिन हो गया है।

उन ध्यान सूत्रों का गहन अनुभव और अभ्यास करने के उपरांत कुछ नए अनुभूत विषयों को लेकर मैंने सरल हिन्दी में ध्यान सूक्तियाँ रचकर एक मौलिक शास्त्र तैयार किया है।

फिर भी मुझे लगता है कि ये सुक्तियाँ और शास्त्र में साधारण जन की समझ की बाहर की बातें हो जाएंगी क्योंकि लोग ध्यान-योग मार्ग की शब्दावली से ही बहुत कम परिचित हैं। इसके साथ साथ कठिनाई यह भी है कि ध्यान-योग मार्ग के खास शब्दों के पर्याय मिलना असंभव है।

मैं बार बार कहती हूँ कि ध्यान शब्दों का विषय नहीं है। परंतु मनुष्य को ध्यान सत्य के लिए प्रेरित करने हेतु हमारे ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों को भी शब्दों का आधार लेना पड़ा है। कभी कभी शब्द भगवान बन जाते हैं इसीलिए तो शब्द को ब्रह्म कहा है।

हृदय नेत्र और आत्मा की तरंगों की भाषा को समझने वाले लोग इस दुनिया में बहुत कम हैं। स्थूल मन का मनुष्य शब्दों के द्वारा ही प्रेरित हो सकता है क्योंकि जन्म से लेकर आज तक वह कभी मौन में गया ही नहीं। उसकी पहचान ही शब्द है, उसका आधार ही शब्द है। इसलिए मुझे भी शब्द का आश्रय लेना पड़ता है।

श्रोताओं के साथ, साधकों के साथ, जिज्ञासुओं के साथ, मुमुक्षुओं के साथ मेरी चेतना, भावना, वात्सल्य सूक्ष्म रूप से काम करते रहते हैं। और शब्द उसकी मति के संशयों को शांत करते हुए उसके भीतर प्रवेश कर जाते हैं। धीरे धीरे वे लोग शब्दों के पार के जगत में प्रवेश करने के लिए सक्षम हो जाते हैं।

हिन्दी में रची हुई मेरी ध्यान सूक्तियाँ भी जब ध्यान प्रेमियों को कठिन लगने लगीं तब मुझे लगा कि अब इन विषयों को उठाकर, इन विधियों को उठाकर, उस संदर्भ में सत्संग करके सुक्तियों का अर्थपूर्ण विस्तार देना आनिवार्य है।

कभी कभी शब्दार्थ भी मदद नहीं करता। प्रश्न वहीं के वहीं खड़े रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में अनुभव के आधार पर जब विस्तृत भावार्थ देने वाला कोई होता है तो कार्य सरल बन जाता है। यही वजह है मेरे बोलने की।

शिव, बुद्ध और पतंजलि की भूमि पर जब एक ऐसी दयनीय स्थिति आ गई कि जहाँ योग का अर्थ केवल आसन और कसरत होता हो। जहाँ ध्यान का अर्थ होता है चिल्लाना, उछलकूद करना, अथवा आंख पर पट्टी बांधकर उदास की भांति चुपचाप बैठे रहना; ऐसे देश में कौन समझाएगा द्वादशांत ? कौन समझाएगा शङ्ख ? कौन समझाएगा अष्टांगयोग ?

ऐसे तो अनेक शब्द हैं। उनमें से कुछ शब्दों को तो छोड़ ही नहीं सकते हैं। उन शब्दों की बराबरी करें ऐसे शब्द ही नहीं हैं हमारी भाषा के पास। और केवल शब्दों की भाषा समझने वालों के लिए प्रारंभ में कुछ शब्दों को और विधियों को समझाना अनिवार्य हो जाता है मेरे लिए। इसीलिए तो ध्यान और योग विद्या को गुरुमुखी कहा गया है।

एक बार इन सब बातों को समझ लेने के बाद एक खास समुदाय ऐसा तैयार हो जाएगा, जाग जाएगा जिनके द्वारा ये सारी विधियाँ आगे बढ़ेंगी।

परंतु हजारों वर्षों का जो फासला हो गया है मनुष्य और ध्यान के बीच, तो उस फासले को मिटाने के लिए थोड़ा समय लगेगा कुछ यौगिक शब्दों को समझने और समझाने में मुझे और साधक श्रोताओं दोनों को, कुछ असुविधा भी हो सकती है। क्योंकि शब्द से सत्य नहीं समझाया जा सकता। फिर भी सत्य के निकट के शब्दों को लेकर कुछ महत्वपूर्ण संकेत अवश्य दिया जा सकता है।

संभव है कि कभी कभी ध्यान प्रेमियों को कुछ विधियाँ कठिन भी लगेंगी। परंतु बाद में सब सरल हो जाएगा। हर साधक याद रखे, कभी कभी शब्द कठिन होने लगते हैं परंतु अनुभव सरल; कभी कभी ऐसा भी होता है कि शब्द सरल लगते हैं और अनुभव कठिन। प्रिय साधको !

ध्यान विधि के लिए शब्दावली या विधि को समझना कठिन लगता है। परंतु आपकी निष्ठा, ध्यान के प्रति समर्पण और समग्रता होगी तो विधि में डूबना आसान हो जाएगा। अब ध्यान रहे साधको ! ध्यान शास्त्र में शरीर के कुछ भीतरी बिन्दु हैं। योग शास्त्रों में उसका वर्णन बहुत लंबा मिलता है। उनके रंग, उनका आकार, उनके बीज मंत्र, उनके देवता, उनके ऋषि इत्यादि। परंतु ये सब अति वैज्ञानिक है।

मैं कहती हूँ कि केन्द्र के रंग और आकार की चिंता किए बिना उसके संपर्क से सीधे आध्यात्मिक रूप से लाभांशित हो जाओ

क्योंकि उतनी सूक्ष्मताओं में जाएंगे तो ऋषि का अनुभव जब तक आपका अनुभव नहीं बनेगा तब तक आप चक्र के रंग-रूप, आकार-प्रकार ही खोजते रहेंगे। आप ध्येय भ्रष्ट हो जाएंगे। आपका वैज्ञानिक चित्त पदार्थ के रूप में उन सारी चीजों को खोजने का प्रयत्न करेगा। परंतु वहां ऐसा कुछ भी नहीं मिलेगा जैसा वर्णन है। तब आप निराश भी हो सकते हो, अथवा संशय ग्रस्त भी। मैं इसलिए कहती हूँ कि पिष्टपेषण में मत पड़ो।

तो फिर से एक बार ध्यान रहे कि बिन्दुओं के विषय में जो शास्त्रीय वर्णन में मतभेद है या विस्तार है उसमें नहीं पड़ना है। वे सूक्ष्म हैं, इन्द्रियातीत हैं। आपको केवल उसके स्थान में तीव्र भाव करके आपकी समग्र चेतना को उसके प्रति मोड़ना है। तब जो कुछ भी है उसका सहज अनुभव होने लगेगा। शरीर के भीतर या बारह विशेष बिन्दुओं को द्वादशांत कहा है। द्वादश संस्कृत शब्द है, उसका अर्थ है बारह। लेकिन बारह शब्द केवल संख्या वाचक एक स्थूल शब्द हो जाता है। परंतु द्वादशांत एक ही शब्द बारह सूक्ष्म स्थानों के प्रति संकेत करता है। यह शब्द बहुत कुछ कह देता है।

योग शास्त्र और ध्यान शास्त्र में कई स्थानों पर यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। परंतु यहाँ आपको जन्माग्र से लेकर व्यापिनी तक के स्थान को समझना है। इस द्वादशांत के संदर्भ में वैसे तो कई विधियाँ हैं परंतु इनमें से तीन प्रमुख हैं। एक है उन बिन्दुओं पर मन को स्थिर करना, दूसरी है प्राणशक्ति को ऊपर उठाकर एक के बाद एक केन्द्र पर प्राणशक्ति से चोट पहुँचाकर सहस्रार से प्राणों को भरना, और तीसरी है बिन्दु के भीतर के गाढ़ अंधकारमय आकाश पर ध्यान करना।

अब आइए विधि की ओर। गहरे श्वास लो और एक एक बिन्दु पर जितना हो सके रोको।  
प्यारे साधको!

शरीर और मन प्राण से ही जिन्दा रहते हैं। प्राणों के संचार से मन और शरीर संचरित होते रहते हैं। उन प्राणों को एक स्थान पर एकाग्र करेंगे तो मन अपनेआप एकाग्र हो जाएगा। मन चाहने पर भी भागदौड़ नहीं कर पाएगा। याद रहे प्राणों का चलना मन का जीवन है, प्राणों का रुकना मन की मृत्यु। एक दूसरी बात भी याद रहे। मन की मृत्यु है मोक्ष और मन का विकसित होना है पुनर्जन्म, संसार, नर्क और आवागमन।

बारह बिन्दुओं पर बारी बारी यथासंभव प्राणों को रोकने के अभ्यास से एक के बाद एक सभी शक्तिबिन्दु विशेष रूप से सक्रिय होकर आपका आंतरिक बल बढ़ाएगा। वही आध्यात्मिक बल है।

आपके भीतर की कुछ सात्विक ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाएंगी। आध्यात्मिक रूप से आपको इतनी मदद मिलने लगेगी कि मन सहज ही तिरोहित हो जाएगा। एक अर्थ में परिशुद्ध हो जाएगा।

अभ्यास करते करते एक ऐसा सहज स्वभाव बन जाएगा आपका कि आप निरर्थक बातों को अपनी ऊर्जा देंगे ही नहीं। निरर्थक कार्यों का होना असंभव हो जाएगा। आपसे सार्थक चीजें ही हो जाएंगी।

प्रिय साधको!

मन का तिरोहित हो जाना ही समाधि है।

भारतीय ध्यान ऋषियों का हेतु इतना ही था कि मनुष्य अपने बाहरी बंधारण उपरांत भीतरी व्यवस्था को भी जान ले। उस व्यवस्था को जानने के शास्त्र को हम ध्यान-योग शास्त्र कह सकते हैं।

उस व्यवस्था को जानकर उनके प्रमुख केन्द्रों की शक्ति को उजागर करके मनुष्य परिचित हो जाए अपनी आंतरिक शक्ति से। एक बार आध्यात्मिक शक्ति का जिसे अनुभव होने लगता है उसे फिर दुन्यवी शक्तियों की ज्यादा गरज नहीं रहती है। उन्हें धन, पद, प्रतिष्ठा आदि बाहरी शक्तियों का कोई आकर्षण नहीं रहता।

ऐसा सिद्ध अपनेआप में परम सुख का अनुभव करने लगता है और मैं कहती हूँ वही सर्वोत्तम सुख है। और सर्वोच्च आनन्द है।

वह एक ऐसा मोक्ष साम्राज्य है जिसे कोई छीन नहीं सकता। मोक्ष साम्राज्य का सुख अनंत है। उसकी सीमाएं अपार हैं और उसका स्वरूप अवर्णनीय है।

ध्यान में उतरकर प्राणों को उर्ध्वगामी करके एक एक बिन्दुओं में से गुजरकर पा लो मोक्ष साम्राज्य को, जो आपके भीतर है जिसके आप मालिक हो।

## अंतर तिमिराकाश भाव ध्यान

प्रिय साधको !

ध्यान विज्ञान में आकाश की बातें कई बार आती हैं। वेदांत में भी घटाकाश, मखाकाश जैसे सुने होंगे शायद आपने। भीतर और बाहर के आकाश की बहुत बड़ी महिमा है। जीव प्राणीमात्र के जीवन के लिए आकाश अनिवार्य है।

आकाश जगह देता है संचलन की। स्पेस के बिना प्राणवायु कैसे संचरित हो पाएगा, प्राणियों को जीवन देने के लिए ? और शरीर के भीतर भी ऊर्जा प्रवाह संचार कैसे होगा आकाश के बिना ? आपने कभी शांत चित्त से, धैर्य से, समग्रता से, और गहनता से कुदरत की संरचना को देखने का प्रयत्न किया है ?

मैं कहती हूँ कि कुदरत की प्रत्येक संरचना को कुतुहल से नहीं, इन्द्रियों से नहीं, परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से देखना चाहिए।

हाँ, कुछ लोगों को हमारे साथ बैठने का मौका मिल जाता है तो इन सारी बातों को सुनकर, क्षणिक अभीभूत होकर, “वाह ! क्या कुदरत की रचना है ! – ऐसी दाद देकर थोड़ी देर के बाद सबकुछ भूल जाते हैं।” जैसे कोई नासमझ आदमी आ गया हो कवि मुशायरों में। और काव्य की थोड़ी सी चमत्कृति से वाह वाह पुकार देता है। ताली बजा देता है और क्षणिक मजा लेकर चला जाता है। ऐसे लोग कविता की आत्मा में तो उतर नहीं सकते केवल शब्दार्थ जान लिया, भाव को तो समझे नहीं ऐसा ही होता है ध्यान और ज्ञान मार्ग में भी।

दो दिन ध्यान शिबिर में फ्रेश होकर चले जाते हैं। थोड़ा टोनिक मिल गया संत सद्गुरु के पास से फिर राम ! राम ! फिर जरूरत पड़ेगी तब कोई और डॉक्टर कोई और संत, कोई और टैनिक्स पकड़ लेंगे।

कुछ लोग जिन्दगी भर उधार टैनिक्स पर जीते रहते हैं नशेखोर आदमी की भांति। इसे मैं आध्यात्मिक बचपना कहती हूँ। यह आध्यात्मिक अपरिपक्वता है।

मैं कहती हूँ कि आप के भीतर कुदरत ने इतनी सारी शक्तियाँ भरी हैं कि उन शक्तियों को उजागर करने की कला एक बार जान ली तो आध्यात्मिक टैनिक्स ढूँढने के लिए बाहर नहीं भटकना पड़ेगा। मेरा अनुभव है कि भीतर की शक्तियों के साक्षात्कार के बाद इतना कुछ सृजनात्मक उतरने लगता है कि एक जीवन भी कम पड़ जाता है। वहाँ ऐसी अवस्था में दूसरे की जगह ही नहीं बचती।

ऐसा संतोष, ऐसा आनंद और ऐसी सृजनात्मकता पाने का इल्म मैं आपको दे देना चाहती हूँ। परंतु इसके लिए आपको कम से कम अपना सहयोग तो करें यह अति आवश्यक है। (ग्रामर चैक करो)

आप मेरे पास आकर या ध्यान शिबिर में आकर कम से कम आपका सहयोग करेंगे तो यह मेरा सहयोग हो जाएगा।

मुझे सहयोग करने के लिए आपको कुछ खास नहीं करना है। इतने लोभी मत बनो कि खुद को भी साथ न दो ! खुद की भी मदद न करो !

प्रिय साधको !

अगर आपको याद है तो मैंने आपको कहा था कि शरीर के प्रमुख बारह शक्ति केन्द्रों पर ध्यान की अनेक विधियाँ हैं। परंतु उनमें से तीन प्रमुख हैं। अब आईए उस तीसरी विधि की ओर।

रुद्रयामल कहता है कि शरीर के बारह प्रमुख स्थान में भी आकाश है। जिसने शरीर के प्रति सौन्दर्य अथवा विषय वासना के सिवाय अथवा क्षुधा, तृष्णा के सिवाय भी एक विशेष दृष्टि से ध्यान दिया हो ऐसा मनुष्य ही इस बात को समझ पाएगा।

प्रिय साधको !

एक है बाहर का आकाश, दूसरा है भीतर का। भीतर के भी दो प्रकार के आकाश हैं। एक स्पष्ट और दूसरा अस्पष्ट। अथवा आप कह सकते हैं। एक दृष्टिगोचर होने वाली स्पेश और एक अदृष्ट।

जठर में, फेफड़े में, हृदय में, मुँह के भीतर, अन्ननली या आंत में जो जगह खाली है। उसका स्वीकार तो हर आदमी करेगा क्योंकि स्पष्ट है। सर्जरी से उन जगहों को हम देख सकते हैं। अनुभव भी कर सकते हैं।

अगर मुँह में जगह नहीं होती, अन्ननली में जगह नहीं होती तो भीतर कुछ जा ही नहीं सकता मुँह के द्वारा। पेट खाली हुआ और भरा यह अनुभूतियाँ भी होती हैं। फेफड़े वायु से भर रहे हैं वह अनुभव हम प्रतिपल लेते हैं।

इस तरह से स्थूल का अनुभव जल्दी होता है और मनुष्य स्वीकार भी जल्दी करता है। योग शास्त्र हमें सूक्ष्म नहीं परंतु सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभव देना चाहता है। उस अनुभव के लिए स्थूल रूप से नहीं परंतु सूक्ष्म ढंग से अभ्यास करना पड़ता है। खाना, पीना,

श्वास लेना ये सब स्थूल अनुभव हैं।

परंतु तृप्ति और संतोष ये सूक्ष्म अनुभव हैं। वैसे ही आत्मतृप्ति की भी भीतर एक व्यवस्था है। वह अति सूक्ष्म अनुभव है और ऐसी अतिसूक्ष्म अनुभूतियाँ प्राप्त हो सकती हैं, केवल ध्यान के द्वारा।

ध्यान सूत्र कहता है कि शरीर के भीतर के द्वादश स्थान के भीतर भी एक सूक्ष्माकाश है, खाली जगह है। जिनमें ऊर्जा और ज्ञान का निरंतर वहन होता है। केन्द्र बिन्दुओं के भीतर के आकाश के बिना यह वहन प्रक्रिया असंभव है।

ऊर्जा शक्ति के वहन का अगर कोई सूक्ष्म रास्ता नहीं है मनुष्य के भीतर, तो शक्ति प्रवाह कैसे बहेगा ? कैसे ऊपर उठेगा ? बाहर से भीतर और भीतर से बाहर संदेशा कैसे पहुंचेगा ?

मस्तिष्क के संदेशे लाकर कोई शरीर को पहुंचाता है। शरीर के संदेशे को कोई मस्तिष्क तक पहुंचाता है। उम संदेशावाहक ज्ञानतंतुओं को आधुनिक विज्ञान मोटर नर्व और सेन्सरी नर्व कहता है।

परंतु यह करामात किसकी है ? आकाश के बिना तरंगों की चहल पहल कैसे होगी ? शक्ति की चहल पहल कैसे होगी ?

विज्ञान सिद्धांत दे सकते हैं, प्रमाण दे सकते हैं परंतु सूक्ष्म विषयों का उत्तर नहीं दे सकता। उन सूक्ष्म प्रश्नों का जवाब भारतीय ध्यान विज्ञान के पास है। उन प्रश्नों का जवाब हमारे सिद्धों के पास है, योग शास्त्र के पास है, ज्ञानियों के पास है, प्रबुद्धों के पास है, ध्यान गुरुओं के पास है।

उन प्रश्नों का जवाब आप भी ढूंढ सकते हैं अपने भीतर उतर कर, ध्यान विज्ञान को आत्मसात करके, ध्यान विधियों को जानकर, ध्यान विधियों से गुजरकर, परंतु इसके लिए आपको अपनी मदद करनी पड़ेगी।

आज के मनुष्य की एक सबसे बड़ी तकलीफ है। अर्थप्रधान और स्वार्थप्रधानमानस के असर की वजह से मनुष्य हर चीज में अपना स्वार्थ ढूंढता है।

कोई आध्यात्मिक विधि में भी पूछता है कि इससे लाभ क्या होगा ? इसका और भी एक कारण है। योग के नाम पर कुछ बाबाओं ने केवल लाभ और फायदे की भाषा ही सिखा दी है हजारों लोगों को।

आज का इन्सान फायदे की भाषा ही जानने लगा। वह लेना ही जानता है। कुछ खोना, देना, मिटना, फना होना, फिदा होना, ये सब बातों को वह मूर्खता समझता है।

एक छोटा सा लड़का आश्रम में अकसर आता रहता है। मेरे शिष्य शैलेश्वर से खूब लगाव है। उसे फिल्म में काम करने की तमन्ना है। लड़का सुंदर भी है थोड़ा ज्यादा मस्तीखोर और कम महनती। उसके माता पिता नहीं चाहते हैं कि वह यहाँ आए। वह फिल्म लाइन में जाए वे लोग यह भी नहीं चाहते हैं। पढ़े लिखे लोग भी भूल गए हैं कि प्रत्येक जीव पृथ्वी पर एक स्वतंत्र इकाई है। वह अपनी एक व्यवस्था लेकर आया है, वह उसी ढंग से ही जिएगा। उस पर अपने आग्रहों को थोपना, यह उसे विकृत बना देना है।

एक बार मैंने उसे पूछा कि तू घर में झगड़ा करके भी यहाँ क्यों आता है ? तेरे माता-पिता नाराज हैं तो तुझे यहाँ नहीं आना चाहिए। बच्चे ने कहा मुझे यहाँ अच्छा लगता है, शांति मिलती है, आपका स्नेह मिलता है इसलिए मैं यहाँ आता हूँ। मैंने कहा कि तो फिर पूरी पूरी क्रांति कर। तुझे यह मार्ग पसंद है तो हमेशा के लिए छलांग लगा दे। रास्ता गलत नहीं है। लेकिन यहाँ आने के लिए घर में रोज रोज झगड़ा करना यह अच्छा नहीं है। तब लड़का बोला मुझे तो पोप्युलर होना है। वह मैं दो रास्ते से हो सकता हूँ। एक तो फिल्मों में जाकर या संत बनकर। अगर फिल्म में असफल रहा तो साधु बन जाऊँगा। ये संस्कार हमारी टी.वी. की देन है।

इस लड़के की मानसिकता देखकर मैं तो दंग रह गई। आजकल के बच्चे भी भगवान का उपयोग कर लेना चाहते हैं। भारत में असफल लोग धर्म के कांधों पर चढ़कर हीरो बन गए हैं।

कहीं नहीं चलूंगा तो फिर साधु बनूंगा ! ... कैसी स्वार्थपूर्ण वृत्ति है यह ? कैसा गणित ? कैसे ये संस्कार हैं ? मैंने तुरंत जगा दिया इस बच्चे को और कहा कि सन्यास असफल मनुष्य के लिए नहीं है। सफल व्यक्ति का सन्यास ही सच्चा सन्यास बन सकता है। असफल आदमी साधु बनेगा तो धरती का भार बढ़ाएगा। धर्म का दुरुपयोग करेगा। भूल जा बेटा आश्रम में आने की बात को। प्रेम से कभी मिलना है तो मिल जाना। लेकिन गणित को भूल जाना। यहाँ जगह नहीं है ऐसे लोगों के लिए। यह तो फना होने का रास्ता है। अपना सबकुछ न्यौछावर करने का मार्ग है।

असफल, हताश, निराश और पेट पालुओं की भीड़ समाज में अध्यात्मिक उद्धार या धर्म की रक्षा कैसे कर पाएगी ?

उस बच्चे को शायद बुरा तो लगा होगा परंतु जरूरत से ज्यादा चालाक था। चहरे पर कुछ भी दिखने नहीं दिया।

मेरा कहना यह है कि आज के बच्चे भी प्रेम की नहीं, केवल स्वार्थ की भाषा बोलना सीख गए हैं। तो बड़ों की मानसिकता कैसी



खतरनाक रही होगी ? ऐसे माहौल में ध्यान का काम करना यह सबसे बड़ी चुनौति है। क्योंकि ध्यान में कुछ पाना नहीं होता है। जो भी निरर्थक इकट्ठा किया है मन ने, उसको खो देना है। और ज्यादातर लोग जिसे अर्थपूर्ण समझते हैं वह सब संग्रहित चीजें हैं। वह सब आंतरिक विकास के लिए निरर्थक होती हैं। अब तो हमने ध्यान सागर में नौका झुका दी है, विपरीत पवन के सामने।

आपने भारत की स्वतंत्रता का इतिहास पढ़ा होगा। मंगल पांडे को सूली लग गई परंतु चिंगारी आग लगा गई। लाखों लोग जग गए स्वतंत्रता के लिए। ये सब याद करके ध्यानक्रांति के लिए मेरा हौसला भी बढ़ता है।

एक मंसूर हजारों मंसूरों की प्रेरणा बन जाता है। एक ईसू हजारों ईसुओं को प्रच्छन्न रूप से पैदा कर सकता है। एक मीरा हजारों नारियों का आत्मबल बढ़ा देती है। वैसे ही मेरी धर्मक्रांति हजारों साधकों को जगा देगी।

पृथ्वी पर से मेरा शरीर चला जाएगा परंतु कम से कम अगले दस हजार वर्ष तक मेरे शब्द मेरे रचे हुए शास्त्र, मेरी ध्यान विधियाँ पूरी मनुष्यता की आध्यात्मिक मदद करती रहेंगी।

मेरी ईजाद की हुई ध्यान विधियों से करोड़ों करोड़ों लोग परम विश्राम को पाएंगे। आज नहीं तो कल मनुष्य को आना ही पड़ेगा मेरी ध्यान विधियों की ओर। कोई न कोई विधि तो उसे पार उतार ही देगी। एकाद विधि तो अवश्य रास आ जाएगी, जच जाएगी, छू लेगी उसके हृदय को।

एक न एक विधि का तालमेल आपके साथ अवश्य हो जाएगा। जिससे आप पा लेंगे आपके भीतर के शाश्वत, शांति के समुद्र का। मेरी धर्मक्रांति मनुष्य को सच्ची स्वतंत्रता देगी। रक्तक्रांति से धर्मक्रांति की ज्यादा आवश्यकता है।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता के साथ साथ मानसिक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता नहीं पाई तो आप स्वतंत्र होते हुए भी गुलाम हो।

ध्यान है बिगड़ी को बनाने की विद्या। हाँ, आप जब जन्म जन्म की बिगड़ी को बनाने में लगेंगे, तो लोग कहेंगे कि तू बिगड़ गया परंतु उनकी ओर ध्यान नहीं देना। आपका बनना उनके लिए बिगड़ना है और उनका बनना हकीकत में बिगड़ना है।

बुद्ध, महावीर, गोरख, दत्तात्रेय आदि ने दुनिया के बोलने पर ध्यान दिया होता तो आज अध्यात्म जगत और ध्यान क्षेत्र अदृश्य हो गया होता। आत्मसाक्षात्कार शब्द खो गया होता विश्व में से।

प्रिय साधको !

मैं एक बार फिर कहती हूँ कि आपके भीतर शांति और आनंद का खजाना पड़ा है। मत भटको बाहर, उतरो खुद के भीतर, जन्म जन्म की दरिद्रता और गुलामी को मिटा दो। मैं आपको माहौल दूंगी, आपके साथ सत्संग करूंगी, आपके साथ नाचूंगी, गाऊंगी, विधियाँ बताऊंगी; मेरे एकाद शब्द से शब्द ब्रह्म की किरण पाकर ढूँढ लो अपने भीतर के द्वादश बिन्दुओं के तिमिर में विकसित आकाश को। आपके भीतर के बारह शक्ति बिन्दुओं के सूक्ष्मातिसूक्ष्म आकाश पर ध्यान करो। पहले तो वहाँ एक गाढ़ अंधकार की अनूभूति होगी। क्योंकि वहाँ का आकाश सीधा दृश्यमान हो ऐसा नहीं है। वहाँ का आकाश इतना सूक्ष्म है कि अंधकार में छिपा है। परंतु विश्व में जो कुछ भी रहस्यमय घटता है वह सब अंधकार में ही घटता है।

अंधकार सर्जक भी है और संहारक भी। इस ध्यान विधि में साधक को धैर्य के साथ तीव्र भाव करना है कि वह महासंहारक गाढ़ अंधकार, मेरे भीतर का रुद्र, वह महाकाल, मेरी सहायता कर रहा है। साधक को अंधकार में सूक्ष्म आकाश का आधार लेकर ध्यान करना है।

उतरते जाओ द्वादश केन्द्रों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्थान में। प्रथम तो वहाँ गहन तिमिर के सिवाय कुछ नहीं मिलेगा। धीरे धीरे उस तिमिर यात्रा से ही सूक्ष्म आकाश खुलने लगेगा।

प्यारे साधको !

यह धारणा करो एक एक केन्द्र पर कम से कम चौबीस चौबीस मिनट तक। ऐसे बारह केन्द्र हैं। एक केन्द्र पर छयानवे दिन, यात्रा लंबी लगेगी, जरूरी नहीं कि छयानवे दिन पर्याप्त हैं। आपकी गति मंद, मध्य या तेज भी हो सकती है।

भीतर से जब सहायता मिलने लगे, जागे हुए केन्द्रों की शक्ति से मदद मिलने लगे तो सारे केन्द्रों के अंधकारपूर्ण सूक्ष्म आकाश में अचानक पूर्ण प्रकाश का दर्शन होने लगेगा। यह प्रकाश ही परमात्मा है। यह प्रकाश ही जन्म जन्म के अंधकार से मुक्ति है। और यह प्रकाश ही आवागमन मिटने का दिव्य संदेश।

## साधकों की अभिव्यक्तियाँ

- ▶ मैं आजीवन फिलोसोफी का प्राध्यापक रहा हूँ। कॉलेजों में तत्वचिंतन पढ़ाया भी खूब, और लोगों को योग भी सिखाया था परंतु गुरु मैया के चरणों में आकर मैं समझ पाया सही तत्वचिंतन को, योग को, ध्यान को। घर में ध्यान करता हूँ परंतु गुरु मैया की उपस्थिति में, ध्यान शिविर के माहौल में जैसा ध्यान लगता है और जो अनुभूतियाँ होती हैं वैसी घर पर नहीं होती। गुरुमैया में मैंने शंकराचार्य का ज्ञान, पतंजलि का योग और राधा एवं मीरा के प्रेम का दर्शन किया है। साहित्य, संगीत, कला, वक्तव्य, ज्ञान, ध्यान आदि का ऐसा सुमेल मैंने आज तक किसी संत में नहीं देखा।

—श्री कुलिन पुराणी, (निवृत्त प्रोफेसर-फिलोसोफी), वडोदरा

- ▶ कई स्थानों पर ध्यान में गया हूँ। परंतु यहां का माहौल, ज्ञान देने की पद्धति, और ध्यानविधियां विशिष्ट हैं। मुझे यहाँ आकर कुछ अनुभूतियाँ हुई हैं, वह अवर्णनीय है। कम से कम शब्दों में कहूँ तो – माँ इस सिम्पल, टेक्नीक्स आर सिम्पल एन्ड एवरीथिंग इस सिम्पल। जो कुछ भी है सब स्पष्ट है, सरल है।

—श्री अनिल शर्मा, वडोदरा

- ▶ मैं यहाँ आई इसके पहले मेरे मन में बहुत से प्रश्न थे परंतु यहाँ आकर माँ को सुनने के बाद और ध्यान विधियों को समझने के बाद मेरे सारे प्रश्नों का सहज समाधान हो गया है। मुझे ध्यान में बहुत शांति मिली।

—डॉ. विजय लक्ष्मी

- ▶ पंद्रह वर्ष से माँ के सानिध्य में हूँ; माँ के शब्द में, ज्ञान में और प्रेम में ऐसी शक्ति है कि मनुष्य अवश्य रूपांतरित हो जाता है। माँ की कविताएं अद्भुत, सूफियाना एवं मनुष्य को ज्ञान, भक्ति और साक्षी भाव के प्रति प्रेरित करने वाली हैं।

—श्री दिनेश वरिया, बोर्ड ऑफिसर, वडोदरा

- ▶ मैं यहाँ पहली बार आया हूँ परंतु सबकुछ बहुत अच्छा है। गुरुमैया का ध्यान विधियों को समझाने का ढंग बहुत अच्छा है। मेरे पास ज्यादा शब्द नहीं हैं परंतु सबकुछ बहुत अच्छा है, मस्त है।

— श्री रतनदीप विक्रमसिंह राउलजी, एडवोकेट, वडोदरा

- ▶ मैं एक सी.ए. हूँ। पहली बार मैं एक आध्यात्मिक कार्यक्रम में आया और आने के बाद मुझे महसूस हुआ कि बहुत पहले आना था। ३२ वर्ष पानी में गए, परंतु अब जान गया हूँ। अब ध्यान में रस लग गया है।

—श्री हितेश अग्रवाल, सी.ए., वडोदरा.

- ▶ मेरी उम्र ८४ वर्ष की है। आज भी तंदुरस्त हूँ। ध्यान करता हूँ। रेकी के क्षेत्र में हम दोनों पति पत्नी सक्रिय रहे वर्षों तक—परंतु मुझे लगता है गुरु मैया के पास आकर शक्ति और सत्य दोनों को सही अर्थों में पाया। मुझे भी लग रहा है कि मेरे तो ८४ साल व्यर्थ गए, परंतु माँ के सानिध्य में दो दिन ध्यान सेमीनार में जीवन सार्थक होने का अहसास हो रहा है।

—विनायकराय सी. छाया

- ▶ मुझे बहुत अच्छा लगा यहाँ आकर। माँ एक स्पष्टवक्ता हैं, कड़क अनुशासन भी है परंतु ध्यान का सही मार्गदर्शन भी मिलता है। मैं तो धन्य हो गया। गद्गदित होकर... अब ज्यादा नहीं बोल पाऊंगा।

— ध्यानी बंदिश देसाई